पंच-प्रतिक्रमण

हिन्दी-विवेचन

(भाग-4)

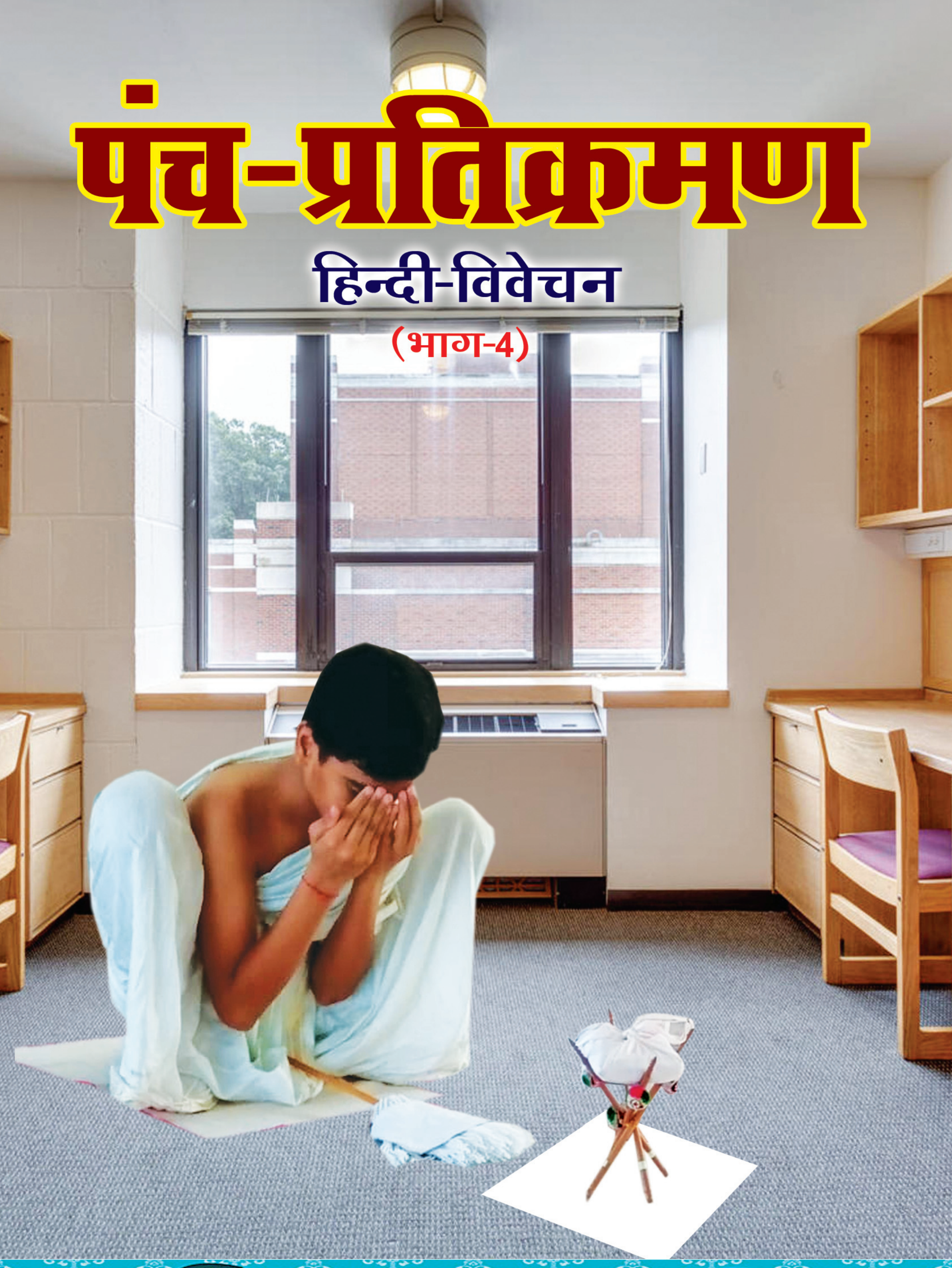

विवेचनकार-संपादक

प.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

पंच-प्रतिक्रमण

हिन्दी विवेचन

(भाग-4)

विवेचनकार

जिनशासन के महान् ज्योतिर्धर, परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक पू.आचार्य देव *श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.* के तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान् योगी, नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के कृपापात्र अंतिम शिष्यरत्न, मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव, प्रवचन-प्रभावक, हिन्दी साहित्यकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

133

-: प्रकाशक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, 205, सोना चेम्बर्स, 507-509, जे.एस.एस. रोड, चीरा बाजार, सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईन्स (E), मुम्बई-400 002. **Tel. 022-4002 0120**
Mobile : 9892069330

आवृत्ति : द्वितीय • मूल्य : 140/- रुपये • विमोचन : दि. 10-7-2019

प्रतियाँ : 1000 • स्थल : कोयम्बतुर, (तामिलनाडु)

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य *आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.* द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और अर्हद् दिव्य संदेश मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. **चेतन हसमुखलालजी मेहता**
   भायंदर (M.S.)
   M. 9867058940

2. **प्रवीण गुरुजी,**
   C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
   श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
   चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
   M. 9036810930

3. **राहुल वैद,**
   C/o. अरिहंत मेटल कं.,
   4403, लोटन जाट गली,
   पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
   दिल्ली-110 006.
   M. 9810353108

4. **चंदन एजन्सीज**
   मुंबई, M. 9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन, C/o. सुरेन्द्र जैन,
205, सोना चेंबर्स, 507-509, जे.एस.एस. रोड, चीरा बाजार,
सोनापुर गली के सामने, मरीन लाईंस (E), मुंबई-2. **T. 022-40020120**

(2) प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमाट रोड, शंकरपुरा,
बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से

मरुधररत्न, गोडवाड के गौरव, प्रवचन प्रभावक, हिन्दी साहित्यकार **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित एवं संपादित **'पंच प्रतिक्रमण हिन्दी विवेचन भाग-4'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

एक ओर हिन्दी भाषा में उनके प्रवचन अत्यंत ही प्रभावशाली और बेजोड होते है तो दूसरी ओर हिन्दी भाषा में उनका साहित्य सर्जन भी अत्यंत प्रभावशाली है ।

उनका साहित्य वैविध्यपूर्ण है । उन्होंने एक ओर बाल जीवों के हित के लिए विपूल प्रमाण में कथा साहित्य का सर्जन किया है तो दूसरी ओर तत्त्व पिपासुओं की पिपासा को शांत करने के लिए तत्त्वज्ञान गर्भित विवेचन भी तैयार किए है । जीव विचार विवेचन, नवतत्व विवेचन, तीन भाष्य विवेचन, यशोविजयजी चोबीसी विवेचन आदि के साथ साथ आबालगोपाल सभी के लिए अति उपयोगी पंच प्रतिक्रमण के सूत्रों पर सरल हिन्दी विवेचन भी तैयार किया है । पंच प्रतिक्रमण के सूत्र चार भागों में विभक्त है । इस प्रकार चार पुस्तकों में पंच प्रतिक्रमण संबंधी सभी सूत्रों की विवेचना समाप्त हो जाती है ।

वर्षो पूर्व जैन साहित्य विकास मंडल, मुंबई की ओर से प्रबोध टीकानुसारी पंच प्रतिक्रमण सूत्रार्थ प्रकाशित हुआ था, वह भी आज लगभग अप्राप्य ही है ।

अपने ही प्राण प्यारे परमोपकारी गुरुदेव अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के द्वारा संशोधित प्रबोध टीका भाग 1-2-3 के गुजराती विवेचन एवं गुजराती भाषा में अन्य भी प्रकाशित गुजराती-विवेचनों को ध्यान में रखते हुए पूज्यश्री ने अथक श्रम लेकर ये

विवेचन तैयार किए है । हमें आशा ही नहीं लेकिन पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए ये विवेचन अत्यंत ही उपयोगी सिद्ध होंगे ।

यद्यपि हिन्दी राष्ट्रीय भाषा है, परंतु श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ का हिन्दी साहित्य बहुत ही अल्प प्रमाण में हैं । श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ में गुजराती साहित्य अत्यधिक प्रमाण में उपलब्ध है ।

पूज्यश्री ने हिन्दी भाषा में विवेचन तैयार कर हिन्दी भाषी प्रजा पर असीम उपकार किया है । उनके अत्यंत ही ऋणी है ।

गोडवाड के गौरव एवं मरुभूमि के रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का संक्षिप्त परिचय

पूज्यश्री गोडवाड के गौरव, मरुभूमि के रत्न, बाली संघ की शान, चोपडा कुल के भूषण तथा पिता श्रीमान् छगनराजजी एवं माताजी श्रीमती चंपाबाई के कुल दीपक है । इनका सांसारिक नाम **राजमल चोपडा** था, परन्तु उन्हें **'राजु'** के लाडिले नाम से पुकारा जाता था । आज भी वे गोडवाड की जनता के लिए तो **'राजु महाराज'** के नाम से ही प्रख्यात है ।

पूज्य श्री का जन्म भादो सुदी 3 दिनांक 16-9-1958 के शुभ दिन हुआ था । माता का नाम चंपाबाई और पिता का नाम छगनराजजी चोपडा है ।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा हायर सेंकडरी तक बाली में तथा 1st Year, B.Com. का शिक्षण S.P.U. College फालना में हुआ था । राजु को धार्मिक शिक्षण व संस्कार मिले श्रीमान् आनंदराजजी गेमावत से । बचपन से ही सूक्ष्म व तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण व्यवहारिक शिक्षण में उनका हमेशा प्रथम स्थान रहा । ई. सन् 1975 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय-बाली में 600 विद्यार्थियों के बीच राजु को **'सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी'** का पारितोषिक मिला था । जिला-स्तरीय निबंध-वक्तृत्व आदि स्पर्धाओं में भी विशेष स्थान प्राप्त किया था । इसके साथ ही

धार्मिक पाठशाला में भी हमेशा प्रथम स्थान रहा। तत्वज्ञान विद्यापीठ-पूना की प्रारंभिक परीक्षा में भारत भर में पहला स्थान प्राप्त किया था।

बचपन में राजु के दिल में महत्वाकांक्षा थी `आगे चलकर C.A. करना, उद्योगपति या राजनेता बनना।' परंतु अपने ही पडौसी, एकदम स्वस्थ भीकमचंदजी की अकाल मृत्यु तथा नदी के पानी में डूबने में हुई दो बाल मित्रों की करुण मौत के दृश्य को देखकर राजु को आयुष्य की क्षण भंगुरता के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उसके मन में वैराग्य भाव का बीजारोपण हुआ।

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत, सत्संग एवं उनके द्वारा प्रदत्त **'शांतसुधारस'** की अनित्य एवं अशरण भावना के हिन्दी विवेचन के स्वाध्याय तथा **'धर्मदेशना'** पुस्तक में वर्णित चार गतियों के भयंकर दु:खों का वर्णन पढने से राजु की वैराग्य भावना और दृढ बनती गई।

एक वर्ष के कॉलेज शिक्षण दरम्यान भी राजु की वैराग्य भावना लेश भी खंडित नहीं हुई, बल्कि कॉलेज के साथ पूज्य गुरुदेव श्री के समागम से उसकी वैराग्य भावना तीव्र-तीव्रतर होती गई।

वि.सं. 2030 में बाली में मुमुक्षु कमलाबहन की भागवती दीक्षा विधि को देखकर राजु के अन्तर्मन में वैराग्य का बीजारोपण हुआ और उसने भागवती-दीक्षा ग्रहण करने का मानस बनाया। धार्मिक पाठशाला में राजु ने पंच प्रतिक्रमण आदि का अभ्यास तो किया ही था, इसके साथ प.पू. विद्वद्वर्य **मु. श्री जितेन्द्रविजयजी म.सा.** एवं प.पू. विद्वद्वर्य **मु. श्री गुणरत्नविजयजी म.सा.** की तारक निश्रा में ई.सन् 1974 और 1975 मेंआयोजित **'ग्रीष्म कालीन आध्यात्मिक ज्ञान शिबिर** में दो बार भाग लेकर जैन दर्शन के तत्वज्ञान, आवश्यक क्रिया के सूत्र रहस्य, जैन इतिहास, जैन भूगोल, कर्मवाद आदि का ज्ञान प्राप्त किया। इसके फलस्वरूप राजु की वैराग्य भावना और दृढ बनी।

यद्यपि दीक्षा के लिए घर में अनुकूल वातावरण नहीं था, फिर भी

दृढ मनोबल से वैराग्यमार्ग में आनेवाले अवरोधों का सामना किया, जिसके फलस्वरूप आखिर में राजु के माता-पिता ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहने के लिए अपनी सम्मति प्रदान की ।

वि.सं. 2031 व 2032 में पूज्य गुरुदेवश्री के बेडा एवं लुणावा चातुर्मास में साथ में रहकर ज्ञानाभ्यास किया और संयम जीवन की ट्रेनिंग ली। डेढ वर्ष के अपने मुमुक्षु पर्याय में उपधान तप, वर्धमान तप का पाया एवं 12 ओली, 20 दिवसीय एक लाख नवकार जाप साधना, पैदल-विहार के साथ साथ चार प्रकरण, तीन भाष्य, छ कर्मग्रंथ तत्वार्थ, वीतराग स्तोत्र, योग शास्त्र, पंच सूत्र, संस्कृत की दो बुक आदि का भी सुंदर अभ्यास किया ।

राजु के दिल में उत्कट वैराग्य था तो दूसरी ओर माता-पिता के अन्तर्मन में रहे मोह के बंध को तुडवाना सरल काम नहीं था, इस भगीरथ कार्य में सफलता पाने के लिए राजु ने भी दृढ संकल्प कर लिया था ! मोह के बंधन को तोडने में राजु के सफल मार्गदर्शक बने थे अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य । उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद न होता तो शायद राजु को सफलता नहीं मिल पाती ।

दि. 7 जनवरी 1977 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु अपने पिताजी शा छगनराजजी चोपडा और पंडितजी हिम्मतभाई (जो बाली में साधु-साध्वीजी को संस्कृत-प्राकृत और न्याय सिखाते थे ।) के साथ बाली से बस द्वारा लुणावा आए । उस समय अध्यात्मयोगी पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. लुणावा में विराजमान थे ।

वंदनविधि और औपचारिक बातचीत के बाद मुमुक्षु राजु के पिताजी का एक ही स्वर था-राजमल की दीक्षा 1-2 वर्ष बाद की जाय ।

उस समय भविष्यदृष्टा पूज्यश्री ने अपना मौन तोडते हुए एक ही बात कहीं....`राजु अब तैयार हो चूका हैं, अब ज्यादा देर करने जैसी नहीं हैं ।'

महापुरुष के थोडे से शब्दों में भी अपूर्व शक्ति रही होती है । वे बोलते कम है और काम ज्यादा होता है ।

बस, अध्यात्मयोगी युगमहर्षि महापुरुष के अल्प शब्दों ने छगनराजजी के मन पर जादुई असर किया और उन्होंने परिवार के अन्य किसी भी सदस्य से बातचीत किए बिना तत्काल पूज्यश्री को अपने सुपुत्र की भागवती-दीक्षा के लिए अपनी सम्मति प्रदान कर दी ! यह था पुण्यपुरुष के अल्पशब्दों का गजब का प्रभाव ! और उसी समय पूज्य गुरुदेव श्री ने दीक्षा का मुहुर्त भी प्रदान कर दिया । माघ शुक्ला त्रयोदशी विक्रम संवत् 2033 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु की भागवती दीक्षा निश्चित हो गई ।

पूज्य गुरुदेवश्री की ही असीम कृपा से जन्मभूमि **बाली** में **वर्धमान तपोनिधि पू. पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.** के वरद हस्तों से मुमुक्षु ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । वे अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव श्री के अंतिम शिष्य बने और वे मुनि श्री रत्नसेनविजयजी म. के नाम से पहिचाने जाने लगे ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद परम तपस्वी पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.सा. के सानिध्य में लगभग 3 वर्ष तक पाटण में ग्रहण व आसेवन शिक्षा अंगीकार की । संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के साथ न्याय, काव्य, प्रकरण ग्रंथ, कर्मग्रंथ, विविध दर्शन, जैन-आगम आदि का गहन अभ्यास किया ।

प्रभावक प्रवचन शैली : विक्रम संवत् 2033 में उनकी भागवती दीक्षा हुई । ठीक 14 मास के बाद वर्धमान तपोनिधि पूज्य पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.सा. की शुभ निश्रा में वि.सं. 2034 फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी के दिन पाटण में उनका सबसे पहला प्रवचन हुआ । पूज्य गुरुदेवश्री के शुभाशीष उनके साथ थे, अतः वह प्रवचन अत्यंत ही प्रभावक रहा । उसके बाद वि.सं. 2036 से उनकी पर्युषण प्रवचनमाला एवं वि.सं. 2038 में बाली से उनके चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ हो गए थे । वह प्रवचन गंगा आज भी निरंतर बह रही है ।

श्रोताओं की अंतरंग योग्यता को परखकर, शास्त्रीय पदार्थ को खूब सरल व रोचक शैली में समझाने की कला उन्हे हासिल हुई है। इसके द्वारा वे अनेकों के जीवन परिवर्तन में निमित्त बने है।

प्रभावक साहित्य सर्जन : वि.सं. 2038 में पूज्य मुनिश्री ने अपने स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री के जीवन परिचय के रुप में **'वात्सल्य के महासागर'** पुस्तक का आलेखन किया था, तब से उनकी लेखन यात्रा निरंतर जारी है। उनकी लेखनी में सरलता हैं, रोचकता है और धारा प्रवाह है। उनके द्वारा आलेखित साहित्य पाठकों के अन्तर्गत को इस प्रकार छू लेता हैं कि एक बार पुस्तक प्रारंभ करने के बाद उसे छोडने का मन ही नहीं होता है। साहित्य के विविध विषयों पर उनकी लेखनी चली है, जो आज भी गतिमान है।

परम पूज्य उपकारी गुरुदेवश्री के कालधर्म के बाद पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य भगवंत, एवं समतानिधि पू. पंन्यास श्री वज्रसेनविजयजी म.सा. की आज्ञानुसार पाली, रतलाम, अहमदाबाद, पिंडवाडा, उदयपुर, जामनगर, गिरधरनगर, सुरेन्द्रनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धुलिया, कराड, चिंचवड स्टे., भायंदर, पूना, येरवडा, कालाचौकी (मुंबई) श्रीपालनगर मुंबई, कर्जत (जिला रायगढ़ M.S.) भिवंडी, रोहा, भायंदर, पालीताणा, बाली, घाणेराव, पालीताणा, नासिक, बेंगलोर तथा मैसूर आदि क्षेत्रों में चातुर्मास कर दैनिक व जाहिर प्रवचनों के माध्यम से अनेकविध आराधनाएँ कराई है।

पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा से थाणा में 109 सिद्धितप व 160 सामुदायिक वर्षीतप की आराधनाएँ हुई थी।

अपनी प्रवचन कुशलता के साथ साथ मात्र 24 वर्ष की उम्र में **'वात्सल्य के महासागर'** से प्रारंभ हुई उनकी लेखनी अबाधगति से आगे बढ़ रही है। पूज्य आचार्यश्री की अभी तक 207 पुस्तकें प्रकाशित हो चूकी है और अभी भी वह सर्जन यात्रा चालू ही है।

तप साधना में पूज्य आचार्यश्री अपने 43 वर्ष के संयम पर्याय में लगभग नियमित एकाशना करते हैं और प्रत्येक सुद पंचमी को ज्ञान की आराधना निमित्त उपवास करते है।

पिंडवाडा, गिरधरनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धूलिया, कराड, भायंदर, चिंचवड स्टे. पूना, येरवडा, श्रीपालनगर तथा भिवंडी में वाचना-श्रेणी का आयोजन कर सैंकडों नवयुवकों के जीवन को संस्कारित किया है।

'अर्हद् दिव्य संदेश' मासिक के माध्यम से पूज्य के चिंतानात्मक लेख-प्रवचन-उपदेश पिछले 28 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रहे हैं।

अनेकों को धर्मबोध देने वाले पूज्य मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा. को शासन प्रभावक प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय महोदयसूरीश्वरजी म.सा. की आज्ञानुसार वैशाख वदी 6, वि.सं. 2055 में चिंचवड (पूना) में गणि पद से अलंकृत किया गया और शासन प्रभावक पूज्य गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.सा. की आज्ञानुसार कार्तिक वदी-5, वि.सं. 2061 के शुभ दिन श्रीपालनगर मुंबई में पंन्यास पद से तथा समुदाय के ज्येष्ठ पूज्यों की आज्ञा एवं आशीर्वाद से पोष वदी-1, वि.सं.2067, दि.20-1-2011 के शुभ दिन कोंकण शत्रुंजय थाणा नगरी में हजारों की जनमेदिनी के बीच शासन प्रभावक **पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय कनकशेखरसूरीश्वरजी म.सा.** के वरद् हस्तों से उन्हें जिनशासन के राजा तुल्य आचार्य पद से अलंकृत किया गया।

अत्यंत ही सरल, रोचक व प्रभावपूर्ण प्रवचनशैली के द्वारा वे श्रोताओं के अन्तर्मन को छू लेते है। उनके उपदेश से अनेक भूले भटकें युवानों को नई दिशा प्राप्त हुई है।

वे कुशल विवेचनकार भी है। सामायिक सूत्र, चैत्यवंदन सूत्र, आलोचना सूत्र, श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र, आनंदघन चोबीसी, आनंदघनजी के पद, पू. यशोविजयजी म. की चोबीसी, अमृतवेल की सज्झाय

आदि के ऊपर उन्होंने खूब सुंदर व सरलशैली में विवेचन भी लीखा हैं।

वे कुशल अवतरणकार भी है। जैन रामायण और महाभारत पर दिए गए उनके, जाहिर प्रवचनों का उन्होंने स्वयं ने आलेखन भी किया है। तथा अपने गुरुदेव एवं प्रगुरुदेव के प्रवचनों का सुंदर शैली में अवतरण भी किया है।

वे कुशल भावानुवादक हैं- शांत सुधारस, श्राद्धविधि, गुणस्थानक क्रमारोह, छह कर्मग्रंथ, जीव विचार, नवतत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी (जैन भूगोल), तीन भाष्य, छ कर्मग्रंथ आदि प्राचीन ग्रंथों का उन्होंने सरस भावानुवाद एवं विवेचन भी किया है।

वे प्रभावक कथा-आलेखक भी हैं- कर्मन् की गत न्यारी (महाबल-मलयासुंदरी चरित्र) आग और पानी (समरादित्य चरित्र) कर्म को नहीं शर्म (भीमसेन चरित्र) तब आंसु भी मोती बन जाते है (सागरदत्त चरित्र) कर्म नचाए नाच (तरंगवती चरित्र) चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती जैसे अनेक चरित्र ग्रंथों का उपन्यास शैली में आलेखन भी किया है।

वे प्रसिद्ध चिंतक भी है। प्रवचन मोती, प्रवचन रत्न, चिंतन मोती, प्रवचन के बिखरे फूल, अमृत की बुंदे, युवा चेतना जैसे प्रकाशनों में उनके हृदय स्पर्शी चिंतन भी प्रस्तुत हुए है।

वे कुशल प्रवचनकार भी है- सफलता की सीढ़ियाँ, श्रावक कर्तव्य, नवपद प्रवचन, प्रवचन-धारा, `आनंद की शोध', पांच प्रवन, प्रेरक प्रवचन आदि में उनके प्रवचनों का सुंदर संकलन है।

वे प्रसिद्ध कहानीकार भी हैं- प्रिय कहानियाँ, मनोहर कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, मधुर-कहानियाँ, प्रेरक कहानियाँ, सरल कहानियाँ सरस कहानियाँ, आदर्श कहानियाँ आदि में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर हृदयस्पर्शी कहानियों का आलेखन किया है।

जैन शासन के ज्योतिर्धर, महान् ज्योतिर्धर, तेजस्वी सितारें, गौतमस्वामी-जंबुस्वामी आदि में उन्होंने जैन शासन के महान् प्रभावक पुरुषों के जीवन चरित्रों का सुंदर आलेखन भी किया है।

वे कुशल संपादक भी है-युवाचेतना विशेषांक, जीवन निर्माण विशेषांक, आहार विज्ञान विशेषांक, श्रावकाचार विशेषांक, श्रमणाचार विशेषांक, सन्नारी विशेषांक, राजस्थान तीर्थ विशेषांक, उपधान तप विशेषांक जैसे अनेक विशेषांकों का सफल संपादन भी किया है ।

हमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास है कि पूज्य श्री द्वारा आलेखित पूर्व प्रकाशनों की भांति प्रस्तुत प्रकाशन भी अवश्य लोकोपयोगी सिद्ध होगा ।

उनके उपदेश से अनेक संघों में अनेकविध तपश्चर्याएं, अनेकविध भाव-यात्राएँ, तप-जप आदि अनुष्ठान, उपधान, प्रतिष्ठा, छ'री पालित संघ, उद्यापन, जीवित महोत्सव आदि संपन्न हुए है । उनके द्वारा आलेखित साहित्य भारत भर के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में खूब चाव से पढा जाता है ।

सन्मार्ग की राह बतानेवाला उनका साहित्य अनेकों के लिए सफल मार्गदर्शक बना है । उनका साहित्य नूतन प्रवचनकारों के लिए भी खूब उपयोगी बना है । आचार्य पदारुढ होने के बाद उनके वरद हस्तों से जिन शासन की सुंदर प्रभावनाएँ हो रही है ।

शासनदेव से हमारी यही प्रार्थना है कि पूज्यश्री चिरायु बने और उनके वरद हस्तों से जिनशासन की निरंतर प्रभावनाएँ होती रहे ।

-: निवेदक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट–मुंबई.

अर्थ बोध से भाववृद्धि

जगत् के जीवों के कल्याण के लिए तारक तीर्थंकर परमात्मा ने पांच आचार बताए है । उन पांच आचारों में सर्व प्रथम आचार ज्ञानाचार है । तत्व के बोध से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है और उसके साथ चारित्र की भी प्राप्ति होती है । नवतत्त्व में ठीक ही कहा है–

'जीवाइ नवपयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।' जो जीव आदि नौ तत्त्वों को जानता है, उसे सम्यक्त्व होता है ।

सम्यक्त्व के फल स्वरुप सम्यक् चारित्र भी प्राप्त होता है ।

ज्ञानाचार के अन्तर्गत सूत्रों का अभ्यास किया जाता है ।

सूत्रों के भी दो प्रकार है- 1) आचार प्रधान और 2) विचार प्रधान ।

सामायिक आदि छ आवश्यक के सूत्र आचार-प्रधान कहलाते है ।

तत्वज्ञान, कर्मविज्ञान, तत्वार्थसूत्र आदि ग्रंथ विचार प्रधान कहलाते है ।

आचार प्रधान ग्रंथों के अभ्यास से जीवन में आचार शुद्धि होती है तो विचार प्रधान ग्रंथों के अभ्यास से जीवन में विचार शुद्धि होती है ।

प्रतिक्रमण संबंधी सूत्र आचार प्रधान कहलाते है ।

जैन श्वेतांबर परंपरा में सर्वप्रथम आचार प्रधान अर्थात् प्रतिक्रमण संबंधी सूत्रों का ही अभ्यास किया जाता है ।

उन सूत्रों के अभ्यास के बाद उनका अर्थ जानना बहुत जरुरी है ।

ज्ञानाचार के आठ आचारों में भी छठ्ठा आचार व्यंजन अर्थात् सूत्रों का शुद्ध उच्चारण है और सातवां आचार अर्थ अर्थात् सूत्र का सही अर्थ करना है ।

सूत्रों के अभ्यास के बाद अर्थ का अभ्यास होना बहुत जरुरी है ।

यद्यपि प्रतिक्रमण के मुख्य सूत्र गणधर रचित होने के कारण मंत्र गर्भित और प्रभाव संपन्न है, फिर भी अर्थ बोध के अभाव में उन सूत्रों के उच्चारण में जैसा उत्साह होना चाहिये, वैसा उत्साह दिखता नहीं है ।

वर्तमान श्रावक-श्राविका संघ की ओर नजर करते है तो पता चलता है कि आज जितना वर्ग प्रभु-पूजा व प्रभु-दर्शन करता है, उसका 10% वर्ग भी प्रतिक्रमण करनेवाला नहीं है । जो भी प्रतिक्रमण करता है, उनमें उभयकाल प्रतिक्रमण करनेवाले बहुत कम है ।

उभय काल प्रतिक्रमण करने का उपदेश तीर्थंकर परमात्मा ने दिया है और उन सूत्रों के रचयिता गणधर भगवंत है, परंतु वर्तमान काल में उन क्रियाओं में निरसता दिखाई देती है ।

जो भी पुण्यशाली उभयकाल प्रतिक्रमण करते है, उनमें भी क्रिया करते समय जो भावोल्लास और उत्साह-उल्लास होना चाहिये, वह दिखाई नहीं देता है ।

संवत्सरी प्रतिक्रमण की ही बात ले—

एक गांव में दो जगह संवत्सरी प्रतिक्रमण की व्यवस्था की हो, उनमें पहले से घोषणा कर दी जाय कि एक जगह प्रतिक्रमण दो घंटे में पूरा हो जाएगा और दूसरी जगह साढ़े तीन घंटे लगेंगे, तो लगभग यह स्थिति होगी कि दो घंटे में प्रतिक्रमण होनेवाला पंडाल पूरा भर जाएगा, जबकि 3½ घंटे के प्रतिक्रमण में थोडे ही लोग होंगे ।

प्रतिक्रमण में निरसता का मुख्य कारण उन सूत्रों की भाषा और उन सूत्रों के अर्थ के बोध का अभाव है ।

वर्तमान जैन संघ में प्राकृत और संस्कृत भाषा को जानने और समझनेवाले श्रावक-श्राविका नहींवत् है । भाषाज्ञान के अभाव के कारण उन सूत्रों को बोलने में जो उत्साह आना चाहिये, वह दिखाई नहीं देता है ।

जहां भी धार्मिक पाठशालाएं चलती हैं, वहां भी मुख्यतया प्रतिक्रमण सूत्रों का ही अभ्यास दिखाई देता हैं, अर्थ का अभ्यास करनेवाले विद्यार्थी बहुत ही कम दिखाई देते है ।

अर्थ बोध के अभाव के कारण भी प्रतिक्रमण सूत्रों के उच्चारण आदि में जो उत्साह आना चाहिये, वह नहीं दिखता है ।

वर्तमान में सबसे बडी आवश्यकता है सूत्र बोध के साथ अर्थ बोध की ।

अर्थ बोध हो तो सूत्रों के उच्चारण में आनंद आ सकता है ।

स्तवन-स्तुति की रचना लोकभोग्य भाषा में होने से उसका अर्थ-बोध भी साथ-साथ चलता हैं, अतः स्तवन बोलने में उत्साह उल्लास दिखता हैं, परंतु प्रतिक्रमण सूत्रों की रचना प्राकृत भाषा में होने से, उस भाषा की अनभिज्ञता और अर्थबोध के अभाव के कारण, प्रतिक्रमण की क्रिया में उत्साह-उल्लास नहीं दिखता है ।

प्रतिक्रमण सूत्रों के अर्थ बोध हेतु गुजराती भाषा में विपूल प्रमाण में साहित्य उपलब्ध हैं, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के साहित्य की बहुत कमी है ।

वर्षों पूर्व नवकार से लेकर पंच प्रतिक्रमण सूत्र तक विवेचन तैयार किया था, जो आज पुनः प्रकाशित हो रहा है ।

स्वर्गस्थ परमोपकारी वात्सल्यसिंधु प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद गुरुदेव **पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य श्री** की बरसती हुई असीम कृपा वर्षा तथा सौजन्यमूर्ति परमोपकारी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी म.सा.** के शुभाशीर्वाद से ही यह विवेचन तैयार हो पाया है ।

इस विवेचन को तैयार करने में गुजराती प्रबोध टीका तथा अन्य विवेचनों की सहायता ली गई हैं-उन सभी लेखक-विवेचकों का मैं अत्यंत ही आभारी हूँ ।

इस विवेचन में छद्मस्थतावश कहीं स्खलना रह गई हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम्...

वैशाख सुदी-13 + 14,
वि.संवत् 2075,
दि. 17-5-2019
ईरोड, (T.N.)

-: निवेदक :-
अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
पादपद्मरेणु **रत्नसेनसूरि**

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ नं.
36.	आयरिय उवज्झाए	1
37.	सुअदेवया थुइ	4
38.	खित्तदेवया थुइ	5
39.	श्रुतदेवता स्तुति	6
40.	भुवनदेवता स्तुति	7
41.	क्षेत्रदेवता स्तुति	8
42.	नमोस्तु वर्धमानाय	9
43.	विशाल लोचनदलं	12
44.	अडढाइज्जेसु दीव समुद्देसु	15
45.	वर कनक	17
46.	लघु शान्ति	18
47.	चउक्कसाय सूत्र	33
48.	भरहेसर सज्झाय	35

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ नं.
49.	मन्नहजिणाण-सज्झाय	37
50.	सकलतीर्थ वंदना सूत्र	39
51.	संतिकरं स्तवन	87
52.	स्नातस्या स्तुति	101
53.	सकलार्हत् स्तोत्र	106
54.	अजितशांति स्तवन	135
55.	बृहच्छांति	175
56.	पाक्षिक हिन्दी अतिचार	191
57.	पाक्षिक गुजराती अतिचार	205
58.	तिजय पहुत्त	215
59.	नमिऊण स्तोत्र	218
60.	भक्तामर स्तोत्र	223
61.	कल्याण मंदिर स्तोत्र	240

卐 मूल-सूत्र 卐

आयरिय-उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल-गणे अ ।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ।।1।।
सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ-सीसे ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।2।।
सव्वस्स जीव रासिस्स, भावओ धम्म-निहिय निय-चित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।3।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. शास्त्रीय नाम : आयरियाइ-खामणा सूत्तं (आचार्यादि-क्षमापना सूत्र)
2. प्रचलित नाम : आयरिय उवज्झाए सूत्र
3. विषय सामग्री : शासन के नायक आचार्य, उपाध्याय आदि के साथ हुए अपराधों की क्षमा-याचना करना ।

।। शब्दार्थ ।।

आयरिय-उवज्झाए=आचार्य और उपाध्याय के प्रति
सीसे=शिष्य पर
साहम्मिए=साधर्मिक पर
कुल-गणे=कुल और गण के प्रति
अ=और
जे मे केइ कसाया=मैंने जो कोई कषाय किया हो ।
सव्वे=उन सब को
तिविहेण=तीनों प्रकार (मन, वचन और काया से)
खामेमि=क्षमा मांगता हूँ ।
सव्वस्स=समस्त
समण-संघस्स=श्रमणसंघ को
भगवओ=पूज्य
अंजलिं करिअ=हाथ जोडकर
सीसे=मस्तक पर
सव्वं=सब को
खमावइत्ता=क्षमा मांगकर
खमामि=क्षमा करता हूँ ।
सव्वस्स=सबको
अहयं पि=मैं भी
सव्वस्स जीवरासिस्स=समस्त जीव राशि को
भावओ=भाव से
धम्म-निहिय निय चित्तो=धर्म में स्थापित किया है चित्त ऐसा मैं ।

सामान्य अर्थ

आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण के प्रति मैंने जो कोई अपराध किया हो, उन सबकी मैं मन, वचन और काया से क्षमा मांगता हूँ ।।1।।

मस्तक पर हाथ जोड़कर पूजनीय श्रमण संघ से क्षमा मांगकर मैं भी सबको क्षमा प्रदान करता हूँ ।।2।।

अंतः करण से धर्म भावना पूर्वक समस्त जीवराशि से क्षमा मांगकर मैं भी सबको क्षमा प्रदान करता हूँ ।।3।।

विशेष अर्थ

छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है । भूल हो जाना मानव का सहज स्वभाव है । परन्तु भूल को स्वीकार कर लेना, यह उसकी महानता है ।

आध्यात्मिक जगत् में पाप से भी पाप का अस्वीकार अत्यधिक खतरनाक है । पाप-प्रवृत्ति हो जाने के बाद जो व्यक्ति पाप को हृदय से स्वीकार कर लेता है और पाप की आलोचना कर लेता है, वह व्यक्ति पाप के भार से हल्का हो जाता है ।

संघ, समुदाय व परिवार में सभी के स्वभाव एक-समान नहीं होते हैं । स्वभाव की भिन्नता के कारण कभी परस्पर टकराव हो जाने की भी संभावना रहती है । कभी अज्ञानतावश क्रोध आ जाय और उसके परिणामस्वरूप आत्मा का संसार बढ़ न जाय, इसके लिए प्रतिदिन परस्पर-क्षमापना कर लेना हितकारी है ।

बर्तन को रोज-रोज माँजा जाय तो वह अधिक मलिन नहीं होगा । वस्त्र को रोज-रोज धो दिया जाय तो वह अधिक गंदा नहीं होगा । बस, इसी प्रकार मन को भी रोज-रोज माँजा जाय तो उसे स्वच्छ बनाया जा सकता है । मन के शुद्धिकरण के लिए ही तारक परमात्माओं ने पंच-प्रतिक्रमण की व्यवस्था की है । रात्रि संबंधी पाप-भूलों की आलोचना हम **राइ प्रतिक्रमण** द्वारा करते हैं और दिवस-संबंधी पापों की आलोचना **देवसिक-प्रतिक्रमण** द्वारा करते हैं । पक्ष संबंधी पापों की आलोचना **पक्खी प्रतिक्रमण** द्वारा, चार मास संबंधी पापों की आलोचना **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण** द्वारा व वर्ष संबंधी पापों की आलोचना **संवत्सरी प्रतिक्रमण** द्वारा करते हैं ।

प्रतिक्रमण के अन्तर्गत श्रमण सूत्र द्वारा श्रमण जीवन में हुए पापों की

आलोचना अथवा **'श्राद्ध प्रतिक्रमण-सूत्र'** द्वारा श्रावक जीवन में हुए पापों की आलोचना और सर्व जीवों से परस्पर क्षमापना करने के बाद आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल, गण एवं श्रमण-संघ के साथ विशेषतया क्षमापना की जाती है ।

आचार्य भगवंत संघ के नायक होते हैं । उनके सान्निध्य में रहकर शिष्यगण पंचाचार की आराधना करता है । शिष्य की भूल होने पर वे आचार्य भगवंत सारणा आदि द्वारा शिष्यों को योग्य शिक्षा भी करते है । आचार्य भगवंत के द्वारा कठोर शब्द कहने पर यदि मन में गुस्सा आ गया हो तो शिष्य का कर्तव्य है कि वह आचार्य भगवंत के पास अपने अपराध की क्षमायाचना कर ले । अंतःकरण से क्षमायाचना कर लेने से हृदय साफ हो जाता है । इसी प्रकार शास्त्रों का अध्यापन करानेवाले उपाध्याय भगवंत के प्रति कोई कषाय हो गया हो तो उनसे भी क्षमा-याचना की जाती है ।

जैन शासन की बलिहारी है कि यहाँ भूल हो जाने पर शिष्य तो गुरु से क्षमायाचना करता ही है, परन्तु गुरु द्वारा भूल हो गई हो तो वे भी शिष्य आदि से क्षमायाचना करते हैं । बस, इसी नियमानुसार आचार्य भगवंत अपने शिष्य से भी क्षमायाचना करते है ।

एक आचार्य भगवंत के अधीन बहुत से शिष्य होते हैं, वे परस्पर एक दूसरे के साधर्मिक कहलाते हैं । अज्ञानता, मोह व कषाय आदि के कारण उनमें भी परस्पर कलह आदि हो गया हो या किसी ने किसी को कटु शब्द कह दिए हों तो अपने साधर्मिक के साथ भी क्षमा याचना की जाती है । एक आचार्य के शिष्यों के समुदाय को कुल कहते हैं और परस्पर सापेक्ष तीन कुलों के समूह को गण कहा जाता है । कुल व गण के साधुओं के साथ भी परस्पर कलह हो गया हो तो उनसे भी क्षमायाचना की जाती है ।

दूसरी गाथा द्वारा हाथ जोड़कर समस्त श्रमण संघ के पास क्षमा याचना की जाती है । अनेक गणों के समूह को संघ कहा जाता है । अतः प्रमादादि दोषों के कारण श्रमणसंघ के किसी भी साधु के साथ किसी प्रकार का अपराध किया हो तो उनसे भी इस गाथा द्वारा क्षमायाचना की जाती है, इसके साथ दूसरों के द्वारा हुए अपराधों को क्षमा प्रदान की जाती है ।

क्षमा का आदान-प्रदान करने से पारस्परिक वैर-विरोध शांत हो जाते हैं और परस्पर प्रेम-भाव और वात्सल्य का सर्जन होता है ।

तीसरी गाथा में समस्त जीवराशि के साथ हुए अपराधों की क्षमा मांगी जाती है और दूसरों के द्वारा हुए अपराधों को क्षमा प्रदान की जाती है ।

卐 मूल-सूत्र 卐

सुअदेवया भगवई, नाणावरणीय-कम्म-संघायं ।
तेसिं खवेउ सययं, जेसिं सुअसायरे भत्ति ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : श्रुतदेवता की स्तुति
2. शास्त्रीय नाम : सुअदेवया थुइ (श्रुतदेवता स्तुति)
3. विषय-सामग्री : श्रुतदेवता का स्वरुप

।। शब्दार्थ ।।

सुअदेवया=श्रुतदेवी
भगवई=पूज्य भगवती
नाणावरणीय-कम्म-संघायं= ज्ञानावरणीय कर्म समूह का
तेसिं=उनका
खवेउ=क्षय करो
जेसिं=जिनका
सुअसायरे=श्रुतसागर में
भत्ती=भक्ति

सामान्य अर्थ

प्रवचनरूपी समुद्र के विषय में जिनकी सदैव भक्ति है, पूज्य श्रुतदेवी उनके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करो !

विशेष अर्थ

मोक्षमार्ग की आराधना में श्रुतधर्म व चारित्र-धर्म की आराधना-साधना की जाती है। श्रुत की प्राप्ति गणधर रचित्र सूत्रों के आलंबन से हो सकती है। उसके लिए श्रुत-सिद्धांत के प्रति भक्ति-भाव होना अनिवार्य है। श्रुत के प्रति भक्ति अखंडित बनी रहे, इसी उद्देश्य से श्रुतदेवता को लक्ष्य में रखकर आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग किया जाता है और कायोत्सर्ग पूर्ण करने के बाद यह स्तुति बोली जाती है। इस स्तुति में यह भावना की जाती है कि जिनके मन, जिन-प्रवचन के प्रति अटूट श्रद्धा व भक्ति का भाव रहा हुआ है, उन्हें वह श्रुतदेवी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय में सहायक बने।

श्री आवश्यक सूत्र की चूर्णि, बृहद्वृत्ति, लघुवृत्ति भाष्य, पाक्षिक सूत्र व प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रंथों में श्रुतदेवता के कायोत्सर्ग का विधान है।

यह गाथा प्राय: पूर्वगत होने से स्त्रियों के लिए इसका निषेध है, वे इसके स्थान पर कमलदल की स्तुति बोलती हैं।

卐 मूल-सूत्र 卐

जीसे खित्ते साहु, दंसण-नाणेहि चरण सहिएहिं ।
साहंति मुक्ख-मग्गं, सा देवी हरउ दुरिआइं ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : क्षेत्र-देवता की स्तुति
2. शास्त्रीय नाम : खित्तदेवया थुइ (क्षेत्रदेवता की स्तुति)
3. विषय-सामग्री : क्षेत्र देवता की स्तुति

।। शब्दार्थ ।।

जीसे=जिनके	**साहंति=**साधना करते हैं ।
खित्ते=क्षेत्र में	**मुक्ख-मग्गं=**मोक्षमार्ग की
साहु=साधु	**सा देवी=**वह देवी
दंसण-नाणेहिं=दर्शन व ज्ञान द्वारा	**हरउ=**दूर करे
चरण सहिएहिं=चारित्र के साथ	**दुरिआइं=**पाप (विघ्नों को)

सामान्य अर्थ

जिनके क्षेत्र में साधु भगवंत सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र सहित मोक्षमार्ग की साधना करते हैं, वह देवी (क्षेत्रदेवता) विघ्नों को दूर करे ।

विशेष अर्थ

प्रत्येक क्षेत्र की अधिष्ठायिका देवी होती है । क्षेत्र की अधिष्ठायिका देवी अपने क्षेत्र में रहे साधुओं के अनिष्टों को दूर करती है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता दर्शाने के लिए यह स्तुति की जाती है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

卐मूल-सूत्र卐

कमलदल विपुलनयना, कमलमुखी कमलगर्भ-समगौरी ।
कमले स्थिता भगवती, ददातु श्रुतदेवता सिद्धिम् ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : कमलदल स्तुति
2. शास्त्रीय नाम : श्रुतदेवता स्तुति
3. विषय-सामग्री : सरस्वती देवी की स्तवना

।। शब्दार्थ ।।

कमलदल विपुलनयना=कमल दल के समान विशालनयन वाली
कमल मुखी=कमल के समान मुखवाली
कमलगर्भसमगौरी=कमल के गर्भ समान गौर वर्णवाली
कमले=कमल पर
स्थिता=रही हुई
भगवती=पूज्य
ददातु=प्रदान करे
श्रुतदेवता=श्रुतदेवी
सिद्धिम्=सिद्धि

सामान्य अर्थ

कमलपत्र के समान विशाल नेत्रों वाली, कमल जैसे मुख वाली, कमल के मध्य भाग जैसे गौर वर्णवाली और कमल पर स्थित ऐसी श्रुतदेवी (देवता) सिद्धि प्रदान करे ।

विशेष-अर्थ

प्रतिक्रमण में छह आवश्यक की पूर्णाहुति के बाद श्रुतदेवता के कायोत्सर्ग में बहनें यह स्तुति बोलती हैं । इस स्तुति में श्रुतदेवी के नयन, मुख व शरीर की तुलना कमल के विविध अंगों के साथ की गई है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

卐मूल-सूत्र卐

(भुवणदेवयाए करेमि काउसग्गं)

(गाहा)

ज्ञानादिगुण-युतानां, नित्यं स्वाध्याय-संयम-रतानाम् ।
विदधातु भुवनदेवी, शिवं सदा सर्वसाधूनाम् ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : भुवण देवयाए
2. शास्त्रीय नाम : भुवन देवता की स्तुति
3. भाषा : संस्कृत

।। शब्दार्थ ।।

भुवणदेवयाए=भुवन देवता के लिये, भुवनदेवीकी आराधनाके निमित्त से ।
करेमि=मैं करता हूँ ।
काउस्सग्गं=कायोत्सर्ग को ।
अन्नत्थ=इसके अतिरिक्त ।
ज्ञानादिगुण-युतानां=ज्ञानादि गुणों से युक्त का, ज्ञान, दर्शन और चारित्र से युक्त ।
नित्यं=निरंतर ।
स्वाध्याय-संयम-रतानाम्=स्वाध्याय और संयम में लीन ।
विदधातु=करो ।
भुवनदेवी=भुवनदेवी ।
शिवं=कल्याण, उपद्रव-रहित ।
सदा=सदा ।
सर्वसाधूनाम्=सब साधुओं का ।

सामान्य अर्थ

भुवनदेवी की आराधना के निमित्त से मैं कार्योत्सर्ग करता हूँ ।

इसके अतिरिक्त–ज्ञान, दर्शन और चारित्र से युक्त, निरन्तर स्वाध्याय और संयम में लीन ऐसे सब साधुओं को भुवनदेवी सदा उपद्रव रहित करे ।।1।।

विशेष अर्थ

क्षेत्रदेवता की आराधना के निमित्त मैं कार्योत्सर्ग करता हूँ । इसके अतिरिक्त–जिनके क्षेत्र का आश्रय लेकर साधुओं द्वारा मोक्षमार्ग की आराधना की जाती है, वह क्षेत्रदेवता हमें सदा सुख देनेवाली हों ।।1।।

सूत्र-परिचय

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के समय भुवनदेवता का कायोत्सर्ग करते हुए यह स्तुति बोली जाती है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

(खित्तदेवयाए करेमि काउसग्गं)

(सिलोगो)

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य, साधुभिः साध्यते क्रिया ।
सा क्षेत्रदेवता नित्यं, भूयान्नः सुखदायिनी ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : खित्तदेवया
2. शास्त्रीय नाम : क्षेत्र देवता स्तुति
3. भाषा : संस्कृत

।। शब्दार्थ ।।

खित्तदेवयाए=क्षेत्र देवता की आराधना के निमित्त से ।
करेमि=मैं करता हूँ ।
काउस्सग्गं=कायोत्सर्ग को ।
अन्नत्थ=इसके अतिरिक्त ।
यस्याः=जिनके ।
क्षेत्रं=क्षेत्र का ।
समाधित्य=आश्रय लेकर ।
साधुभिः=साधुओं द्वारा ।
साध्यते=साधी जाती है, की जाती है ।
क्रिया=मोक्षमार्ग की आराधना ।
सा=वह ।
क्षेत्रदेवता=क्षेत्र देवता ।
नित्यं=सदा ।
भूयात्=हो ।
नः=हमें ।
सुखदायिनी=सुख देनेवाली ।

सामान्य अर्थ

क्षेत्रदेवता की आराधना के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ । इसके अतिरिक्त–

जिनके क्षेत्र का आश्रय लेकर साधुओं द्वारा मोक्षमार्ग की आराधना की जाती है, वह क्षेत्रदेवता हमें सदा सुख देनेवाली हों ।।1।।

विशेष अर्थ

पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमणके समय क्षेत्र देवता का कायोत्सर्ग करते हुए यह स्तुति बोली जाती है ।

इच्छामो अणुसट्ठिं, नमो खमासमणाणं ।
नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधुभ्यः ।।
नमोऽस्तु वर्धमानाय, स्पर्धमानाय कर्मणा ।
तज्जयावाप्तमोक्षाय, परोक्षाय कुतीर्थिनाम् ।।1।। (अनुष्टुप् छंद)
येषां विकचारविन्द-राज्या, ज्यायःक्रम-कमलावलिं दधत्या ।
सदृशैरिति सङ्गतं प्रशस्यं, कथितं सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ।।2।।
(औपछन्दसिक-छंद)
कषायतापार्दित-जन्तु-निर्वृतिं, करोति यो जैन मुखाम्बुदोद्गतः ।
स शुक्र-मासोद्भव-वृष्टि-सन्निभो, दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिराम् ।।3।।
(वंशस्थ)

◆ संक्षिप्त परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : नमोऽस्तु वर्धमानाय
2. शास्त्रीय नाम : वर्धमान-स्तुति
3. विषय-सामग्री : महावीर प्रभु की स्तवना

।। शब्दार्थ ।।

इच्छामो=चाहते हैं
अणुसट्ठिं=अनुशासन
नमो=नमस्कार हो
खमासमणाणं=क्षमाश्रमणों को
नमोऽस्तु=नमस्कार हो
वर्धमानाय=वर्धमान स्वामी को
स्पर्धमानाय=स्पर्धा करनेवाले
कर्मणा=कर्म के साथ
तज्जया-वाप्त-मोक्षाय=जिसको जीतकर मोक्ष प्राप्त करनेवाले
परोक्षाय=परोक्ष
कुतीर्थिनाम्=मिथ्यात्वियों के लिए
येषां=जिनकी
विकच=विकसित
अरविंद-राज्या=कमल की पंक्ति
ज्यायः=श्रेष्ठ
क्रम-कमलावलिं=चरण कमल की श्रेणि को
दधत्या=धारण करनेवाली
सदृशैः=समान के साथ
इति सङ्गतं=इस प्रकार समागम होना
प्रशस्यं=प्रशंसनीय
कथितं=कहा गया है
सन्तु=हो

शिवाय=मोक्ष के लिए
ते=वे
जिनेन्द्राः=जिनेश्वर
कषायतापार्दित=कषाय के ताप से पीडित
जन्तु-निर्वृतिं=जन्तुओं की शांति को
करोति=करता है
यः=जो
जैन-मुखाम्बुदोद्गतः=जिनेश्वर के मुख रूपी मेघ से प्रगट हुआ ।
सः=वह
शुक्रमासोद्भव=ज्येष्ठ मास में हुई
वृष्टि-सन्निभो=वर्षा के समान
दधातु=करो
तुष्टिं=अनुग्रह
मयि=मुझ पर
विस्तरो=विस्तार
गिराम्=वाणी का

सामान्य अर्थ

हम आपकी आज्ञा चाहते हैं । पूज्य क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो । अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार हो ।

जो कर्म रूपी दुश्मनों के साथ स्पर्धा कर (युद्ध कर) विजय को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किये हुए हैं, जिनका स्वरूप मिथ्यात्वियों के लिए अगम्य-अगोचर है, ऐसे श्री वर्धमान प्रभु को मेरा नमस्कार हो ।।1।।

जिनके श्रेष्ठ चरण-कमलों की श्रेणी को धारण करनेवाली (देवनिर्मित) विकसित (स्वर्ण) कमलों की पंक्ति ने मानों ऐसा कहा. `समान के साथ ऐसा समागम होना प्रशंसनीय है' ऐसे जिनेन्द्र मोक्ष के लिए हों ।।2।।

जिनेश्वर के मेघ रूपी मुख से प्रगट हुआ जो वाणी का समूह कषाय के ताप से पीड़ित प्राणियों को शांति प्रदान करता है और जो ज्येष्ठ मास में हुई वर्षा के समान है, वह मेरे पर तुष्ट हो ।।3।।

विशेष अर्थ

शाम के समय दैवसिक प्रतिक्रमण में छह आवश्यक पूरे होने पर मंगल-स्तुति के रूप में यह स्तुति समूह में बोली जाती है । स्तुति प्रारंभ के पूर्व गुरुदेव की अनुज्ञा मांगी जाती है । उसके द्वारा `नमोऽर्हत्' सूत्र के द्वारा पंच-परमेष्ठी को नमस्कार किया जाता है । उसके बाद पहली गाथा में आसन्न उपकारी चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा को नमस्कार किया जाता है । महावीर प्रभु, जिनका नाम वर्धमान स्वामी भी है, उन्होंने आत्मा के

शत्रुभूत कर्मों के साथ भयंकर युद्ध खेला और उस युद्ध में उन्होंने समस्त कर्मों को परास्त कर दिया। आत्मा के शत्रुभूत कर्मों का सम्पूर्ण नाश होने पर आत्मा मोक्षपद प्राप्त करती है। वर्धमान प्रभु ने कर्मों का नाश कर अजरामर ऐसा मोक्षपद प्राप्त किया।

वर्धमान स्वामी कुतीर्थियों के लिए अगम्य-अगोचर हैं, अर्थात् वे कुतीर्थी जैन दर्शन के स्याद्वादमयदर्शन को समझने में असमर्थ हैं। मिथ्यात्व के भयंकर विष से ग्रस्त आत्मा जैनदर्शन के परमार्थ को अच्छी तरह से समझ नहीं सकती है। अन्य मत मिथ्यात्व से ग्रसित होने के कारण वर्धमान स्वामी उनके लिए परोक्ष अर्थात् अगम्य-अगोचर हैं।

दूसरी गाथा में समस्त जिनेश्वरों की स्तुति की गई है। केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद जब तीर्थंकर परमात्मा पृथ्वीतल पर विचरण करते हैं, तब उनके अतिशय के प्रभाव से देवतागण 9 स्वर्ण कमलों की रचना करते हैं। प्रभु उन्हीं सुवर्ण कमलों पर पैर रखते हुए पृथ्वीतल पर विचरण करते हैं।

प्रभु के चरण-कमलों का सुवर्ण-कमलों के साथ संयोग होना प्रशंसनीय है। ऐसे जिनेश्वर भगवंत हमारे शिव-सुख के लिए हों, ऐसी मंगल कामना की जाती है।

तीसरी गाथा में जिनेश्वर भगवंत के मुखारविंद से निकली हुई वाणी की स्तुति की गई है।

ज्येष्ठ मास में सूर्य का ताप खूब-खूब बढ़ जाता है, उस ताप के फलस्वरूप सभी जीव त्रस्त हो जाते हैं। ऐसे समय में जो वृष्टि होती है, वह ताप को हरनेवाली होती है, बस, इसी प्रकार इस संसार में सभी संसारी जीव क्रोध-मान-माया और लोभ रूपी चार कषायों के ताप से अत्यधिक पीड़ित हैं। उस ताप को दूर करने के लिए भगवान की वाणी नवीन मेघ की वृष्टि के समान है। बाहर की आग को तो पानी द्वारा बुझाया जा सकता है, परन्तु क्रोधादि की भीतरी आग को बुझाना अत्यंत ही कठिन काम है। परमात्मा की वाणी में वह अद्भुत ताकत है, जो हमारी भीतरी आग को शांत कर सकती है।

यह स्तुति पूर्वगत श्रुत में से उद्धृत होने के कारण स्त्रियों के लिए निषिद्ध है। स्त्रियाँ इसके स्थान पर **'संसार दावानल'** की तीन गाथाएँ बोलती हैं।

विशाल-लोचन-दलं, प्रोद्यद्-दन्तांशु-केसरम् ।
प्रातर्वीर-जिनेन्द्रस्य, मुख-पद्मं पुनातु वः ॥1॥ (अनुष्टुप्-छंद)
येषामभिषेक-कर्म कृत्वा, मत्ता हर्षभरात् सुखं सुरेन्द्राः ।
तृणमपि गणयन्ति नैव नाकं, प्रातः सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥2॥
(औपछंदसिक-छंद)

कलङ्क-निर्मुक्त-ममुक्तपूर्णतं, कुतर्क-राहु-ग्रसनं सदोदयम् ।
अपूर्व-चन्द्रं जिन-चन्द्र-भाषितं, दिनागमे नौमि बुधैर्नमस्कृतम् ॥3॥
(वंशस्थ)

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : विशाललोचन सूत्र
2. शास्त्रीय नाम : वर्धमान जिन स्तुति
3. विषय-सामग्री : महावीर प्रभु आदि की स्तवना

॥ शब्दार्थ ॥

विशाल-लोचन-दलं=विशाल नेत्र रूपी पत्रवाले
प्रोद्यद्=देदीप्यमान
दन्तांशु=दाँतों की किरण रूप
केसरम्=केशरवाले
प्रातः=प्रातःकाल में
वीर-जिनेन्द्रस्य=वीर जिनेश्वर का
मुख-पद्मं=मुख रूपी कमल
पुनातु=पवित्र करे
वः=आपको
येषाम्=जिनकी
अभिषेक कर्म-कृत्वा=अभिषेक कर्म करके
मत्ताः=मत्त बने हुए
हर्षभरात्=अतिहर्ष से
सुखं=सुख को
सुरेन्द्राः=सुरेन्द्र
तृणमपि=तृण मात्र भी
गणयन्ति नैव=गिनते नहीं हैं
नाकं=स्वर्ग को
प्रातः=प्रातःकाल में
सन्तु=हों
शिवाय=मोक्ष के लिए
ते=वे
जिनेन्द्राः=जिनेन्द्र
कलङ्क-निर्मुक्तं=कलंक से रहित
अमुक्त-पूर्णतं=पूर्णता नहीं छोड़ने वाले को
कुतर्क-राहु-ग्रसनं=कुतर्क रूपी राहु को ग्रसित करनेवाले को
सदोदयम्=सदा उदय प्राप्त को

अपूर्व-चन्द्रं=अपूर्व चन्द्र को
जिन-चन्द्र भाषितं=जिनेश्वर रूपी चन्द्र की वाणी से बने हुए
दिनागमे=प्रातःकाल में
नौमि=नमस्कार करता हूँ ।
बुधैः=पंडितों द्वारा ।
नमस्कृतम्=नमन किया हुआ ।

सामान्य अर्थ

विशाल नेत्ररूपी पत्रवाला, चमकीले दाँतों की किरणों रूपी केसरावाले श्री वीर जिनेश्वर का मुख रूपी कमल प्रातःकाल में आपको पवित्र करे ।।1।।

जिनकी स्नात्र-क्रिया (महोत्सव) करने से अति हर्ष से मत्त बने हुए देवेन्द्र, स्वर्ग के सुख को तृण समान भी नहीं गिनते हैं, वे जिनेन्द्र प्रातःकाल में शिवसुख प्रदान करनेवाले हों ।।2।।

जो कलंक से रहित हैं, पूर्णता को नहीं छोड़ते हैं, कुतर्क रूपी राहु को ग्रसित कर जाते हैं, सदा उदय प्राप्त हैं, जिनचन्द्र की वाणी सुधा से बने हुए और जो पंडितों को भी नमस्करणीय हैं, उस आगम रूपी अपूर्व चंद्र की प्रातःकाल में मैं स्तुति करता हूँ ।।3।।

विशेष अर्थ

प्रातः राइ प्रतिक्रमण में छह आवश्यक की पूर्णाहुति के बाद हर्ष की अभिव्यक्ति रूप ये स्तुतियाँ बोली जाती हैं, अतः इसे प्राभातिक स्तुति कहते हैं ।

इसकी पहली स्तुति में वीर भगवान के मुख कमल की स्तुति की गई है । प्रभु के मुख को अत्यंत ही विकसित कमल की उपमा दी गई है । प्रभु के मुख कमल में विशाल लोचन रूपी पत्र है और चमकते दाँत की किरण रूपी केसराएं है ।

सरोवर में पैदा हुआ वह कमल तो सिर्फ मन को ही प्रसन्न करता है, जबकि प्रभु का यह मुख कमल तो दर्शन मात्र से सभी के मन को प्रसन्न व पवित्र भी करता है ।

दूसरी स्तुति में सभी जिनेश्वर भगवंतों की स्तुति की गई है । तीर्थंकर भगवंतों के जन्म समय इन्द्र महाराजा प्रभु को मेरु पर्वत पर ले जाकर प्रभु का भव्य स्नात्र महोत्सव करते हैं । उस स्नात्र महोत्सव को करके वे इन्द्र इतने

अधिक प्रसन्न हो जाते हैं कि उस खुशी में वे देवलोक के दिव्य सुखों को भी तृण तुल्य गिनने लगते हैं अर्थात् प्रभु की भक्ति की मस्ती में वे देवलोक के दिव्य सुखों को भी भूल जाते हैं, वे सुख भी उन्हें याद नहीं आते हैं ।

स्तुतिकार प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि वे जिनेश्वर भगवंत तुम्हारे मोक्ष के लिए हो ।

तीसरी गाथा में जिनेश्वर भगवंत के मुख से निकली हुई वाणी अर्थात् जिनागमरूपी अपूर्व चन्द्र की स्तुति की गई है ।

आकाश में रहा चन्द्र तो अनेक दोषों से दूषित है, जबकि यह जिनागम रूपी चन्द्र कोई अपूर्व चंद्र है ।

आकाश में रहे उस चन्द्र में तो कलंक है, जबकि जिनागम रूपी चंद्र तो कलंक से सर्वथा मुक्त है, उसमें किसी प्रकार की अशुद्धि या मलिनता नहीं है ।

आकाश में रहा चंद्र तो सिर्फ एक पूर्णिमा के दिन ही सोलह कलाओं से खिला होता है, जबकि अन्य दिनों में तो उसकी हानि-वृद्धि होती रहती है और अमावस्या के दिन तो वह एकदम क्षीण हो जाता है, जबकि यह जिनागम रूपी चन्द्र सदाकाल के लिए परिपूर्ण है । काल का अविरत प्रवाह भी उसे क्षीण करने में समर्थ नहीं है ।

अरे ! आकाश में रहे उस चंद्र को तो राहु ग्रसित कर जाता है, जब कि जिनागम रूपी चंद्र को ग्रसित करनेवाला कोई नहीं है ।

वह चंद्र तो रात में ही उदित होता है, दिन में पांडु पलाश-पत्र की भाँति एकदम फीका हो जाता है, जबकि जिनागम रूपी चंद्र सदा उदयप्राप्त है । काल के प्रभाव से वह सर्वथा मुक्त है ।

उस चंद्र को तो सिर्फ सामान्य जन ही नमस्कार करते हैं, जबकि इस जिनागम रूपी चंद्र को सभी पंडित पुरुष भी नमस्कार करते हैं ।

जिनेश्वर प्रभु के मुख से निकले गए वचनों के संग्रह रूप यह जैन प्रवचन भवसागर तरने के लिए नौका के समान है । अतः प्रातःकाल में ऐसे जिनागम को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

('पूर्व' में से उद्धृत होने के कारण स्त्रियाँ इसके स्थान पर संसार दावानल की तीन स्तुतियाँ कहती हैं ।)

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु, पण्णरससु कम्मभूमीसु ।
जावंत के वि साहू, रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह-धारा ।।1।।
पंच-महव्वय-धारा, अट्ठारस-सहस्स-सीलंग-धारा ।
अक्खुयायार-चरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ।।2।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम : अड्ढाइज्जेसु सूत्र
2. शास्त्रीय नाम : साधुवंदन सूत्र
3. विषय सामग्री : ढाई द्वीप में रहे साधुओं को वंदना ।

।। शब्दार्थ ।।

अड्ढाइज्जेसु=ढाई
दीव-समुद्देसु=द्वीपों और समुद्रों में
पनरससु=पंद्रह
कम्मभूमीसु=कर्मभूमियों में
जावंत=जितने
के वि=कोई भी
साहू=साधु
रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह धारा=रजोहरण, गुच्छक और पात्र को धारण करनेवाले.
पंच-महव्वयधारा=पाँच महाव्रतों को धारण करनेवाले
अट्ठारस-सहस्स=अठारह हजार
सीलंग-धारा=शील के अंगों को धारण करनेवाले
अक्खुयायार-चरित्ता=अखंड आचार व चारित्रवाले
ते=वे
सव्वे=सबको
सिरसा=मस्तक द्वारा
मणसा=मन से
मत्थएण वंदामि=मस्तक झुकाकर वंदन करता हूँ ।

सामान्य अर्थ

ढाई द्वीप में आई हुई 15 कर्मभूमियों में जो कोई साधु रजोहरण, गुच्छक तथा पात्र (आदि द्रव्यलिंग) तथा पाँच महाव्रत, 18000 शीलांग, सदाचार व चारित्र आदि (भाव लिंग) के धारक हों, उन सबको मस्तक झुकाकर मन से वंदन करता हूँ ।

विशेष अर्थ

इस तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीप और समुद्र हैं, जिनमें ढाई द्वीप का

क्षेत्र मनुष्य क्षेत्र कहलाता है। जंबुद्वीप, धातकी खंड और पुष्करार्द्धद्वीप में ही मनुष्य विद्यमान हैं। इस ढाई द्वीप में 15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप हैं। इन क्षेत्रों में से सिर्फ पंद्रह कर्मभूमि (5 भरत, 5 ऐरावत व 5 महाविदेह) में ही तीर्थंकरों का शासन होता है। शेष क्षेत्र युगलिक क्षेत्र कहलाते हैं। इस सूत्र द्वारा ढाई द्वीप में पंद्रह कर्मभूमियों में रहे सुसाधुओं को मन, वचन और काया से नमस्कार किया जाता है।

इस सूत्र में साधु के द्रव्य व भावलिंग दोनों बतलाए हैं।

रजोहरण, गुच्छक और पात्र आदि साधु के द्रव्य लिंग हैं।

पाँच महाव्रत और अठारह हजार शीलांग ये साधु के भावलिंग हैं।

द्रव्य व भाव लिंग से युक्त समस्त साधुओं को इस सूत्र द्वारा वंदन किया जाता है।

शील के 18000 अंग इस प्रकार हैं–

1) 10 यतिधर्म :- 1) क्षमा 2) नम्रता 3) सरलता 4) मुक्ति 5) तप 6) संयम 7) सत्य 8) शौच 9) अकिंचनता और 10) ब्रह्मचर्य.

2) 10 समारंभ :- 1) पृथ्वीकाय समारंभ 2) अप्काय समारंभ 3) तेऊकाय समारंभ 4) वायुकाय समारंभ 5) वनस्पतिकाय समारंभ 6) द्वीन्द्रिय समारंभ 7) त्रीन्द्रिय समारंभ 8) चतुरिन्द्रिय समारंभ 9) पंचेन्द्रिय समारंभ 10) अजीव समारंभ।

इस प्रकार 10 यति धर्म को 10 समारंभ से गुणने पर 100 होते हैं।

3) 5 इन्द्रिय :- 1) स्पर्शनेन्द्रिय 2) रसनेन्द्रिय 3) घ्राणेन्द्रिय 4) चक्षुरिन्द्रिय 5) कर्णेन्द्रिय।

उपरोक्त 100 को 5 इन्द्रिय से गुणने पर 100 x 5 = 500 होते है।

4) 4 संज्ञा :- 1) आहार 2) भय 3) परिग्रह और 4) मैथुन, उपरोक्त 500 को 4 संज्ञाओं से गुणने पर 500 x 4 = 2000 होते हैं।

5) 3 योग :- 1) मन 2) वचन और 3) काया। उपरोक्त 2000 को 3 योग से गुणने पर 2000 x 3 = 6000 होते हैं।

6) 3 करण :- 1) करण 2) करावण 3) अनुमोदन उपरोक्त 6000 को तीन करण से गुणने पर 6000 x 3 = 18000 होते है।

इस प्रकार जो 18000 शीलांग रथ के धारक हैं, उन समस्त साधुओं को यहां वंदन किया गया है।

卐 मूल-सूत्र 卐

वर-कनक-शङ्ख-विद्रुम, मरकत-घन-सन्निभं विगत-मोहं ।
सप्तति-शतं जिनानां, सर्वामरपूजितं वन्दे ।।1।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. प्रचलित नाम :- वरकनक

2. शास्त्रीय नाम :- सप्ततिशत जिनवंदन स्तुति

3. विषय सामग्री :- 170 जिन की स्तुति

।। शब्दार्थ ।।

वरकनक=श्रेष्ठ सुवर्ण
शङ्ख=शंख
विद्रुम=विद्रुम
मरकत=नीलम
घन=बादल
सन्निभं=समान
विगतमोहं=मोह-रहित
सप्ततिशतं=170
जिनानां=जिनेश्वरों को
सर्वामर-पूजितं=सभी देवताओं से पूजित को
वन्दे=मैं वंदन करता हूँ ।

सामान्य अर्थ

श्रेष्ठ सुवर्ण, शंख, मूंगा, नीलम व मेघ के समान वर्ण वाले, मोह-रहित और सभी देवों से पूजित 170 जिनेश्वरों को मैं वंदन करता हूँ ।

विशेष अर्थ

इस सूत्र में 170 जिनेश्वर भगवंतों की स्तुति की गई है । इस अवसर्पिणी काल में इस भरतक्षेत्र में जब अजितनाथ भगवान विद्यमान थे, उस समय पाँचों भरत, पाँचों ऐरावत और पाँचों महाविदेह की 160 विजयों में तीर्थंकर भगवंत विद्यमान थें ।

मुख्यतया तीर्थंकरों के पाँच वर्ण होते हैं, उन वर्णों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत स्तुति में उन सभी तीर्थंकरों की स्तुति की गई है ।

शान्तिं शान्ति-निशान्तं, शान्तं शान्ताशिवं नमस्कृत्य ।
स्तोतुः शान्ति-निमित्तं, मन्त्रपदैः शान्तये स्तौमि ॥1॥
ओमिति निश्चितवचसे, नमो नमो भगवतेऽर्हते पूजां ।
शान्ति-जिनाय जयवते, यशस्विने स्वामिने दमिनाम् ॥2॥
सकलातिशेषक-महा-सम्पत्ति-समन्विताय शस्याय ।
त्रैलोक्य-पूजिताय च, नमो नमः शान्तिदेवाय ॥3॥
सर्वामर-सुसमूह-स्वामिक-सम्पूजिताय निजिताय ।
भुवन-जन-पालनोद्यततमाय सततं नमस्तस्मै ॥4॥
सर्वदुरितौघ-नाशन-कराय सर्वाशिव-प्रशमनाय ।
दुष्ट-ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां प्रमथनाय ॥5॥
यस्येति नाम-मन्त्र-प्रधान-वाक्योपयोग-कृततोषा ।
विजया कुरुते जनहित-मिति च नुता नमत तं शान्तिम् ॥6॥
भवतु नमस्ते भगवति ! विजये ! सुजये ! परापरैरजिते !
अपराजिते ! जगत्यां, जयतीति जयावहे ! भवति ॥7॥
सर्वस्यापि च सङ्घस्य, भद्र-कल्याण मङ्गल प्रददे !
साधूनां च सदा शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे ! जीयाः ॥8॥
भव्यानां कृतसिद्धे ! निर्वृति-निर्वाण-जननि ! सत्त्वानाम् ।
अभय-प्रदान-निरते ! नमोऽस्तु स्वस्तिप्रदे ! तुभ्यम् ॥9॥
भक्तानां जन्तूनां शुभावहे ! नित्यमुद्यते ! देवि !
सम्यग्दृष्टीनां धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय ॥10॥
जिनशासन-निरतानां, शान्तिनतानां च जगति जनतानाम् ।
श्री सम्पत्-कीर्ति-यशोवर्धनि ! जय देवि ! विजयस्व ॥11॥
सलिलानल-विष-विषधर-दुष्टग्रह-राज-रोग-रण-भयतः ।
राक्षस-रिपुगण-मारी-चौरेति-श्वापदादिभ्यः ॥12॥
अथ रक्ष रक्ष सुशिवं, कुरु कुरु शान्तिं च कुरु कुरु सदेति ।
तुष्टिं कुरु कुरु पुष्टिं, कुरु कुरु स्वस्तिं च कुरु कुरु त्वम् ॥13॥
भगवति ! गुणवति ! शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि-स्वस्तीह-कुरु कुरु जनानाम् ।
ओमिति नमो नमो ह्राँ ह्रीँ हूँ हः, यः क्षः ह्रीं फट् फट् स्वाहा ॥14॥

एवं यन्नामाक्षर-पुरस्सरं संस्तुता जयादेवी ।
कुरुते शान्तिं नमतां, नमो नमः शान्तये तस्मै ।।15।।
इति पूर्वसूरि-दर्शित-मन्त्रपद-विदर्भितः स्तवः शान्तेः ।
सलिलादि-भय-विनाशी, शान्त्यादिकरश्च भक्तिमताम् ।।16।।
यश्चैनं पठति सदा, शृणोति भावयति वा यथायोगम् ।
स हि शान्तिपदं यायात् सूरिः श्रीमानदेवश्च ।।17।।
उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः ।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।18।।
सर्व मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व-कल्याण-कारणम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।19।।

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. शास्त्रीय नाम : शांति स्तवन
2. प्रचलित नाम : लघु शान्ति
3. विषय सामग्री : शांतिनाथ प्रभु की स्तवना

।। शब्दार्थ ।।

शान्तिं=शांतिनाथ भगवान को
शान्ति-निशान्तं=शांति के घर
शान्तं=शांत रस से युक्त
शान्ताशिवं=जिनके उपद्रव शांत हो चुके हैं उनको
नमस्कृत्य=नमस्कार करके
स्तोतुः=स्तुति करनेवाले की
शान्ति-निमित्तं=शांति के लिए
मन्त्रपदैः=मंत्रगर्भित पदों से
शान्तये=शांति के लिए
स्तौमि=स्तुति करता हूँ। **(गाथा-1)**

ओम्=ओंकार
इति=ऐसे
निश्चित वचसे=व्यवस्थित वचनवाले
नमो नमः=नमस्कार हो, नमस्कार हो
भगवते=भगवान को
अर्हते पूजां=पूजा के योग्य
शान्तिजिनाय=शांतिनाथ प्रभु को
जयवते=जयवाले
यशस्विने=यशस्वी
स्वामिने दमिनाम्=योगियों के स्वामी **(गाथा-2)**

सकलातिशेषक=समस्त अतिशय
महासम्पत्ति-समन्वितायः=महा संपत्ति से युक्त
शस्याय=प्रशंसनीय
त्रैलोक्यपूजिताय=तीन लोक से पूजित
च=और
नमो नमः=नमस्कार हो, नमस्कार हो
शान्तिदेवाय=शांतिनाथ प्रभु को
(गाथा-3)

सर्वामर-सुसमूह-स्वामिक संपूजिताय=सभी देवों के समूह के स्वामी से पूजे गए।
निजिताय=नहीं जीते हुए
भुवन-जन पालनोद्यततमाय=विश्व के लोगों का रक्षण करने में तत्पर
सततं=सदा
नमः=नमस्कार हो
तस्मै=उनको (शांतिनाथ को)
(गाथा 4)

सर्व दुरितौघ=समस्त पाप समूह
नाशनकराय=नाश करनेवाले
सर्वाशिवप्रशमनाय=समस्त उपद्रवों को शांत करनेवाले
दुष्ट ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां प्रमथनाय=समस्त दुष्ट ग्रह, भूत, पिशाच व शाकिनियों के उपद्रवों को दूर करनेवाले। **(गाथा-5)**

यस्य=जिनके
इति=ऐसे
नाम-मंत्र प्रधान=विशिष्ट नाम मंत्रवाले
वाक्योपयोगकृततोषा=वाक्य के उपयोग से तुष्ट किए हुए।
विजया=विजयादेवी
कुरुते=करती है।
जनहितं=लोगों का हित
इति=इससे
च=और
नुता=जिसकी स्तुति की गई है,
नमत=नमस्कार करो
तं=उन
शान्तिं=शांतिनाथ प्रभु को **(गाथा-6)**

भवतु=हो
नमः=नमस्कार
ते=आपको
भगवति=हे भगवती
विजये=हे विजया !
सुजये=हे सुजया !
परापरैः=परापर
अजिते=हे अजिता !
अपराजिते=हे अपराजिता !
जगत्यां=जगत् में
जयति=जय प्राप्त करती है
इति=इसलिए
जयावहे=हे जयावहा
भवति=हे भवती ! **(गाथा-7)**

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सर्वस्य=समस्त **अपि च=**और भी **सङ्घस्य=**संघ का **भद्र-कल्याण-मङ्गल-प्रददे ! =**भद्र, कल्याण व मंगल प्रदान करनेवाली **साधूनां=**साधुओं का	**च=**उसी प्रकार **सदा=**निरंतर **शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे !=**निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली **जीया:=**आपकी जय हो **(गाथा-8)**
भव्यानां=भव्यों को **कृतसिद्धे=**हे कृतसिद्धा ! **निर्वृति निर्वाण जननि=**शांति व निर्वाण को देनेवाली **सत्त्वानाम्=**सत्त्वशाली उपासकों को	**अभय-प्रदान-निरते=**अभयदान देने में तत्पर **नम: अस्तु=**नमस्कार हो **स्वस्तिप्रदे=**क्षेम करनेवाली **तुभ्यं=**आपको **(गाथा-9)**
भक्तानां जन्तूनां=भक्त प्राणियों को **शुभावहे !=**शुभ करनेवाली **नित्यं=**सदा **उद्यते=**उद्यमशील ! **देवि !=**हे देवी ! **सम्यग्दृष्टीनां=**सम्यग्दृष्टि जीवों को **धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय=** धृति, रति (हर्ष), मति (बुद्धि) प्रदान करनेवाली. **जिनशासन-निरतानां=**जैन धर्म में अनुरक्त	**शान्तिनतानां च=**शांतिनाथ को नमस्कार करनेवाली को **जगति=**जगत् में **जनतानां=**जनता के लिए **श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो-वर्धनि=**लक्ष्मी, संपत्ति, कीर्ति और यश बढानेवाली **जय-**आपकी जय हो **देवि !=**हे देवी **विजयस्व=**आपकी विजय हो **(गाथा-10-11)**
सलिलानल=जल, अग्नि **विष-विषधर=**विष, सर्प **दुष्ट-ग्रह-राज-रोग-रण-भयत:=** दुष्टग्रह, राजा, रोग व युद्ध के भय से।	**राक्षस-रिपुगण=**राक्षस और शत्रु समूह **मारी=**महामारी **चौरेति=**चोर तथा सात ईति **श्वापदादिभ्य:=**हिंसक पशुओं से **रक्ष ! रक्ष !=**रक्षण करो, रक्षण करो।

सुशिवं कुरु कुरु=उपद्रव रहित करो, करो !
शांतिं च कुरु कुरु=शांति करो ! शांति करो !
सदा=हमेशा
इति=समाप्ति

तुष्टिं कुरु कुरु=तुष्टि करो, तुष्टि करो
पुष्टिं कुरु कुरु=पुष्टि करो ! पुष्टि करो !
स्वस्तिं च कुरु कुरु=कुशल करो ! कुशल करो !
त्वं=आप **(गाथा 12-13)**

भगवति !=हे भगवती !
गुणवति !=हे गुणवती !
शिव-शान्ति-तुष्टि-पुष्टि=शिव, शांति, तुष्टि और पुष्टि
स्वस्तीह कुरु कुरु=कल्याण करो ! कल्याण करो !

जनानाम्=मनुष्यों के लिए
ओं नमो नमो ह्लाँ ह्लीं ह्लूँ ह्लः-यः क्षः ह्लीं फट् फट् स्वाहा= यह 16 अक्षरों का मंत्र है। **(गाथा-14)**

एवं=ऊपर कहे अनुसार
यन्नामाक्षर-पुरस्सरं=जिनके नाम, मंत्र और अक्षर पूर्वक
संस्तुता=अच्छी तरह से स्तुति की हुई
जयादेवी=जयादेवी

कुरुते शान्तिं=शांति करती है
नमतां=नमस्कार करनेवालों की
नमो नमः=नमस्कार हो, नमस्कार हो
शान्तये तस्मै=उन शांतिनाथ भगवान् को **(गाथा-15)**

इति=इस प्रकार
पूर्वसूरि-दर्शित=पूर्वाचार्यों द्वारा बताए हुए
मन्त्र-पद-विदर्भित:=मंत्रपदों से गूँथा हुआ
स्तव-शान्ते:=शान्तिनाथ प्रभु का स्तव

सलिलादि-भय-विनाशी=पानी आदि के भयों का नाश करनेवाला.
शान्त्यादिकर:=शांति आदि करनेवाला
च=और
भक्तिमताम्=भक्ति करनेवालों को **(गाथा-16)**

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

यः=जो **च=**और **एनं=**इस स्तव को **पठति=**पढ़ता है **सदा=**निरंतर **शृणोति=**सुनता है **भावयति वा यथायोगं=**मंत्रयोग के	नियमानुसार भावना करता है । **स=**वह **हि=**अवश्य **शान्तिपदं=**सिद्धि पद को **यायात्=**प्राप्त करे **सूरिःमानदेवश्च=**श्री मानदेवसूरि **(गाथा-17)**
उपसर्गाः=उपद्रव **क्षयं यान्ति=**नष्ट हो जाते हैं । **छिद्यन्ते=**कट जाती हैं । **विघ्नवल्लयः=**विघ्न रूपी लताएँ **मनः=**मन	**प्रसन्नतामेति=**प्रसन्नता प्राप्त करता है । **पूज्यमाने जिनेश्वरे=**जिनेश्वर की पूजा करनेवाले का **(गाथा-18)**
सर्व मङ्गल-माङ्गल्यं=सर्व मंगलों में मंगलरूप **सर्व-कल्याण-कारणं=**समस्त कल्याणों का कारण **प्रधानं=**श्रेष्ठ	**सर्व धर्माणां=**सभी धर्मों में **जैनं=**जैन **जयति=**विजय पाता है **शासनम्=**शासन **(गाथा-19)**

शांति के घर, प्रशमरस में निमग्न तथा अशिव का नाश करनेवाले शांतिनाथ प्रभु को नमस्कार करके, स्तुति करनेवालों की शांति के लिए मैं मंत्र-गर्भित पदों से शांति करने में कारणभूत शांतिनाथ प्रभु की स्तुति करता हूँ । ||1||

जिनका नाम ओं ! निश्चित किया गया है, उन्हें बारबार नमस्कार हो । वे भगवान् हैं, पूजा के योग्य हैं, जयवाले हैं, यशस्वी हैं और दमन करनेवालों के स्वामी हैं । ||2||

अतिशय रूपी महा संपत्ति से युक्त, अत्यंत ही प्रशस्त, तीन लोक से पूजित और शांति के अधिपति ऐसे शांतिनाथ प्रभु को नमस्कार हो, नमस्कार हो । ||3||

सभी देवेन्द्रों से पूजित, अजित तथा विश्व के प्राणियों का रक्षण करने में अत्यंत ही सावधान ऐसे शांतिनाथ भगवान को नमस्कार हो । ।।4।।

समस्त भय समूह का नाश करनेवाले, समस्त उपद्रवों को शांत करनेवाले, दुष्ट ग्रह, भूत, पिशाच तथा शाकिनियों की पीड़ा को शांत करनेवाले शांतिनाथ प्रभु को सदा नमस्कार हो ! ।।5।।

जिनके नाममंत्र वाले वाक्य-प्रयोगों से तुष्ट बनी विजया देवी लोगों को ऋद्धि-सिद्धि प्रदान कर उनका हित करती है, उन शांतिनाथ की वंदना करो और विजया देवी, काम करनेवाली होने से उसकी भी यहाँ स्तुति की गई है । ।।6।।

हे भगवती ! हे विजया ! हे सुजया ! हे अजिता । हे अपराजिता ! हे जयावहा ! हे भवती ! आपकी शक्ति परापर रहस्य द्वारा जगत् में जय पाती है, अतः आपको नमस्कार हो ।।7।।

सकल संघ का भद्र, कल्याण व मंगल करनेवाली तथा श्रमण संघ को निरुपद्रवी वातावरण, सुतुष्टि-पुष्टि प्रदान करनेवाली हे देवी ! आपकी जय हो ।।8।।

भव्य उपासकों को सिद्धि, शांति तथा प्रमोद देने वाली तथा सत्त्वशाली उपासकों को निर्भयता व क्षेम प्रदान करनेवाली हे देवी ! आपको नमस्कार हो ।।9।।

उपासक जीवों को शुभ देनेवाली, सम्यग्दृष्टि जीवों को धृति, रति, मति और बुद्धि प्रदान करने में सदा तत्पर तथा जैन शासन में सद्भाव तथा शांतिनाथ भगवान के प्रति पूज्य बुद्धि रखनेवाली जनता की श्री, संपत्ति, कीर्ति तथा यश में वृद्धि करनेवाली हे देवी ! तुम्हारी जय हो ! विजय हो । ।।10-11।।

(हे देवी ! तुम) जल के भय, अग्नि के भय, विष-भय, विषधर-भय, दुष्टग्रह भय, राज-भय, रोग-भय, रणभय, राक्षस के उपद्रव, शत्रु-समूह के उपद्रव, मरकी के उपद्रव, चोर के उपद्रव, 'ईति' संज्ञक उपद्रव, श्वापद के उपद्रव, भूत-पिशाच तथा शाकिनी के उपद्रव से रक्षण करो ! रक्षण करो ! ।।12-13।।

हे भगवती ! हे गुणवती ! तू यहाँ निरुपद्रवता, शांति, तुष्टि, पुष्टि और क्षेम कर !

ओं नमो ह्राँ ह्रीं...फट् फट् स्वाहा ।।14।।

ऊपर कहे अनुसार जिनके नाममंत्र और अक्षर-मंत्रों की पुरश्चर्यापूर्वक अच्छी तरह स्तुति की हुई जया देवी नमन करनेवालों को शांति प्रदान करती है, ऐसे शांतिनाथ प्रभु को नमस्कार हो, नमस्कार हो । ।।15।।

अंत में यही विज्ञप्ति है कि पूर्वाचार्यों द्वारा गुरु आम्नाय पूर्वक प्रगट मंत्रपदों से गूंथा हुआ यह `शांतिस्तवन' है और यह, विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले को सलिल आदि भयों से मुक्त करानेवाला तथा उपद्रवों को शांत करने के साथ तुष्टि और पुष्टि को करनेवाला है । ।।16।।

और जो इस स्तवन को भावपूर्वक पढ़ता है, अन्यों के पास भावपूर्वक सुनता है और मंत्र योग के नियमानुसार उसकी भावना करता है, वह निश्चय ही शांति पद प्राप्त करता है। श्री मानदेवसूरि भी शांतिपद को प्राप्त करें । ।।17।।

श्री जिनेश्वर परमात्मा का पूजन करने से सभी प्रकार के उपद्रव नष्ट होते हैं, विघ्नों की लताएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और मन प्रसन्नता को प्राप्त करता है ।।18।।

सर्व मंगलों में मंगलभूत, सर्व कल्याणों में कारण रूप और सभी धर्मो में श्रेष्ठ जैन धर्म सदा जयवंत रहे ।।19।।

विशेष अर्थ

विशिष्ट प्रसंगों में आराधना-प्रभावना करनेवाले आचार्य आदि गुरु भगवंत `प्रभावक' कहलाते हैं । उन प्रभावक आचार्य भगवंतों के पास विशेष प्रकार की लब्धि-शक्ति होती है ।

- जैसे जैन शासन की आराधना-प्रभावना के लिए वज्रस्वामी आकाशगामिनी विद्या के बल से हजारों पुष्प लेकर आए थे और उन्होंने जैन शासन की प्रभावना की थी ।
- मल्लवादिसूरिजी म. ने राज-सभा में अपनी विशिष्ट तर्क-शक्ति आदि के द्वारा वादियों को परास्त किया था और जैनशासन की अद्‌भुत प्रभावना की थी ।
- अपनी काव्य शक्ति आदि के द्वारा सिद्धसेनसूरिजी म. ने सम्राट् विक्रम को प्रभावित कर जैन शासन की प्रभावना की थी ।
- भक्तामर स्तोत्र के प्रभाव से अपने शरीर पर रहे बेड़ियों के बंधनों को

तोड़कर पू. मानतुंगसूरिजी म. ने जैनशासन की प्रभावना की थी ।

- बस, इसी प्रकार पवित्र चारित्र संपन्न श्री मानदेवसूरिजी म. ने शान्ति-स्तवन अर्थात् `लघु-शान्ति-स्तोत्र' की रचना कर तक्षशिला में हुए महामारी के भयंकर उपद्रव को दूर कर जैन शासन की प्रभावना व रक्षा की थी ।
- स्तोत्र के रचयिता मानदेवसूरिजी म. भगवान महावीर की 19वीं पाट-परंपरा में हुए थे और वि.सं. 261 में उनका स्वर्गवास हुआ था ।
- इस स्तोत्र में शांति के दाता 16वें शान्तिनाथ प्रभु की स्तवना की गई है ।
- पहली गाथा में मंगलाचरण के रूप में शांतिनाथ प्रभु की स्तुति है ।
- दूसरी से पाँचवीं गाथा में शान्तिनाथ प्रभु के 16 विशेषणों द्वारा **`नाम मंत्र स्तुति'** की गई है । जो इस प्रकार है-

1. शांतिनाथ प्रभु का निर्धारित अक्षर `ॐकार' होने से वे परब्रह्म स्वरूप हैं ।
2. **भगवान् :-** `भग' शब्द से सूचित ऐश्वर्य आदि गुणों से समृद्ध होने के कारण वे भगवान् हैं ।
3. **अर्हत् :-** जगत् के समस्त लोकों से द्रव्य व भाव से पूजित होने के कारण `अर्हत्' हैं ।
4. **जयवान् :-** बाह्य अपाय (उपद्रव) भूत, रोगादि तथा अंतरंग अपायभूत रागादि पर विजय प्राप्त कराने वाले होने से जयवान् हैं ।
5. **यशस्वी :-** जिनके नाम स्मरण से दुःख व उपद्रवों का नाश होने के कारण वे यशस्वी हैं ।
6. **दमिनाम् :-** प्रभु दमन करनेवालों के स्वामी हैं ।
7. **ऋद्धिमान् :-** अरिहंत के 34 अतिशयों से युक्त होने के कारण वे ऋद्धिमान् हैं ।
8. **प्रशस्य :-** प्रशमरस से परिपूर्ण होने के कारण परम प्रशस्य हैं ।
9. **त्रैलोक्येश्वर :-** तीन लोक के प्राणियों पर उनका शासन होने से वे त्रैलोक्येश्वर हैं ।
10. वे शांतिकारक व शांति के दाता होने से **शांति के अधिपति** हैं ।
11. वे सभी देवेन्द्रों से पूजित होने के कारण **`देवाधिदेव'** हैं ।
12. किसी के द्वारा जिताए गए नहीं होने से वे **निर्जित** हैं ।
13. भुवनजनों का पालन करने में उद्यत होने से **भुवनेश्वर** हैं ।

14. समस्त भयों के नाशक होने से **भयभंजक** हैं ।
15. अशिव-उपद्रवों का शमन करनेवाले होने से **'शिव'** हैं ।
16. समस्त दुष्टग्रह-भूत आदि की पीडा के संहारक होने से **रुद्र भी** हैं ।

छठी गाथा में जनहित करने में समर्थ जया-विजयादेवी की स्तुति का प्रयोजन बताया गया है ।

7 से 11 वीं गाथा में देवी को अलग-अलग चौबीस नामों से संबोधित किया गया है–

1. **भगवती :-** ऐश्वर्य गुणवाली है ।
2. **विजया :-** विजय दिलानेवाली है ।
3. **सुजया :-** सुंदर जय करानेवाली है ।
4. **अजिता :-** दूसरों से जीती न जाय ऐसी है ।
5. **अपराजिता :-** किसी से पराभव पानेवाली नहीं है ।
6. **जयावहा :-** जय लानेवाली है ।
7. **भवती :-** साक्षात् हाजिर है ।
8. **भद्रा :-** सुख देनेवाली है ।
9. **कल्याणी :-** कल्याण करनेवाली है ।
10. **मंगला :-** मंगल करनेवाली है ।
11. **शिवा :-** शिव करनेवाली है ।
12. **तुष्टिदा :-** तुष्टि देनेवाली है ।
13. **पुष्टिदा :-** पुष्टि देनेवाली है ।
14. **सिद्धिदायिनी :-** सिद्धि देनेवाली है ।
15. **निर्वृति :-** शांति करनेवाली है ।
16. **निर्वाणी :-** निर्वाण-प्राप्ति में सहायता करनेवाली है ।
17. **अभया :-** भयों को दूर करनेवाली है ।
18. **क्षेमंकरी :-** क्षेम करती है ।
19. **शुभंकरी :-** शुभ करती है ।
20. **सरस्वती :-** धृति, रति, मति व बुद्धि प्रदान करती है ।

21. **श्री देवता :-** शोभा प्रदान करती है ।

22. **रमा :-** संपत्ति में वृद्धि करती है ।

23. **कीर्तिदा :-** कीर्ति देती है ।

24. **यशोदा :-** यश में वृद्धि करती है ।

देवी की विविध नामों से स्तुति करने के साथ `जगन्मंगल-कवच' की भी रचना की गई है, जो जगत् का मंगल करने में उपयोगी है ।

इसमें सर्वप्रथम सकलसंघ को याद किया है, दूसरे स्थान में साधु-साध्वी को लिया है । तीसरे स्थान में भव्य उपासक, चौथे में सत्त्वशाली उपासक व पाँचवें में जंतु उपासक लिये हैं । फिर छठे में सम्यग्दृष्टि श्रावक-श्राविका व सातवें में जिनशासन में निरत (श्रद्धालु) को लिया गया है ।

बारहवीं व तेरहवीं गाथा में भय व उपद्रवों से रक्षण के लिए प्रार्थना की गई है ।

आठ भय

1) **जल भय :-** अतिवृष्टि, बाढ़ आदि से भय

2) **अग्नि भय :-** अचानक आग लगना

3) विष भय 4) विषधर (साँप) भय 5) ग्रहचार (ग्रहोंसे) भय 6) राजभय 7) रोगभय 8) युद्ध भय ।

आठ उपद्रव

1) राक्षस का उपद्रव 2 शत्रु समूह से उपद्रव

3) महामारी का उपद्रव 4) चोर-डाकू का उपद्रव

5) सात प्रकार की ईति का उपद्रव 6) शिकारी-जंगली पशुओं का उपद्रव 7) भूत-पिशाच का उपद्रव 8) शाकिनी आदि का उपद्रव ।

16 वीं व 17वीं गाथा में इस शांति स्तवन का फल बतलाया गया है अर्थात् यह स्तवन जल आदि सभी भयों को दूर कर शांति करनेवाला है ।

इस शांति-स्तव की 17 गाथाएँ गाथा छंद में हैं । इसकी पहली गाथा में मंगल आदि का निर्देश है व 18-19वीं गाथा अंत्य मंगल हैं ।

लघु-शांति की रचना का हेतु व रचनाकार :-

नाडोल नगर !

एक शुभ दिन अत्यंत ही समृद्ध जिनदत्त सेठ की धर्मपत्नी `धारिणी' ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । बालक का नामकरण किया गया मानदेव !

दूज के चांद की भांति वह बालक देह, रूप व वय के साथ-साथ गुण समृद्धि से भी बढ़ने लगा ।

एक दिन जिनशासन के महान् प्रभावक प्रद्योतनसूरिजी म. का विशाल परिवार के साथ नाडोल में आगमन हुआ । आचार्य भगवंत की धर्म-देशना प्रारंभ हुई । बालक मानदेव भी आचार्य भगवंत की धर्मदेशना का अमीपान करने लगा । एक दिन आचार्य भगवंत ने संसार की भयंकरता का ऐसा हृदयंगम विवेचन किया कि जिसे सुनकर बालक मानदेव के हृदय में इस संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हो गया ।

बालक ने आचार्य भगवंत को दीक्षा प्रदान करने के लिए प्रार्थना की । आचार्य भगवंत ने कहा, ``तुम अपने माता-पिता की सम्मति ले आओ, मैं तुम्हें अवश्य दीक्षा प्रदान करूंगा ।''

बालक मानदेव अपने घर आया और अपने माता-पिता को दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान करने के लिए आग्रह करने लगा । प्रारंभ में तो पुत्रमोह के कारण वे मानदेव को दीक्षा की अनुमति प्रदान करने के लिए हिचकिचाहट करने लगे...परन्तु आखिर पुत्र की दृढ़ भावना को जानकर उन्होंने दीक्षा के लिए सहर्ष अनुमति दे दी...और एक दिन शुभ वेला में बालक मानदेव संसारी मिटकर साधु बन गया ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद मानदेव मुनि रत्नत्रयी की आराधना-साधना में तल्लीन बन गए । समय बीतने लगा और मानदेव मुनि बहुश्रुत-शास्त्र-पारगामी बन गए ।

मानदेव मुनि की गुण-गरिमा को देखकर एक दिन गुरु भगवंत ने उन्हें **आचार्य-पद** प्रदान कर उन्हे अपना पट्टधर घोषित किया । अपनी वाग्लब्धि आदि के द्वारा नूतन आचार्य भगवंत जैन शासन की सुंदर आराधना-प्रभावना करने लगे ।

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

500 जिन-चैत्यों से विभूषित तक्षशिला नगरी में अचानक महामारी का उपद्रव फैल गया । महामारी के भयंकर उपद्रव के कारण लोग तेजी से मरने लगे । देखते ही देखते मृतकों की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगी । नगर में रोगियों की संख्या खूब बढ़ गई और जो भी सेवा के लिए आते, वे भी रोग-ग्रस्त बन जाते । श्मशान घाट में मुर्दों की लाइनें लगने लगीं । एक मृतदेह पूरा जला भी न हो तभी वहां दूसरा मृतदेह आ जाता ! लाशों के कारण नगर में चारों ओर भयंकर दुर्गंध फैलने लगी ।

महामारी के उपद्रव से त्रस्त लोग नगरी छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे ।

एक दिन संघ के लोग इकट्ठे हुए और विचार करने लगे । यदि इसी प्रकार नगर खाली हो गया तो जिन मंदिरों में रही जिनप्रतिमाओं की पूजा कौन करेगा ? क्या पंचम काल अभी समाप्त हो जाएगा और छठा आरा बैठ जाएगा ? अरे ! वह कपर्दी यक्ष, अंबिका और ब्रह्मशांति आदि सभी यक्ष-यक्षिणी कहाँ चले गए ?

संघ को इस प्रकार एकदम हताश देखकर शासनदेवी प्रगट हुई और बोली, ``आप लोग संताप क्यों करते हो ? इस महामारी को फैलानेवाले म्लेच्छों के व्यंतर इतने अधिक शक्तिशाली हैं कि उनके आगे हम सब का बल कम पड़ रहा है । इतना ही नहीं, आज से तीन वर्ष बाद तुर्कियों के आक्रमण से यह नगर भी नष्ट हो जाएगा । परन्तु तात्कालिक रक्षण के लिए एक उपाय है । नाडोल नगर में मानदेव सूरिजी म. हैं, उन्हें यहाँ बुलाएँ । उनके पाद-प्रक्षालन के जल का घर घर में छंटकाव करने से महामारी का सारा उपद्रव शांत हो जाएगा । उपद्रव शांत होने के साथ ही तुम्हें अन्यत्र चले जाना होगा ।''

इतना कहकर शासनदेवी अदृश्य हो गई ।

संघने आचार्य भगवंत के नाम पर एक विनंति पत्र लिखा और वह पत्र देकर वीरदत्त श्रावक को नाडोल जाने के लिए रवाना किया ।

कुछ ही दिनों में वीरदत्त श्रावक नाडोल पहुँच गया ।

जिनमंदिरों के दर्शन करने के बाद जैसे ही वीरदत्त श्रावक ने निसीहि

कहकर उपाश्रय के मूलद्वार में प्रवेश किया, उस समय उसने उपाश्रय के अंदर के भाग में नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थापित कर ध्यान मग्न बने आचार्य भगवंत को देखा और उसके साथ ही देवांगना जैसी दो स्त्रियों को आचार्य भगवंत के पास बैठी देखा ।

आचार्य भगवंत के पास उन स्त्रियों को देखने के साथ ही वह वीरदत्त सोचने लगा, ``अहो ! शासनदेवी ने भी मेरे साथ ठगी की...मुझे इतना दूर भेजकर सिर्फ कायकष्ट ही दिया । क्या ये आचार्य हैं ? ये तो देवांगना जैसी स्त्रियों के साथ रहे हुए हैं । लगता है मेरे आगमन को जानकर ध्यान में बैठने का इन्होंने ढोंग कर लिया है ।'' इस प्रकार विचार कर वह थोड़ी देर तक उपाश्रय के बाहर ही बैठा ।

कुछ देर बाद आचार्य भगवंत ने अपना ध्यान पूर्ण किया । उस समय उस वीरदत्त ने उपाश्रय में प्रवेश किया और बिना हाथ जोड़े ही अनादर से मस्तक झुकाया ।

वीरदत्त की इन चेष्टाओं को आचार्य भगवंत के दर्शनार्थ आई हुई जया-विजया देवियों ने जान लिया । तुरंत ही वीरदत्त को शिक्षा देने के लिए उसे तत्काल भूमि पर पछाड दिया और उसे बंधनग्रस्त कर दिया । वह वीरदत्त करुण विलाप करने लगा, तब दया के सागर आचार्य भगवंत ने उसे छुडाया ।

उसी समय आक्रोश में आकर जयादेवी बोली, ``अरे महापापी ! तू तो महाशाप के योग्य है ! चारित्र की साक्षात् प्रतिमा समान आचार्य भगवंत के बारे में तू ऐसी झूठी कल्पनाएँ करता है ?

``तू श्रावक नहीं किंतु ठग श्रावक है ? क्या तुझे हमारी दिव्यता के लक्षण नजर नहीं आ रहे हैं ? अनिमेष नेत्र, अम्लान पुष्पमाला व भूमि से अस्पृष्ट चरणों को देखकर क्या तू हमारे स्वरूप का अनुमान नहीं कर सकता है ? हम मानुषी नहीं किंतु देवियाँ है ! इनके पवित्र चारित्र से आकृष्ट होकर हम इनके वंदन के लिए आई हुई हैं ।

एक ही मुष्टि के प्रहार से मैं तुझे यमसदन पहुँचा देती परन्तु गुरुदेव के वचन के खातिर मैं तुझे जिंदा छोड़ रही हूँ ।

ओ पापी ! तू यहाँ आया क्यों ? मुट्ठी बंद कर जैसे तू आया है, वैसे

ही तू यहाँ से चला जा ।''

देवी की इस बात को सुनकर वीरदत्त ने क्षमा मांगते हुए कहा, ``तक्षशिला नगरी में हुए महामारी के उपद्रव के निवारण के लिए शासनदेवी की सूचनानुसार संघ की आज्ञा से मैं आया हूँ । पूज्य आचार्य भगवंत को बुलाने के लिए संघ ने मुझे यहाँ भेजा है, परन्तु मेरी मूर्खता के कारण अशिव दूर करने के बजाय मुझ पर ही उपद्रव हो गया ।''

वीरदत्त की इस बात को सुनकर विजयादेवी ने कहा, ``जहाँ तुम्हारे जैसे छिद्रान्वेषी रहते हों वहाँ उपद्रव क्यों नहीं होगा ?''

``तू इन गुरुदेव के प्रभाव को जानता नहीं है । इनके प्रभाव से ही मेघ की वृष्टि और धान्य की उत्पत्ति हो रही है । शांतिनाथ प्रभु की सेवा करनेवाली शांतिदेवी हमारे बहाने दो रूप करके इनको वंदन करती है । तुम्हारे जैसे हृदयहीन के साथ इन्हें कैसे भेजूँ ?'

देवी की बात सुनकर वीरदत्त श्रावक सोच में पड गया ।

आचार्य भगवंत ने कहा, ``संघ का आदेश मुझे मान्य करना ही चाहिए । इसके लिए मैं यहाँ रहकर ही संघ का कार्य पूर्ण कर दूंगा ।''

``यहाँ के संघ की आज्ञा बिना मैं वहां आ भी नहीं सकता और इन देवियों की भी अनुमति नहीं है ।''

``पूर्व में कमठ द्वारा प्रकाशित और इन दोनों देवियों द्वारा प्रदर्शित `मंत्राधिराज' नाम का पार्श्वनाथ प्रभु का मंत्र है । समस्त उपद्रवों को शांत करने में समर्थ तथा शांतिनाथ व पार्श्वनाथ की स्मृति से पवित्र बने हुए श्री शांतिस्तवन को लेकर तुम जाओ, इसके पाठ मात्र से समस्त उपद्रव शांत हो जाएगा ।''

आचार्य भगवंत ने यहा **शांति स्तवन** वीरदत्त श्रावक को दिया और वह श्रावक शांति स्तवन को लेकर तक्षशिला पहुँचा । आचार्य भगवंत की आज्ञानुसार नगर के सभी प्रजाजन उस **'शांति स्तवन'** का पाठ करने लगे । इसके फलस्वरूप कुछ ही दिनों में महामारी का उपद्रव शांत हो गया ।

क्षुद्र उपद्रवों को शांत करनेवाला यह शांति स्तवन आज भी विद्यमान है । इसके प्रभाव से क्षुद्र-उपद्रव शांत हो जाते हैं ।

चउक्कसाय-पडिमल्लुल्लुरणु, दुज्जय-मयण-बाण-मुसुमुरणु।
सरस-पियंगु-वण्णु-गय-गामिउ, जयउ पासु भुवणत्तय-सामिउ ।।1।।
(पादाकुलक)

जसु-तणु-कंति-कडप्प-सिणिद्धउ, सोहइ फणि-मणि-किरणालिद्धउ।
नं नवजलहर-तडिल्लय-लंछिउ, सो जिणु पासु पयच्छउ-वंछिउ ।।
(अडिल्ल)

◆ संक्षिप्त-परिचय ◆

1. **प्रचलित नाम : चउक्कसाय सूत्र**
2. **शास्त्रीय नाम : पार्श्वनाथ जिन स्तुति**
3. **विषय-सामग्री : पार्श्वनाथ प्रभु की विशेषताए**

।। शब्दार्थ ।।

चउक्कसाय=चार कषाय
पडिमल्लुलुरणु=प्रतिमल्लों का नाश करनेवाले
दुज्जय=जिसको जीता नहीं जा सके
मयण-बाण=कामदेव के बाण
मुसुमुरणु=तोड़ देनेवाले
सरस=ताजे
पियंगु-वण्णु=प्रियंगुलता जैसे वर्णवाले
गयगामिउ=हाथी समान गतिवाले
जयउ=जय प्राप्त हो
पासु=पार्श्वनाथ
भुवणत्तय सामिउ=तीन भुवन के स्वामी
जसु=जिनके
तणु-कंति-कडप्प=शरीर का तेजो मंडल
सिणिद्धउ=स्निग्ध
सोहइ=शोभा देता है
फणि-मणि=नागदेव के मणि
किरणालिद्धउ=किरणों से युक्त
नं=वस्तुत:
नवजलहर=नवीन बादल
तडिल्लय-लंछिउ=बिजली से युक्त
सो=वह
जिणु=जिन
पासु=पार्श्वनाथ
पयच्छउ=प्रदान करे
वंछिउ=वांछित

सामान्य अर्थ

चार कषाय रूपी योद्धाओं का नाश करने वाले, दुर्जय ऐसे कामदेव

के बाणों को तोड़ने वाले, नवीन प्रियंगुलता के समान वर्णवाले, हाथी के समान गतिवाले, त्रिभुवन-स्वामी पार्श्वनाथ प्रभु की जय हो ।।1।।

जिनके शरीर का तेजोमंडल अत्यंत ही मनोहर है, जो नागमणि की किरणों से युक्त है और जो बिजली से युक्त नवीन बादल की तरह सुशोभित है, ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु वांछित प्रदान करें ।

विशेष अर्थ

इस सूत्र में पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की गई है । साधु को प्रतिदिन करने योग्य 7 प्रकार के चैत्यवंदनों में 7 वें चैत्यवंदन में यह सूत्र बोलने की प्रथा प्रचलित है । साधु के 7 चैत्यवंदन इस प्रकार हैं–

1) जगने पर, 2) प्रातःकालीन प्रतिक्रमण में, 3) मंदिर में 4) पच्चक्खाण पारते समय, 5) गोचरी करने के बाद, 6) दैवसिक प्रतिक्रमण में, 7) शयन पूर्व ।

साधु को 7 वाँ चैत्यवंदन संथारा-पोरिसि पढ़ाते समय करने का होता है । उस चैत्यवंदन में इस सूत्र द्वारा पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की जाती है ।

स्तुति में पार्श्वनाथ प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि- पार्श्वनाथ प्रभु चार कषाय रूपी शत्रुओं को जीतनेवाले हैं, क्योंकि जब तक कषायों पर विजय प्राप्त न हो तब तक आत्म-विकास के मार्ग में आगे कदम बढ़ाया नहीं जा सकता है ।

पार्श्वनाथ प्रभु कामविजेता हैं, जिस काम ने समूचे विश्व को परास्त कर डाला है, उस काम को प्रभु ने चकनाचूर कर दिया है ।

पार्श्वनाथ प्रभु प्रियंगु अर्थात् नील आभावाले हैं और हाथी के समान सुंदर गतिवाले हैं । वे तीन भुवन के स्वामी हैं, क्योंकि समस्त त्रिभुवन में तीर्थंकर की आज्ञा का एकछत्री साम्राज्य है । ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु जय को प्राप्त हो ।

दूसरी गाथा में पार्श्वनाथ प्रभु के देह-सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पार्श्वनाथ प्रभु के शरीर में से अपूर्व तेजोमंडल प्रगट हो रहा है, जो दर्शक के मन को हरने वाला है । पार्श्वनाथ प्रभु के मस्तक पर धरणेन्द्र की फणाओं का छत्र है, अतः उन फणाओं में रही मणियों की दिव्य प्रभा से मानो चमकती हुई बिजली से युक्त मेघ की भाँति पार्श्वनाथ प्रभु सुशोभित हो रहे हैं । ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु मनोवांछित फल प्रदान करें, इस प्रकार की अभिलाषा अंत में की गई है । यह सूत्र अत्यंत ही प्राचीन व अपभ्रंश भाषा में है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

भरहेसर बाहुबली, अभयकुमारो अ ढंढणकुमारो अ ।
सिरिओ अणिआउत्तो, अइमुत्तो नागदत्तो अ ।।1।।
मेअज्ज थूलभद्दो, वयररिसी नंदिसेण सीहगिरी ।
कयवन्नो अ सुकोसल, पुंडरिओ केसि करकंडू ।।2।।
हल्ल विहल्ल सुदंसण, साल महासाल सालिभद्दो अ ।
भद्दो दसणभद्दो, पसण्णचंदो अ जसभद्दो ।।3।।
जंबुपहु वंकचूलो, गयसुकुमालो अवंतिसुकुमालो ।
धन्नो इलाइपुत्तो, चिलाइपुत्तो अ बाहुमुणी ।।4।।
अज्जगिरी अज्जरक्खिअ, अज्जसुहत्थी उदायगो मणगो ।
कालयसूरी संबो, पज्जुण्णो मूलदेवो अ ।।5।।
पभवो विण्हुकुमारो, अद्दकुमारो दढप्पहारी अ ।
सिज्जंस कूरगडू अ, सिज्जंभव मेहकुमारो अ ।।6।।
एमाइ महासत्ता, दिंतु सुहं गुण-गणेहिं संजुत्ता ।
जेसिं नाम-ग्गहणे, पाव-प्पबंधा विलय जंति ।।7।।
सुलसा चंदणबाला, मणोरमा मयणरेहा दमयंती ।
नमयासुंदरी सीया, नंदा भद्दा सुभद्दा य ।।8।।
राइमई रिसिदत्ता, पउमावई अंजणा सिरीदेवी ।
जिट्ठ सुजिट्ठ मिगावइ, पभावई चिल्लणादेवी ।।9।।
बंभी सुंदरी रुप्पिणी, रेवइ कुंती सिवा जयंती अ ।
देवई दोवइ धारणी, कलावई पुप्फचूला य ।।10।।
पउमावई अ गोरी, गंधारी लक्खमणा सुसीमा य ।
जंबूवई सच्चभामा, रुप्पिणी कण्हट्ठ महिसीओ ।।11।।
जक्खा य जक्खदिन्ना, भूआ तह चेव भूअदिन्ना अ ।
सेणा वेणा रेणा, भइणीओ थूलभद्दस्स ।।12।।
इच्चाइ महासइओ, जयंति अकलंक-सील-कलिआओ ।
अज्ज वि वज्जइ जासिं, जस-पडहो तिहुअणे सयले ।।13।।

।। शब्दार्थ ।। (सरल है ।)

सामान्य अर्थ

भरतेश्वर, बाहुबली, अभयकुमार, ढंढणकुमार, श्रीयक, अर्णिकापुत्र, अतिमुक्त और नागदत्त ।।1।।

मेतार्यमुनि, स्थूलभद्र, वज्रऋषि, नंदिषेण, सिंहगिरि, कृतपुण्य, सुकोशलमुनि, पुण्डरीक, केशी और करकण्डू (प्रत्येक बुद्ध) ।।2।।

हल्ल, विहल्ल, सुदर्शन शेठ, शाल और महाशाल मुनि, शालिभद्र, भद्रबाहु स्वामी, दशार्णभद्र, प्रसन्नचन्द्र राजर्षि और यशोभद्रसूरि ।।3।।

जम्बूस्वामी, वङ्कचूल राजकुमार, गजसुकुमाल, अवन्तिसुकुमाल, धन्य, इलाचीपुत्र, चिलातीपुत्र और बाहुमुनि ।।4।।

आर्यमहागिरि, आर्यरक्षित, आर्य सुहस्तिसूरि, उदायन राजर्षि, मनककुमार और मूलदेव (राजा) ।।5।।

प्रभवस्वामी, विष्णुकुमार, आर्द्रकुमार, द्रढप्रहारी, श्रेयांस, कूरगडू साधु, शय्यम्भव-स्वामी और मेघकुमार ।।6।।

इत्यादिक जो महापुरुष अनेक गुणों से युक्त हैं और जिनका नाम लेने से पाप के दृढ बंधन नष्ट हो जाते हैं, वे सुख प्रदान करें ।।7।।

सुलसा, चन्दनबाला, मनोरमा, मदनरेखा, दमयन्ती, नर्मदासुन्दरी, सीता, नन्दा, भद्रा और सुभद्रा ।।8।।

राजिमती, ऋषिदत्ता, पद्मावती, अंजनासुन्दरी, श्रीदेवी, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा, मृगावती, प्रभावती और चेल्लणा रानी ।।9।।

ब्राह्मी, सुन्दरी, रुक्मिणी, रेवती, कुन्ती, शिवा, जयन्ती, देवकी, द्रौपदी, धारणी, कलावती और पुष्पचूला ।।10।।

तथा पद्मावती, गौरी, गान्धरी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जम्बूवती, सत्यभामा, रुक्मिणी ये आठ कृष्ण की पटरानियाँ ।।11।।

यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेना, वेना और रेणा ये सात स्थूलभद्र की सात बहिनें ।।12।।

इत्यादि निष्कलङ्क शील को धारण करनेवाली महासतियाँ जय को प्राप्त होती हैं कि जिनके यश का पटह आज भी समग्र त्रिभुवन में बज रहा है ।

सूत्र-परिचय : प्रातः स्मरणीय महापुरुष और महासतियों का स्मरण करने के लिये यह सज्झाय प्रातः कालमें राइय-प्रतिक्रमण करते समय बोली जाती है । इसमें महापुरुषों तथा महासतियों का नाम निर्देश है । (विस्तृत जानकारी के लिए लेखक द्वारा आलेखित `प्रातःस्मरणीय महापुरुष भाग-1-2 तथा प्रातः स्मरणीय महासतियां भाग-१-२ अवश्य पढ़े ।)

मन्नह जिणाणमाणं, मिच्छं परिहरह धरह सम्मत्तं ।
छव्विह आवस्सयंमि, उज्जुत्तो होइ पइदिवसं ।।1।।

पव्वेसु पोसहवयं, दाणं सीलं तवो अ भावो अ ।
सज्झाय नमुक्कारो, परोवयारो अ जयणा अ ।।2।।

जिणपूआ जिणथुणणं, गुरुथुअ साहम्मिआण-वच्छल्लं ।
ववहारस्स य सुद्धि, रहजत्ता तित्थजत्ता य ।।3।।

उवसम-विवेग-संवर, भासा-समिइ छज्जीव करुणा य ।
धम्मिअजण संसग्गो, करणदमो चरण परिणामो ।।4।।

संघोवरि बहुमाणो, पुत्थय लिहणं पभावणा तित्थे ।
सड्ढाण किच्चमेअं, निच्चं सुगुरुवएसेणं ।।5।।

।। शब्दार्थ ।।

मन्नह=मानो (स्वीकार करो)
जिणाणमाणं=जिनेश्वर की आज्ञा को
मिच्छं=मिथ्यात्व का
परिहरह=त्याग करो
छव्विह=छ प्रकार के
आवस्सयंमि=आवश्यक में
उज्जुत्तो होइ=उद्यमशील हो
पइदिवसं=प्रतिदिन
पव्वेसु=पर्व दिनों में
पोषहवयं=पौषधव्रत
दाणं=दान
सीलं=शील
तवो=तप
भावो=भाव
सज्झाय=स्वाध्याय
नमुक्कारो=नवकार
परोवयारो=परोपकार
जयणा=यतना
जिणपूआ=जिनपूजा
जिणथुणणं=जिनेश्वर की स्तवना
गुरुथुअ=गुरु स्तुति
साहम्मिआण वच्छलं=साधार्मिक वात्सल्य
ववहारस्स य सुद्धि=व्यवहार की शुद्धि
रहजत्ता-तित्थजत्ता=रथ यात्रा, तीर्थ यात्रा
उवसम=उपशम
विवेग=विवेक
संवर=संवर
भासासमिइ=भाषा समिति

छज्जीव करुणा=छ जीव पर दया
धम्मिअजण संसग्गो=धार्मिक लोगों से संसर्ग
करण दमो=इन्द्रिय दमन
चरण परिणामो=चारित्र के परिणाम
संघोवरि बहुमाणो=संघ के ऊपर बहुमान
पुत्थय लिहणं=पुस्तक आलेखन
पभावणा=प्रभावना
तित्थे=तीर्थ
सड्ढाण=श्रावक का
किच्चमेएं=कर्तव्य
निच्चं=नित्य
सुगुरुवएसेणं=सदगुरु के उपदेश से

सामान्य अर्थ

जिनेश्वर की आज्ञा को मानो ! मिथ्यात्व का त्याग करो। सम्यक्त्व को धारण करो। प्रतिदिन छह आवश्यक के पालन में उद्यमशील बनो ।।1।।

पर्वदिनों में पौषध करो। दान, शील, तप और भाव, स्वाध्याय, नवकार, परोपकार और यतना का पालन करो ।।2।।

प्रतिदिन जिनेश्वरदेव की पूजा करो, नित्य जिनेश्वरदेव की स्तुति करो, निरन्तर गुरुदेव की स्तुति करो, सर्वदा साधर्मिक भाइयों के प्रति वात्सल्य दिखलाओ, व्यवहार की शुद्धि रखो तथा रथ-यात्रा और तीर्थ-यात्रा करो ।।3।।

कषायों को शान्त करो, सत्यासत्यकी परीक्षा करो, संवरके कृत्य करो, बोलने में सावधानी रखो, छः काय के जीवों के प्रति करुणा रखो, धार्मिक जनों का संसर्ग रखो, इन्द्रियों का दमन करो तथा चारित्र ग्रहण करने की भावना रखो ।।4।।

सङ्घ के प्रति बहुमान रखो, धार्मिक पुस्तकें लिखाओ और तीर्थ की प्रभावना करो। ये श्रावकों के नित्यकृत्य हैं, जो सद्गुरु के उपदेश से जानने चाहिये ।।5।।

सूत्र-परिचय

यह सज्झाय पोषधव्रत में तथा पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के पहले दिन दैवसिक-प्रतिक्रमण में श्रावकों द्वारा बोली जाती है। इसमें श्रावक के करने योग्य 36 कर्तव्य प्रदर्शित किये गये है।

(विस्तृत विवेचन के लिए लेखक की `श्रावकाचार प्रवचन भाग 1 तथा 2 पुस्तके अवश्य पढे।)

सकल-तीर्थ वंदुं कर जोड, जिनवर-नामे मंगल कोड ।
पहेले स्वर्गे लाख बत्रीस, जिनवर-चैत्य नमुं निश-दिन ।।1।।
बीजे लाख अट्ठावीस कह्यां, त्रीजे बार लाख सद्दह्यां ।
चोथे स्वर्गे अड लखधार, पांचमे वंदुं लाख ज चार ।।2।।
छट्ठे स्वर्गे सहस पचास, सातमे चालीस सहस प्रासाद ।
आठमे स्वर्गे छ हजार, नव-दशमें वंदुं शत चार ।।3।।
अग्यार-बारमे त्रणसें सार, नव ग्रैवेयके त्रणसें अढार ।
पांच अनुत्तर सर्वे मली, लाख चोरासी अधिकां वली ।।4।।
सहस सत्ताणुं त्रेवीस सार, जिनवर-भवन तणो अधिकार ।
लांबा सो जोजन विस्तार, पचास ऊंचा बहोतेर धार ।।5।।
एकसो एंशी बिंब प्रमाण, सभा-सहित एक चैत्ये जाण ।
सो कोड बावन कोड संभाल, लाख चोराणुं सहस चौंआल ।।6।।
सातसें उपर साठ विशाल, सवि बिंब प्रणमुं त्रण काल ।
सात कोड न बहोंतेर लाख, भवनपतिमां देवल भाख ।।7।।
एकसो एंशी बिंब प्रमाण, एक एक चैत्ये संख्या जाण ।
तेरसें कोड नेव्याशी कोड, साठ लाख वंदुं कर जोड ।।8।।
बत्रीसें ने ओगणसाठ, तिर्छालोकमां चैत्यनो पाठ ।
त्रण लाख एकाणुं हजार, त्रणसें वीश ते बिंब जुहार ।।9।।
व्यंतर ज्योतिषीमां वली जेह, शाश्वता जिन वंदुं तेह ।
ऋषभ चन्द्रानन वारिषेण, वर्धमान नामे गुणसेण ।।10।।
संमेतशिखर वंदुं जिन वीश, अष्टापद वंदुं चोवीश ।
विमलाचल ने गढ गिरनार, आबू ऊपर जिनवर जुहार ।।11।।
शंखेश्वर केसरियो सार, तारंगे श्रीअजित जुहार ।
अंतरिक्ख वरकाणो पास, जिराउलो ने थंभण पास ।।12।।
गाम नगर पुर पाटण जेह, जिनवर-चैत्य नमुं गुणगेह ।
विहरमाण वंदुं जिन वीश, सिद्ध अनन्त नमुं निश-दिश ।।13।।

अढीद्वीपमां जे अणगार, अढार सहस सीलांगना धार ।
पंच महाव्रत समिति सार, पाले पलावे पंचाचार ।।14।।
बाह्य अभ्यंतर तप उजमाल, ते मुनि वंदुं गुण-मणिमाल ।
नितनित उठी कीर्ति करुं, जीव कहे भवसायर तरुं ।।15।।

।। शब्दार्थ ।।

सरल है ।

सूत्र-परिचय

सब तीर्थों को मैं वन्दन करता हूँ, क्यों कि श्रीजिनेश्वर प्रभु के नाम से करोड़ों मङ्गल प्रवृत्त होते हैं । मैं प्रतिदिन श्रीजिनेश्वर के चैत्यों को नमस्कार करता हूँ । (वह इस प्रकार) पहले देवलोक में स्थित बत्तीस लाख जिनभवनों को मैं वन्दन करता हूँ ।।1।।

दूसरे देवलोक में अट्ठाईस लाख, तीसरे देवलोक में बारह लाख, चौथे देवलोक में आठ लाख और पाँचवें देवलोक में चार लाख जिनभवनों को मैं वन्दन करता हूँ ।।2।।

छठे देवलोक में पचास हजार, सातवें देवलोक में चालीस हजार, आठवें देवलोक में छः हजार, नौवें और दसवें देवलोक के मिलकर चारसौ जिन-भवनों को मैं वन्दन करता हूँ ।।3।।

ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के मिलकर तीनसौ, नौ ग्रैवेयक में तीनसौ अठारह तथा पाँच अनुत्तर विमान में पाँच जिन-भवन मिलकर चौरासी लाख, सत्तानवे हजार तेईस जिन-भवन हैं, उनको मैं वन्दन करता हूँ कि जिनका अधिकार शास्त्रोंमें वर्णित है । ये जिन-भवन सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और बहोत्तर योजन ऊँचे हैं ।।4-5।।

इन प्रत्येक जिन-भवनों अथवा चैत्यों में सभा-सहित 180 जिनबिम्बों का प्रमाण हैं, इस प्रकार सब मिलकर एकसौ बावन करोड चौरानवे लाख, चौंवालीस हजार, सातसौ साठ (1529444760) विशाल जिनप्रतिमाओं का स्मरणकर तीनों काल मैं प्रणाम करता हूँ । भवनपति के आवासो में सात करोड बहोत्तर लाख (77200000) जिन-चैत्य कहे हुए हैं ।।6-7।।

इन प्रत्येक चैत्यों में एकसौ अस्सी जिन बिम्ब होते हैं । वे सब

मिलकर तेरहसों नवासी करोड और साठ लाख (13896000000) जिन बिम्ब होते हैं, जिन्हें हाथ जोडकर मैं वन्दन करता हूँ ।।8।।

तिर्छा-लोक अर्थात् मनुष्य-लोक में तीन हजार, दोसौ उनसाठ (3259) शाश्वत चैत्यों का वर्णन आता है, जिनमें तीन लाख इकानवे हजार, तीनसौ बीस (391320) जिनप्रतिमाएँ हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ ।।9।।

इसके अतिरिक्त व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के निवास में जो जो शाश्वत जिन-बिम्ब है, उन्हें भी मैं वन्दन करता हूँ। गुणों की श्रेणि से परिपूर्ण चार शाश्वत जिन-बिम्बों के शुभनाम-1 श्रीऋषभ 2 चन्द्रानन, 3 वारिषेण और 4 वर्द्धमान हैं ।।10।।

समेतशिखर पर बीस तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ हैं, अष्टापद पर चौबीस तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ हैं, तथा शत्रुंञय, गिरनार और आबू पर भी भव्य जिन मूर्तियाँ हैं, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ ।।11।।

तथा शङ्खेश्वर, केशरियाजी आदि में भी पृथक् पृथक् तीर्थङ्करों की प्रतिमाएँ हैं, एवं तारंगा पर श्री अजितनाथजी की प्रतिमा है, उन सबको मैं वन्दन करता हूँ। इसी प्रकार अन्तरिक्षपार्श्वनाथ, जीरावला पार्श्वनाथ और स्तम्भनपार्श्वनाथ के तीर्थ भी प्रसिद्ध हैं, उन सबको में वन्दन करता हूँ ।।12।।

इसके उपरान्त भिन्न भिन्न ग्रामों में, नगरों में, पुरो में और पट्टन (पाटण) में गुणों के गृहरुप जो जो जिनेश्वर प्रभु के चैत्य हों, उनको मैं वन्दन करता हूँ। बीस विहरमान जिन एवं आज तक हुए अनन्त सिद्धों को मैं प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ ।।13।।

ढाई द्वीप में जो साधु अठारह हजार शीलाङ्ग रथ को धारण करनेवाले हैं, पाँच महाव्रत, पाँच समिति तथा पाँच आचार के स्वयं पालन करनेवाले हैं और दूसरों से भी पालन करानेवाले हैं, ऐसे गुणरुपी रत्नों की माला को धारण करनेवाले मुनियों को मै वन्दन करता हूँ ।।14।।

जीव (श्री जीवविजयजी महाराज) कहते हैं कि नित्य प्रातः काल में उठकर इन सबका मैं कीर्तन करता हूँ अतः (मैं) भवसागर तिर जाऊँगा ।।15।।

सूत्र-परिचय

यह सूत्र रात्रिक-प्रतिक्रमण के छः आवश्यक पूर्ण होने के पश्चात् लोक में स्थित शाश्वत चैत्य, शाश्वत जिनबिम्ब, वर्तमान तीर्थ, विहरमाण जिन,

सिद्ध और साधुओं को वन्दन करने के लिये बोला जाता हैं, अतः इसे सकलतीर्थ वन्दना कहते हैं। आरम्भ के शब्दों से `सकल तीरथ' के नामसे भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना विक्रमकी अठारहवीं सदी के अन्तिम भाग में हुए **श्रीजीवविजयजी** महाराज ने की है।

सकल तीर्थ

विवेचन

प्रातः काल में मंगलवेला में प्रतिक्रमण दरम्यान इस सूत्र के माध्यम से त्रिभुवन में रहे समस्त शाश्वत-अशाश्वत चैत्य एवं उन चैत्यों में रही जिन प्रतिमाओं को भावपूर्वक वंदना की जाती है।

ऊर्ध्व लोक के शाश्वत जिन मंदिर एवं जिन प्रतिमाएँ

यह समूचा विश्व 14 राजलोक प्रमाण है। एक राजलोक असंख्य योजन प्रमाण है। एक योजन 3200 मील प्रमाण है। हम मध्यलोक में रहे हुए है। मध्यलोक 1800 योजन प्रमाण है। 900 योजन ऊपर और 900 योजन नीचे, इस प्रकार 1800 योजन का मध्यलोक है।

समभूतला पृथ्वी से ऊपर 7 राजलोक प्रमाण ऊर्ध्वलोक हैं और नीचे 7 राजलोक प्रमाण अधोलोक है।

देवताओं के मुख्य चार प्रकार हैं-भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक।

भवनपति और व्यंतर देव अधोलोक में रहते हैं।

ज्योतिष देव तिर्च्छालोक में रहते हैं और वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में रहते है।

ऊर्ध्वलोक में 12 वैमानिक, 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर विमान के देव रहते है।

12 वैमानिक देवलोक : 12 वैमानिक देवलोक में प्रथम देवलोक का नाम सौधर्म देवलोक है। इसके अधिपति का नाम सौधर्म इन्द्र है। इस देवलोक में 32 लाख विमान है। ये विमान 500 योजन लंबे चोडे होते हैं।

इस देवलोक में उत्पन्न होनेवाले देवताओं की ऊंचाई सात हाथ

प्रमाण होती है । इनके मस्तक के मुकुट में मृग का चिन्ह होता है । इन देवों का उत्कृष्ट आयुष्य दो सागरोपम प्रमाण होता है । 2 सागरोपम आयुष्य वाले देवताओं को दो हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा होती है और इच्छा मात्र से ही उन्हें तृप्ति हो जाती हैं । उन देवताओं को कवलाहार नहीं होता हैं । सौधर्म देवलोक में देवियों की भी उत्पत्ति होती हैं और वे मनुष्य की तरह ही भोग करते हैं, परंतु उन्हें गर्भ नहीं होता है ।

समभूतला पृथ्वी से 1 राजलोक जाने पर प्रथम देवलोक के विमान प्रारंभ होते हैं, ये सभी विमान घनोदधि पर टिके हुए है ।

प्रत्येक विमान में 1-1 जिनमंदिर होने से 32 लाख विमानों में कुल 32 लाख जिनमंदिर है ।

दूसरा ईशान देवलोक :- समभूतला पृथ्वी से 1 राजलोक ऊपर सौधर्म विमान से पूर्व दिशा में ईशान देवलोक आया हुआ है । इस देवलोक का नाम ईशान देवलोक हैं, इसके अधिपति इन्द्र का नाम ईशान इन्द्र है । इस देवलोक में 28 लाख विमान है । इन देवों की ऊंचाई 7 हाथ प्रमाण होती है और उनके मस्तक के मुकुट में महिष का चिन्ह होता है । इन देवों का उत्कृष्ट आयुष्य दो सागरोपम से कुछ अधिक है ।

इस देवलोक में भी देवियों की उत्पत्ति होती है और वे देव, मनुष्य की तरह मैथुन सेवन करते हैं । इस देवलोक के सभी विमान 500-500 योजन लंबे चोडे होते है । प्रत्येक विमान में 1-1 शाश्वत मंदिर होने से दूसरे देवलोक में कुल 28 लाख शाश्वत जिन मंदिर है ।

तीसरा व चौथा देवलोक :- समभूतला पृथ्वी से दो राजलोक ऊपर पास-पास में तीसरा सनतकुमार व चौथा माहेन्द्र देवलोक है । तीसरे देवलोक का इन्द्र सनतकुमार व चौथे देवलोक का इन्द्र माहेन्द्र है । सनतकुमार देवलोक पश्चिम में और माहेन्द्र देवलोक पूर्व में है । ये सभी विमान घनवात के आधार पर टिके हुए है ।

दूसरे से ऊपर के सभी देवलोक में सिर्फ देव ही पैदा होते हैं । ऊपर के देवलोक में देवियों की उत्पत्ति नहीं है । परंतु वे देवियाँ आठवें देवलोक तक जा सकती हैं ।

तीसरे व चौथे देवलोक के विमान 600 योजन लंबे होते है इन देवों की ऊंचाई 6 हाथ प्रमाण होती है । तीसरे व चौथे देवलोक में मात्र देवियों के

स्पर्श से ही उन देवों को काम सुख का संतोष हो जाता है ।

तीसरे देवलोक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 7 सागरोपम व चौथे देवलोक में 7 सागरोपम से कुछ अधिक है । उन देवों को 7000 वर्ष के बाद भूख का अनुभव होता है ।

तीसरे देवलोक में 12 लाख देवविमान व 12 लाख शाश्वत मंदिर हैं, जबकि चौथे देवलोक में 8 लाख विमान व 8 लाख शाश्वत मंदिर है । ये सभी विमान अर्ध चंद्राकार के आकारवाले है ।

पांचवां देवलोक :- समभूतला पृथ्वी के तीन राजलोक ऊपर जाने पर पांचवा देवलोक आता है, इस देवलोक का स्वामी ब्रह्म इन्द्र है । ये विमान 700 योजन प्रमाण है । यहां उत्पन्न देवों की काया 5 हाथ प्रमाण होती है । इन देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 10 सागरोपम है, अतः इन्हें 10,000 वर्ष बाद भूख का अनुभव होता है ।

इस देवलोक में 4 लाख देव विमान और 4 लाख शाश्वत मंदिर है । पांचवें ब्रह्मलोक के नीचे जमीन की ओर अरिष्ट प्रतर में **सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, मरुत व अरिष्ट नाम** के 9 लोकांतिक देवों के भी विमान है । ये लोकांतिक देव 5 हाथ की कायावाले और 8 सागरोपम के आयुष्यवाले होते है । ये सभी देव एकावतारी होते है ।

यद्यपि तारक तीर्थंकर परमात्मा जन्म से ही संसार से विरक्त होते हैं, फिर भी प्रभु की दीक्षा के 1 वर्ष पूर्व ये लोकांतिक देव आकर प्रभु को तीर्थ प्रवर्तन के लिए विनंति करते है । उन देवों की विनंति स्वीकार कर प्रभु एक वर्ष तक वार्षिक दान देकर भागवती दीक्षा अंगीकार करते हैं ।

छट्ठा-सातवां-आठवां देवलोक :- समभूतला पृथ्वी से चार राजलोक ऊपर छट्ठा लांतक देवलोक है । इस देवलोक का स्वामी लांतक इन्द्र है । इस देवलोक में 50000 देवविमान व 50000 शाश्वत जिनालय है ।

ये विमान 700 योजन प्रमाण वाले है । देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 14 सागरोपम होने से उन देवों को 14000 वर्ष बाद भूख का अनुभव होता है । ये विमान घनवात और घनोदधि पर रहे हुए हैं ।

समभूतला पृथ्वी से चौथे राजलोक की ऊंचाई पर छट्ठे देवलोक के ऊपर सातवां और सातवें के ऊपर आठवां देवलोक आया हुआ है ।

सातवें देवलोक में 40000 देवविमान व 40000 शाश्वत मंदिर हैं ।

सातवें देवलोक का अधिपति महाशुक्र इन्द्र हैं । इन देवों की ऊंचाई 4 हाथ प्रमाण एवं उत्कृष्ट आयुष्य 17 सागरोपम है ।

आठवें देवलोक का नाम सहस्त्रार है, उसका अधिपति सहस्त्र इन्द्र है । इस देवलोक में 6000 विमान और 6000 शाश्वत मंदिर है । आठवें देवलोक के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 18 सागरोपम से कुछ अधिक है । 7वें और 8वें देवलोक के देवों की ऊंचाई चार हाथ प्रमाण होती है ।

तिर्यंच पशु पंखी आदि उत्कृष्ट आराधना करके आठवें देवलोक तक जा सकते हैं । देवियां का आगमन भी यहीं तक होता हैं, इसके ऊपर नहीं ।

नौवां-दसवां देवलोक :- समभूतला पृथ्वी से 5 राजलोक ऊपर पश्चिम और पूर्व में नौवें-दसवें आनत-प्राणत देवलोक आए हुए है । दोनों देवलोक का एक ही प्राणत इन्द्र हैं । इनमें उत्पन्न देवों की काया तीन हाथ प्रमाण होती है । इनका उत्कृष्ट आयुष्य 19 व 20 सागरोपम है । उन्हें क्रमशः 19 व 20 हजार वर्ष बीतने पर भूख का अनुभव होता है ।

यहां और यहां से ऊपर देवियाँ नहीं है । आनत-प्राणत में कुल 400 विमान हैं, और 400 शाश्वत जिनालय हैं, ये सभी विमान अर्द्ध चंद्राकार आकृतिवाले है ।

ग्यारहवां-बारहवां देवलोक :- नौवें व दसवें देवलोक के ऊपर ग्यारहवां-बारहवां आरण व अच्युत नाम का देवलोक है । इन दोनों देवलोक का स्वामी अच्युतेन्द्र है । इन दोनों देवलोक में कुल 300 विमान एवं 300 शाश्वत मंदिर है । इन देवों का उत्कृष्ट आयुष्य क्रमशः 21 व 22 सागरोपम है । इन देवताओं की ऊंचाई तीन हाथ प्रमाण होती है । इन देवताओं को क्रमशः 21 व 22000 वर्ष बीतने पर भूख का अनुभव होता है।

बारह देवलोक में कुल 10 इन्द्र हैं, उनमें अच्युतेन्द्र सबसे बडा है । तीर्थंकर परमात्मा के जन्म आदि कल्याणक प्रसंगों में अच्युतेन्द्र की प्रधानता रहती है । वर्तमान समय में रामचंद्रजी की पत्नी सीताजी अच्युतेन्द्र के रुप में विद्यमान है ।

ऊपर ऊपर के देवलोक में अधिक-अधिक सुख रहा हुआ है ।

इन सभी देवलोक में उत्पन्न देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं । अर्थात् वहां स्वामी-सेवक आदि का व्यवहार है । श्रावक-धर्म का पालन कर आत्मा 12वें देवलोक में जा सकती है । 12 देवलोक के ऊपर जो देवलोक हैं, वे

कल्पातीत कहलाते हैं ।

नौग्रैवेयक समभूतला पृथ्वी से 6 राजलोक पूर्ण होने के बाद 7वें राजलोक में नौ ग्रैवेयक के विमान है । चौदह राजलोक रुपी लोकपुरुष में गर्दन के स्थान पर ये देवलोक होने से उन्हें ग्रैवेयक कहते हैं ।

नौ ग्रैवेयक के नाम 1. सुदर्शन 2. सुप्रतिबद्ध 3. मनोरम 4. सर्वतो-भद्र 5. सुविशाल 6. सुमनस 7. सौमनस 8. प्रियंकर और 9. नंदीकर है ।

ये विमान आकाश में स्थिर रहे हुए है । यहां कुल 318 विमान एवं 318 शाश्वत जिनमंदिर है ।

इन देवों का उत्कृष्ट आयुष्य 23 सागरोपम से 31 सागरोपम तक होता है, अतः 23 से 31 हजार वर्ष बाद आहार ग्रहण करने की इच्छा होती है ।

ये सभी देव कल्पातीत कहलाते हैं । यहां छोटे-बडे, स्वामी-सेवक आदि का कोई व्यवहार नहीं है । सभी देव अहमिन्द्र कहलाते हैं ।

संयम धर्म का पालन करनेवाली आत्मा ही ग्रैवेयक में उत्पन्न होती है ।

अभव्य आत्मा द्रव्य से विशुद्ध चारित्र पालनकर अधिकतम नौवें ग्रैवेयक में उत्पन्न हो सकती है ।

नव ग्रैवेयक के ऊपर अभव्य आत्मा नहीं जाती है ।

जिनेश्वर परमात्मा के जन्म आदि कल्याणक प्रसंग पर या समवसरण में देशना श्रवण हेतु ये देव कभी भी मनुष्य लोक में नहीं आते हैं ।

इन नौ ग्रैवेयक के तीन विभाग है । 1 से 3 ग्रैवेयक में 111 दूसरे तीन ग्रैवेयक में 107 व तीसरे तीन ग्रैवेयक में 100 इस प्रकार कुल 318 विमान है ।

पांच अनुत्तर :- नौ ग्रैवेयक के ऊपर 5 अनुत्तर के विमान आए हुए है । ये विमान पूर्ण चंद्र के आकारवाले है । मध्य में 1 लाख योजन के विस्तारवाला सर्वार्थसिद्ध विमान हैं, जबकि उसके चारों ओर विजय, विजयंत, जयंत और अपराजित नाम के चार विमान है । शुद्ध संयम धर्म का पालन करनेवाली सम्यगदृष्टि आत्माएँ ही यहां उत्पन्न होती है । विजयादि चार में उत्पन्न हुई आत्माएँ अधिकतम संख्याता भव करती है । जबकि सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुई आत्मा एकावतारी होती है अर्थात् एक भव के बाद मोक्ष में जानेवाली होती है ।

अनुत्तर विमान में रहे देवताओं का उत्कृष्ट आयुष्य 31 से 33 साग-रोपम वर्ष का होता हैं । इन देवों की काया एक हाथ प्रमाण होती है ।

ये सभी देव दिव्य शय्या में ही रहते है । सभी अहमिन्द्र होते हैं । स्वामी-सेवक या छोटे-बडे का कोई व्यवहार नहीं होता है ।

तीर्थंकर परमात्मा के जन्म आदि कल्याणकों में इन देवों का आगमन नहीं होता है । वे अपना समय तत्त्वचिंतन में व्यतीत करते हैं । जब कभी उन्हें शंका पैदा होती है, तब वहीं पर बैठकर व प्रभु को प्रणाम कर प्रश्न पूछ लेते हैं और प्रभु भी उन्हें यहां बैठे-बैठे ही मनोवर्गणा द्वारा उत्तर दे देते हैं ।

ये सभी देव एक हाथ ऊंचे होते हैं । ये सभी देव, गत-जन्म के पूर्वधर महर्षि होते हैं, अतः स्वाध्याय में ही अपना समय व्यतीत करते हैं । उन्हें विषय वासना परेशान नहीं करती है ।

इन विमानों से बढकर अन्य कोई श्रेष्ठ विमान नहीं होने से इन्हें अनुत्तर विमान कहा जाता है ।

इन पांच विमानों में 5 शाश्वत जिनालय होते है ।

शाश्वत मंदिरों में जिन-प्रतिमाजी की संख्या

ये शाश्वत मंदिर 100 योजन लंबे, 50 योजन चौडे और 72 योजन ऊंचे होते है ।

12 वैमानिक देवलोक में 1 मंदिर में कुल 180 प्रतिमाएँ होती है, जो इस प्रकार है ।

प्रत्येक मंदिर के मूल गर्भगृह-गंभारे में चारों दिशाओं में 27-27 अर्थात् 108 प्रतिमाजी होती है ।

प्रत्येक मंदिर में चार द्वार होते हैं, उनमें पश्चिम का द्वार सदा बंद रहता है । पूर्व, उत्तर और दक्षिण के द्वार पर एक-एक चौमुखजी प्रतिमाजी होने से 4 x 3 = 12 प्रतिमाजी और होते है । इस प्रकार 108 + 12 = 120 प्रतिमाजी हुई ।

12 देवलोक तक के प्रत्येक विमान में 5-5 सभाएं होती है ।

1) मज्जनसभा :- जब नया देव पैदा होता हैं, तब पहले के देव उसे स्नान के लिए इस सभा में ले जाते है ।

2) अलंकार सभा :- स्नान के बाद इस सभा में शृंगार किया जाता है ।

3) ज्ञान सभा :- (उपपात सभा) इस सभा में देवों की उत्पत्ति होती है ।

4) सिद्धायतन सभा :- इस सभा में जिन प्रतिमा की पूजा होती है।

5) व्यवसाय सभा :- यहां ज्ञान मंदिर हैं, यहां आकर देवता पुस्तके पढते है, इसके उनका सम्यक्त्व दृढ होता है।

इन सभी सभाओं के चार-चार द्वार है। पश्चिम दिशा का द्वार सदा के लिए बंद होता है। तीन द्वार पर एक-एक चौमुखजी होते है, अतः एक सभा में कुळ 12 प्रतिमाजी हुए। कुल पांच सभाएं होने से 12 x 5 = 60 प्रतिमाजी हुए।

इस प्रकार 120 + 60 = 180 प्रतिमाजी एक शाश्वत चैत्य में होती है।

नौ ग्रेवेयक और 4 अनुत्तर में ये पांच सभाएं नहीं हैं, अतः वहां एक मंदिर में 120 प्रतिमाएं ही होती है।

ऊर्ध्व लोक में कुल मंदिर व प्रतिमाजी

देवलोक	**जिनमंदिर**	**1 मंदिर में प्रतिमाजी**	**कुलप्रतिमाजी**
1. सौधर्म	32 लाख	180	57,60,00,000
2. ईशान	28 लाख	180	50,40,00,000
3. सनतकुमार	12 लाख	180	21,60,00,000
4. माहेन्द्र	8 लाख	180	14,40,00,000
5. ब्रह्मदेवलोक	4 लाख	180	7,20,00,000
6. लांतक	50 हजार	180	90,00,000
7. महाशुक्र	40 हजार	180	72,00,000
8. सहस्त्रार	6 हजार	180	10,80,000
9. आनत	400	180	72,000
10. प्राणत			
11. आरण	300	180	54,000
12. अच्युत			
13. नौ ग्रैवेयक	318	120	38,160
14. 5 अनुत्तर	5	120	600
	84,97,023		**1,52,94,44,760**

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

अधोलोक के जिनमंदिर

समभूतला पृथ्वी के नीचे की ओर 1 राजलोक में रत्नप्रभा नामक पहली नारकी हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी 1,80,000 योजन मोटी है। उसमें ऊपर-नीचे 1000-1000 योजन छोडने पर शेष बचे 1,78,000 योजन में 25 मंजिल की कल्पना करे।

उस 25 मंजिल में 1,3,5,7,9,11,13,15,17,19,21, 23 व 25 वीं मंजिल में पहली नरक के जीवों के 13 प्रतर आए हुए है।

दूसरी व चौबीसवीं मंजिल को छोडकर शेष 4,6,8,10,12, 14,16,18,20 व 22 वीं मंजिल में भवनपति निकाय के देवों के निवास स्थान है। भवनपति देवों के जो निवास हैं, वे विमान नहीं बल्कि भवन है। भवन में रहने के कारण वे देवता भवनपति कहलाते है।

10 भवनपति :- 1. असुरकुमार 2. नागकुमार 3. स्वर्णकुमार 4. विद्युतकुमार 5. अग्निकुमार 6. द्वीपकुमार 7. उदधिकुमार 8. दिककुमार 9. वातकुमार 10. स्तनितकुमार

ये सभी देव अत्यंत ही रुपवान् और क्रीडाप्रिय होने से कुमार कहलाते है।

इन देवों की काया 7 हाथ प्रमाण होती है। 2 से 9 दिन बाद उन्हें भोजन की इच्छा होती है। 2 से 9 मुहुर्त बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं। इनका जघन्य आयुष्य 10000 वर्ष और उत्कृष्ट आयुष्य एक सागरोपम से कुछ अधिक होता है।

मिथ्या तप करनेवाले, बालतप करनेवाले, तप में अहंकार करनेवाले जीव यहां पैदा होते है।

इन देवों के दो-दो इन्द्र होने से कुल 20 इन्द्र होते हैं।

इन देवों के भवन उत्तर व दक्षिण दिशा में विभाजित है। एक इन्द्र का साम्राज्य उत्तर में व दूसरे का साम्राज्य दक्षिण की ओर होता है, अतः उन्हें दक्षिणार्ध भवनपति और उत्तरार्ध भवनपति भी कहा जाता है।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

भवनपति	दक्षिणार्धभवन	उत्तरार्धभवन
1. असुरकुमार	34 लाख	30 लाख
2. नागकुमार	44 लाख	40 लाख
3. स्वर्णकुमार	38 लाख	34 लाख
4. विद्युत्कुमार	40 लाख	36 लाख
5. अग्निकुमार	40 लाख	36 लाख
6. द्वीपकुमार	40 लाख	36 लाख
7. उदधिकुमार	40 लाख	36 लाख
8. दिक्कुमार	40 लाख	36 लाख
9. वातकुमार	50 लाख	46 लाख
10. स्तनित	40 लाख	36 लाख
कुलयोग	**4,06,00,000**	**3,66,00,000**

दक्षिणार्ध व उत्तरार्ध भवनों को जोडने पर 7,72,00,000 संख्या होती है। सकलतीर्थ में यही संख्या दी है-**'सात कोड ने बहोतेर लाख, भुवनपतिमां देवल भाख।'**

इन प्रत्येक मंदिर में 180 जिनप्रतिमाजी है। मूल मंदिर के गर्भगृह में चारों दिशाओं में कुल 108 प्रतिमाजी हैं, तीन द्वार में चौमुखजी की 12 प्रतिमाजी एवं 5 सभाओं में चौमुखजी की 60 प्रतिमाजी। इस प्रकार कुल 108 + 12 + 60 = 180 प्रतिमाजी होती है।

ये सभी प्रतिमाजी 7 हाथ प्रमाण है। भवनपति देवलोक में 7,72,00,000 x 180 = 13,89,60,00000 शाश्वती प्रतिमाजी है।

भवनपति	कुलभवन	उत्तरार्धइन्द्र	दक्षिणाधइन्द्र	जिनालय
1. असुरकुमार	64 लाख	बलीन्द्र	चमरेन्द्र	64 लाख
2. नागकुमार	84 लाख	भूतानेन्द्र	धरणेन्द्र	84 लाख
3. स्वर्णकुमार	72 लाख	वेणूदालीन्द्र	वेणुदेवेन्द्र	72 लाख
4. विद्युत्कुमार	76 लाख	हरिसहेन्द्र	हरिकांतेन्द्र	76 लाख

5. अग्निकुमार	76 लाख	अग्निप्रमाणवेन्द्र	अग्निशिखेन्द्र	76 लाख
6.द्वीपकुमार	76 लाख	विशिष्टेन्द्र	पूर्णेन्द्र	76 लाख
7. उदधिकुमार	76 लाख	जलप्रभेन्द्र	जलकांतेन्द्र	76 लाख
8. दिक्कुमार	76 लाख	अमितवाहनेन्द्र	अमीतगतेन्द्र	76 लाख
9. वातकुमार	96 लाख	प्रभंजनेन्द्र	लम्भेन्द्र	96 लाख
10. स्तनितकुमार	86 लाख	महाघोषेन्द्र	घोषेन्द्र	86 लाख

तिर्छालोक में शाश्वत मंदिर व्यंतर निकाय के मंदिर

समभूतला पृथ्वी से 900 योजन नीचे और 900 योजन ऊपर अर्थात् 1800 योजन की मोटाई में और 1 राजलोक प्रमाण विस्तारवाला तिच्छीलोक है ।

रत्नप्रभापृथ्वी, 1,80,000 योजन मोटी है । उसके ऊपर के 1000 योजन में, ऊपर-नीचे 100-100 छोडने पर 800 योजन में व्यंतरनिकाय के देवों के निवास है ।

ऊपर जो 100 योजन छोडा गया, उसमें भी ऊपर नीचे 10-10 योजन छोडने पर बीच के 80 योजन में वाणव्यंतर देवों के निवास हैं ।

अंतर बिना, नगरों में एक साथ रहने से उन्हें व्यंतर देव कहा जाता है । ये देव गीत, नृत्य व संगीत के शौकीन होते हैं । इसके नगर व भवन बाहर से गोल व अंदर से चोरस होते हैं ।

इन देवों की ऊंचाई 7 हाथ प्रमाण होती है । अज्ञान-कष्ट आदि सहनकर मरनेवाली आत्माएं व्यंतरनिकाय में पैदा होती है ।

इनका जघन्य आयुष्य 10000 वर्ष व उत्कृष्ट आयुष्य 1 पल्योपम होता हैं, देवियों का उत्कृष्ट आयुष्य आधा पल्योपम होता है ।

तीर्थंकर परमात्मा के यक्ष-यक्षिणी, 56 दिक्कुमारिका एवं सरस्वती लक्ष्मी आदि व्यंतरनिकाय के ही होते है ।

व्यंतर	**दक्षिणेन्द्र**	**उत्तरेन्द्र**
1. पिशाच	काल इन्द्र	महाकाल इन्द्र
2. भूत	सुरुप इन्द्र	प्रतिरुप इन्द्र

3. यक्ष	पूर्णभद्र इन्द्र	माणिभद्र इन्द्र
4. राक्षस	भीम इन्द्र	महाभीम इन्द्र
5. किन्नर	किन्नर इन्द्र	किंपुरुष इन्द्र
6. किंपुरुष	सत्पुरुष इन्द्र	महापुरुष इन्द्र
7. महोरग	अतिकाय इन्द्र	महाकाय इन्द्र
8. गंधर्व	गीतरति इन्द्र	गीतयश इन्द्र

व्यंतर निकाय में असंख्य नगर हैं, अतः असंख्य मंदिर है ।

ये शाश्वत चैत्य 1½ योजन लंबे 6¼ योजन चोडे व 1 योजन ऊंचे है । इन सभी मंदिरों में 180-180 प्रतिमाएं है ।

व्यंतर निकाय की प्रतिमाएं 500 धनुष प्रमाण होती है ।

वाण व्यंतर

वन आदि में रहने के कारण इन्हें वाणव्यंतर कहा जाता है । समभूतला पृथ्वी से 10 योजन जाने के बाद नीचे 80 योजन में वाणव्यंतर देवों के आवास है । इनकी आठ जाति है । दक्षिण व उत्तर की ओर रहे 8 वाणव्यंतरों के कुल 16 इन्द्र है ।

इनकी काया 7 हाथ प्रमाण होती है । इनका उत्कृष्ट आयुष्य 1 पल्योपम जितना होता है ।

वाण व्यंतर	दक्षिणका इन्द्र	उत्तर का इन्द्र
1. अणपन्नी	संनिहित इन्द्र	सामान इन्द्र
2. पणपन्नी	घात इन्द्र	विधाता इन्द्र
3. इसिवादी	इषी इन्द्र	ऋषिपाल इन्द्र
4. भूतवादी	ईश्वर इन्द्र	विशाल इन्द्र
5. कंदित	सुवत्स इन्द्र	विशाल इन्द्र
6. महाकंदित	हास्य इन्द्र	हास्यरति इन्द्र
7. कोहडं	श्वेत इन्द्र	महाश्वेत इन्द्र
8. पतंग	पतंग इन्द्र	पतंगपति इन्द्र

वाणव्यंतर देवों के भी असंख्य नगर हैं उन सभी में 1-1 शाश्वत जिनालय हैं । उन सभी जिनालयों में 180-180 जिन प्रतिमाजी हैं । ये सभी

प्रतिमाएँ 500 धनुष ऊंची है ।

ज्योतिष देव

समभूतला पृथ्वी से 900 योजन ऊपर तक ज्योतिष देवों के विमान है ।

तारा : समभूतला पृथ्वी से 790 योजन ऊपर तारों के विमान हैं ये विमान 790 x 3200 = 25,28,000 मील दूर ऊंचाई पर हैं ।

सूर्य : तारों से 10 योजन ऊंचाई पर सूर्य के विमान है ।

चंद्र : सूर्य से 80 योजन ऊंचाई पर चंद्र के विमान हैं ।

नक्षत्र : चंद्र से 4 योजन ऊपर नक्षत्र के विमान है ।

ग्रह : नक्षत्र से 16 योजन ऊपर ग्रहों के विमान है ।

इन पांच ज्योतिष में सूर्य व चंद्र के इंद्र होते हैं ।

ढाई द्वीप में रहे सूर्य चंद्र आदि घूमते रहते हैं, वे चर ज्योतिष कहलाते हैं, जबकि ढाई द्वीप के बाहर सूर्य-चंद्र आदि स्थिर है । ढाई द्वीप में कुल 132 सूर्य और 132 चंद्र है ।

इन सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र और तारों के असंख्य विमान है । उन सभी विमानों में 1-1 शाश्वत मंदिर है । प्रत्येक मंदिर में 500 धनुष ऊंचाई वाली 180-180 शाश्वत प्रतिमाजी है । इस प्रकार ज्योतिष देवलोक में असंख्य शाश्वत मंदिर व असंख्य प्रतिमाएं है ।

ढाई द्वीप-मनुष्य लोक में शाश्वत चैत्य एवं शाश्वत प्रतिमाएं

भरत क्षेत्र की मर्यादा बांधनेवाले लघु हिमवंत पर्वत पर रहे पद्मद्रह में से गंगा और सिंधु नदी निकलती है, जो थोडी दूर पर्वत पर बहकर आगे बढकर सिंधु नदी सिंधु प्रताप कुंड में और गंगा नदी गंगा प्रताप कुंड में गिरकर, आगे चलकर दीर्घ वैताढ्य को भेदकर दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र से आगे बढकर लवण समुद्र में गिरती है । इस प्रकार भरत क्षेत्र के छ विभाग होते है ।

गंगा और सिंधु के प्रताप कुंड में एक-एक शाश्वत जिन मंदिर है तथा एक शाश्वत मंदिर वैताढ्य पर्वत के सिद्धकूट नाम के शिखर पर आया हुआ है ।

इस प्रकार भरत क्षेत्र में कुल 3 शाश्वत मंदिर और 120 x 3 = 360 शाश्वत प्रतिमाएं 500 धनुष प्रमाणवाली है ।

इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र में रक्ता व रक्तवती नदियों के प्रतापकुंड में

दो और एक वैताढ्य पर्वत पर 1 शाश्वत मंदिर है ।

इसी प्रकार हिमवंत क्षेत्र, हरिवर्ष क्षेत्र, रम्यक्क्षेत्र और हिरण्यवंत युगलिक क्षेत्रों में भी 3-3 शाश्वत मंदिर है ।

जंबुद्वीप में आए हुए लघु हिमवंत पर्वत, महाहिमवंत पर्वत, निषध पर्वत, नीलवंत पर्वत, रुक्मी पर्वत और शिखरी पर्वत के दोनों कोने पर 1-1 अर्थात् 1 पर्वत पर कुल 2-2 शाश्वत जिनमंदिर है । प्रत्येक मंदिर में 120 शाश्वत प्रतिमाएं है ।

क्षेत्र व पर्वतों पर मंदिर व प्रतिमाजी

क्षेत्र पर्वत	मंदिर	कुल प्रतिमाजी
1. भरतक्षेत्र कर्मभूमि	3	360
2. हिमवंत क्षेत्र युगलिक	3	360
3. हरिवर्ष क्षेत्र युगलिक	3	360
4. रम्यक् क्षेत्र युगलिक	3	360
5. हिरण्यवंत क्षेत्र युगलिक	3	360
6. ऐरावत क्षेत्र कर्मभूमि	3	360
1. लघु हिमवंत पर्वत	2	240
2. महा हिमवंत पर्वत	2	240
3. निषध हिमवंत पर्वत	2	240
4. नीलवंत हिमवंत पर्वत	2	240
5. रुक्मी हिमवंत पर्वत	2	240
6. शिखरी हिमवंत पर्वत	2	240
	40	**3600**

महाविदेह क्षेत्र में शाश्वत मंदिर-प्रतिमाजी

जंबुद्वीप के मध्य में महाविदेह क्षेत्र आया हुआ है । महाविदेह के उत्तर में नीलवंत नाम का वर्षधर पर्वत आया हुआ है ।

महाविदेह क्षेत्र पूर्व-पश्चिम में 1 लाख योजन लंबा और 33684 योजन चार कला चौडा है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में जीवों की ऊंचाई आयुष्य आदि जो भाव होते हैं, वे भाव महाविदेह क्षेत्र में हमेशा होते है। वहां मनुष्यों की काया 500 धनुष प्रमाण व आयुष्य एक करोड पूर्व वर्ष का होता है। जंबुद्वीप के महाविदेह में जघन्य से 4 तीर्थंकर व उत्कृष्ट से 32 तीर्थंकर होते हैं।

महाविदेह क्षेत्र के मध्य में 1 लाख की ऊंचाई वाला मेरुपर्वत है।

मेरुपर्वत से पूर्व-पश्चिम व सीता व सीतोदा नदी के उत्तर-दक्षिण से महाविदेह क्षेत्र के चार भाग हो जाते हैं। उन चारों भागों में 8-8 विजय, 4-4 वक्षस्कार पर्वत और 3-3 अंतरनदियाँ है।

इस प्रकार महाविदेह क्षेत्र में 32 विजय, 16 वक्षस्कार पर्वत और 12 अन्तर्नदियाँ है।

महाविदेह क्षेत्र में कुल 124 शाश्वत जिनालय इस प्रकार है। महाविदेह में कुल 32 विजय हैं, प्रत्येक विजय में 3 शाश्वत जिनालय होने से 32 x 3 = 96 जिनालय हुए।

महाविदेह क्षेत्र में 16 वक्षष्कार पर्वत पर 1-1 शाश्वत जिनालय होने से 16 जिनालय हुए।

महाविदेह में 12 अंतर-नदियों में 1-1 शाश्वत जिनालय होने से 12 शाश्वत जिनालय हुए।

इस प्रकार 96 + 16 + 12 = 124 जिनालय हुए।

अन्य अपेक्षा से

1. उत्तर पूर्व महाविदेह में 8 विजय, 4 वक्षष्कार पर्वत और 3 नदियों में कुल 31 शाश्वत जिनालय हुए।

2. इसी प्रकार दक्षिण पूर्व महाविदेह, उत्तर पश्चिम महाविदेह और दणिक्ष पश्चिम महाविदेह में भी 8 विजय, 4 वक्षष्कार पर्वत और 3 अंतर नदियां होने से चारों महाविदेह हों में 31-31 शाश्वत जिनालय होने से कुछ 124 शाश्वत मंदिर और 124 x 120 = 1,44,480 शाश्वत प्रतिमाजी हुए।

मेरुपर्वत पर शाश्वत जिनालय व प्रतिमाजी

महाविदेह एवं जंबुद्वीप में आया मेरुपर्वत 1 लाख योजन ऊंचा है। यह पर्वत 1000 योजन जमीन में गडा हुआ है। 99000 योजन पृथ्वी पर है। पृथ्वी पर इसका विस्तार 10000 योजन एवं शिखर पर इसका विस्तार 1000 योजन है। उसके ऊपर 40 योजन की चूलिका है।

मेरुपर्वत की तलहटी में भद्रशाल वन है, वहां से 500 योजन ऊपर जाने पर नंदनवन नाम का पहला कांड आता है।

नंदनवन से 62500 योजन ऊपर जाने पर दूसरा कांड आता है, वहां सोमनस वन है।

वहां से 36000 योजन ऊपर जाने पर तीसरा कांड आता है, जिसमें पांडुकवन आता है उसके ऊपर चूलिका है।

भद्रशाल वन की चारों दिशाओं में चार शाश्वत जिनालय है। भद्रशा-लवन में दिग्गजनाम के 8 करिकूट है, उन सभी पर्वतों पर 1-1 शाश्वत जिनालय हैं।

नंदन वन में चार दिशाओं में चार जिनालय है। सोमनस वन में चार दिशाओं में चार जिनालय है। पांडुक वन में चार दिशाओं में चार जिनालय है।

इस प्रकार कुल 24 जिनालय हुए। मेरुपर्वत की चुलिका पर 1 जिनालय होने से कुल 25 जिनालय हुए।

ये सभी 24 जिनालय 50 योजन लंबे, 35 योजन चौडे और 36 योजन ऊंचे है।

चूलिका पर स्थिर मंदिर की लंबाई एक गाऊ, चोडाइ 1/2 गाऊ तथा ऊंचाई 1440 धनुष प्रमाण है।

पांडुक वन में चार दिशाओं में तीर्थंकरों के अभिषेक हेतु चार शिलाएं भी हैं, जिस पर इन्द्र महाराजा तीर्थंकर परमात्मा के अभिषेक करते हैं। पर्वतों पर 1-1 शाश्वत जिनालय हैं।

देवगुरु कुरु-उत्तर कुरु में शाश्वत जिनालय

महाविदेह क्षेत्र में मेरुपर्वत के पास में चार गजदंत पर्वत के बीच में देवकुरु और उत्तर कुरु क्षेत्र आए हुए है ।

इन दोनों में 228-228 शाश्वत जिनमंदिर हैं । वे इस प्रकार हैं ।

देवकुरु व उत्तरकुरु के कुल चार गजदंतपर्वत पर चार शाश्वत जिनालय है ।

सीता और सीतोदा नदी के प्रतापकुंड में 1-1 शाश्वत मंदिर हैं ।

सीतोदा प्रपातकुंड के आसपास यमक-शमक नाम के सोने के दो पर्वत हैं और सीता प्रपात कुंड के आसपास चित्र-विचित्र नाम के दो पर्वत 1000 योजन ऊंचे है । उन चार पर्वतों पर चार शाश्वत जिनालय है ।

देवकुरु क्षेत्र में 1 निषध, 2 देवकुरु, 3 सुरप्रभ 4 सुलस और 5 विद्युत्प्रभ नाम के पांच द्रह है उत्तर कुरु में 1 नीलवंत 2 उत्तरगुरु 3 चंद्र 4 ऐरावत 5 माल्यवंत नाम के पांच द्रह है । इन 10 द्रहों में 10 शाश्वत मंदिर हैं ।

इन द्रहों के आसपास 10-10 कंचनगिरि पर्वत हैं । इन 200 कंचन-गिरि पर्वतों पर 1-1 शाश्वत जिनमंदिर है ।

देवकुरु क्षेत्र में 117 शाल्मली वृक्ष और उत्तरकुरु क्षेत्र में 117 जंबुवृक्ष है । इन सभी पर 1-1 शाश्वत जिनालय है ।

देव-कुरु व उत्तरकुरु में 1-1 शाश्वत जिनालय है ।

देवकुरु-उत्तरकुरु में कुल जिनालय व प्रतिमाजी

देवकुरु	**जिनालय**	**कुल प्रतिमाजी**	**उत्तरकुरु**	**जिनालय**	**कुल प्रतिमाजी**
गजदंत पर्वत	2	240	गजदंतपर्वत	2	240
प्रपात कुंड	1	120	प्रतापकुंड	1	120
द्रह सरोवर	5	600	द्रह सरोवर	5	600
कंचनगिरि	100	12000	कंचनगिरि	100	12000
जंबुवृक्ष	117	14040	जंबुवृक्ष	117	14040
यमक शमक पर्वत	2	240	चित्र विचित्र पर्वत	2	240
देवकुरु क्षेत्र	1	120	उत्तरकुरु	1	120
कुल योग	**228**	**27360**		**228**	**27360**

इन द्रहों के आसपास 10-10 कंचनगिरि पर्वत है । इन 200 कंचन-गिरि पर्वतों पर 1-1 शाश्वत जिन मंदिर है ।

देव-गुरु व उत्तरकुरु में 1-1 शाश्वत जिनालय है ।

देव-कुरु-उत्तर कुरु में कुल जिनालय व प्रतिमाजी

देवकुरु	**जिनालय**	**कुल प्रतिमाजी**	**उत्तरकुरु**	**जिनालय**	**कुल प्रतिमाजी**
गजदंत पर्वत	2	240	गजदंत पर्वत	2	240
प्रतापकुंड	1	120	प्रतापकुंड	1	120
द्रह सरोवर	5	600	द्रह सरोवव	5	600
कंचनगिरि	100	12000	कंचनगिरि	100	12000
जंबु वृक्ष	117	14040	जंबुवृक्ष	117	14040
यमक शमक पर्वत	2	240	चित्र विचित्र पर्वत	2	240
देवकुरु क्षेत्र	1	120	उत्तर कुरु	1	120
कुलयोग	**228**	**27360**		**228**	**27360**

जंबुद्वीप में कुल मंदिर व प्रतिमाजी

स्थान	**मंदिर**	**कुल प्रतिमाजी**
भरत-ऐरावत कर्मभूमि	6	720
हिमवंत, हरिवर्ष, हिरण्यवंत, रम्यक् युगलिक क्षेत्र	12	1440
लघु हिमवंत, महा हिमवंत, निषध नीलवंत, रुक्मी, शिखरी,	6	720
वर्षधर पर्वत	6	720
महाविदेह क्षेत्र	124	14880
देवकुरु	228	27360
उत्तर कुरु	228	27360
मेरु पर्वत	25	3000
कुल योग	**635**	**76200**

धातकी खंड में शाश्वत जिनालय व प्रतिमाजी

लवण समुद्र के बाद चारों ओर वलयाकार में धातकी खंड नाम का द्वीप आया हुआ है । इषुकार नाम के दो पर्वत धातकी खंड को दो भागों में विभाजित करता है ।

धातकी खंड में दो भरत क्षेत्र, 2 ऐरावत क्षेत्र, 2 महाविदेह क्षेत्र, 2 मेरुपर्वत आदि आए हुए है ।

जंबुद्वीप की अपेक्षा नदी, पर्वत आदि दुगुने हैं, अतः यहां शाश्वत मंदिर व शाश्वत प्रतिमाएँ भी दो गुनी है ।

धातकी खंड में 635 x 2 = 1270 मंदिर है ।

दो इषुकार पर्वत पर दो शाश्वत जिनालय होने से 1270 x 2 = 1272 शाश्वत जिनालय हुए । इन मंदिरों में कुल 1272 x 120 = 1,52,640 शाश्वत प्रतिमाजी है ।

पुष्करार्ध द्वीप

कालोदधि समुद्र के चारों ओर वलयाकार रुप से पुष्कर द्वीप आया हुआ है । इसका व्यास 16 लाख योजन का है । पुष्कर द्वीप के मध्य में वलयाकार में मानुषोत्तर पर्वत आया हुआ हैं, जो इस द्वीप को दो भागों में विभाजित करता है ।

अंदर 8 लाख योजनवाला भाग मनुष्य क्षेत्र में आता है एवं बाहर का 8 लाख योजनवाला भाग मनुष्य क्षेत्र के बाहर का भाग कहलाता है ।

धातकी खंड की तरह यहां भी 1272 जिनमंदिर हैं, मानुषोत्तर पर्वत पर चार दिशाओं में चार मंदिर होने से इस द्वीप पर कुल 1272 + 4 = 1276 जिन मंदिर हुए ।

यहां 1276 x 120 = 153120 प्रतिमाजी है ।

शाश्वत प्रतिमाओं के नाम

सभी शाश्वत प्रतिमाएं ऋषभ, चंद्रानन, वर्धमान और वारिषेण के नामवाली होती है ।

चलो ! नंदीश्वर द्वीप की यात्रा करें !

मनुष्य की उत्पत्ति, जन्म और मरण ढाई द्वीप के अंदर ही होता है । ढाई द्वीप के बाहर न तो मनुष्य का जन्म होता है और न ही मृत्यु होती है ।

ढाई द्वीप के बाद मानुषोत्तर पर्वत आता है, वह पर्वत वैताढ्य पर्वत की तरह सीधा नही है, बल्कि लवण समुद्र आदि की तरह गोलाकार है ।

ढाई द्वीप के बाहर बादर अग्नि नहीं है । वहां पर शाश्वत नदियाँ नहीं है ।

सामान्यतः मनुष्य ढाई द्वीप के बाहर नहीं जा सकता है, परंतु विद्या या लब्धि के बल से ढाई द्वीप के बाहर नंदीश्वर आदि द्वीपों की यात्रा के लिए मनुष्य जा सकता है ।

ढाई द्वीप के बाहर काल की कोई व्यवस्था नहीं हैं, क्योंकि वहां जो सूर्य-चंद्र आदि हैं, वे सभी स्थिर है । अतः जहां प्रकाश हैं, वहां सदा काल के लिए प्रकाश है और जहां अंधकार हैं, वहां सदाकाल के लिए अंधकार है । जहां प्रकाश हैं, वहां सदैव दिन जैसा वातावरण रहता है और जहां प्रकाश का अभाव हैं, वहां सदैव रात्रि जैसा वातावरण रहता है ।

पुष्कर द्वीप के बाद पुष्कर वर समुद्र आता हैं । जिसका व्यास 32 लाख योजन प्रमाण है । इस समुद्र का पानी मीठा है ।

पुष्करवर समुद्र के बाद वारुणीवर द्वीप आता हैं, जो 64 लाख योजन प्रमाण व्यासवाला है । इस द्वीप में वनस्पति आदि है ।

वारुणीवर द्वीप के बाद वारुणीवर समुद्र आता हैं, जिसका व्यास 128 लाख योजन प्रमाण है । इस समुद्र का पानी शराब जैसा होता है ।

उसके बाद क्षीरवर द्वीप आता हैं, जिसका व्यास 256 लाख योजन प्रमाण हैं, यहां पर भी सुंदर वन आदि हैं ।

उसके बाद क्षीर समुद्र आता हैं, जिसका व्यास 512 लाख योजन प्रमाण है । इस समुद्र का पानी चक्रवर्ती की गायों के दूध जैसा होता है । इस पानी का वर्ण व स्वाद दूध जैसा होता हैं, परंतु इस दूध में से दही, घी आदि नहीं बनता है ।

तारत तीर्थंकर परमात्मा के जन्म समय इन्द्र महाराजा की आज्ञा से देवतागण इसी समुद्र का जल लेकर आते हैं और उस जल से प्रभु का अभिषेक करते हैं । उसी के अनुकरण रुप हम स्नात्र पूजा और अभिषेक के समय जल से मिश्रित गाय के दूध का उपयोग करते हैं ।

क्षीर समुद्र के बाद घृतवर द्वीप आता हैं, इसका व्यास 1024 लाख

योजन प्रमाण है । यहां पर भी वन आदि है ।

घृतवर द्वीप के बाद घृतवर समुद्र आता है । जिसका व्यास 2048 लाख योजन प्रमाण हैं, इस समुद्र का पानी घी की तरह स्वादिष्ट होता है ।

इसके बाद इक्षुवर द्वीप आता हैं, जिसका व्यास 4096 लाख योजन प्रमाण है । इसके बाद इक्षुवर समुद्र आता है, जिसका व्यास 8192 लाख योजन प्रमाण है, इस समुद्र का पानी गन्ने के रस के समान मीठा होता है ।

8वां नंदीश्वर द्वीप

इक्षुवर समुद्र के बाद 8 वां द्वीप नंदीश्वर द्वीप आता हैं । इस द्वीप का व्यास 163 करोड 84 लाख योजन प्रमाण है ।

नंदी अर्थात् समृद्धि का स्वामी होने से इस द्वीप का नाम नंदीश्वर द्वीप है ।

जब जब भी तारक तीर्थंकर परमात्मा के जन्म कल्याणक के प्रसंग पर सौधर्म इन्द्र देवलोक में से मेरुपर्वत पर आते हैं, तब 1 लाख योजन का विमान बनाकर आते हैं, उस विमान का प्रमाण ही जंबुद्वीप जितना होता हैं, अतः इन्द्र महाराजा अपने विमान को लेकर नंदीश्वर द्वीप में ही उतरते हैं और वहां आकर अपने विमान का संक्षेप कर फिर भरत आदि क्षेत्र में आते है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा के जन्म समय मेरुपर्वत पर प्रभु का जन्म महोत्सव मनाने के बाद इन्द्र आदि देवता नंदीश्वर द्वीप में आकर अष्टाह्निक महोत्सव करते है और वहां रहे शाश्वत जिनमंदिरों में रही शाश्वत प्रतिमाओं की खूब भक्ति करते है ।

जब जब नवपद ओली और पर्वाधिराज पर्युषण आते हैं, तब तब इन्द्र व देवतागण नंदीश्वर द्वीप ऊपर आकर अष्टाह्निक-महोत्सव द्वारा प्रभु की भक्ति करते है ।

नंदीश्वर द्वीप पर चारों विदिशाओं में 13-13 जिनालय है, इस प्रकार कुल 52 जिनालय आए हुए है । उसी के अनुकरण रुप कई नगरों में 52 जिनालय जिन मंदिर बनाए जाते हैं ।

नंदीश्वर द्वीप पर चार दिशाओं में चार अंजन गिरि पर्वत आए हुए है । पूर्व दिशा में देवरमण नाम का, दक्षिण में नित्योद्योत, पश्चिम दिशा में स्वयंप्रभ और उत्तर दिशा में रमणीय नाम का अंजनगिरि पर्वत है । ये पर्वत

भूमि के अंदर 1000 योजन गहरे और भूमि पर 84000 योजन ऊंचे है। पृथ्वी पर इन पर्वतों का विस्तार 10000 योजन और शिखर पर 1000 योजन है।

अंजनगिरि पर्वत से 1-1 लाख योजन दूर जाने पर चारों दिशाओं में चार-चार बावडियाँ आती हैं, जो 1 लाख योजन लंबी-चोडी और 10 योजन गहरी है।

चारों दिशाओं में कुल 16 बावडियों में 16 दधिमुख पर्वत आए हुए हैं, ये पर्वत 10000 योजन लंबे-चोडे है।

चार अंजनगिरि पर्वत पर और 16 दधिमुख पर्वत पद 1-1 शाश्वत जिनालय है।

अंजनगिरि पर्वत की चार विदिशाओं में दधिमुख पर्वत के बीच में 2-2 रतिकर पर्वत आए हुए है। इस प्रकार एक अंजनगिरि पर्वत की चार विदिशाओं में 8 रतिकर पर्वत आए हुए है। चार दिशाओं में चार अंजन गिरि पर्वत होने से कुल 32 रतिकर पर्वत हुए। इन रतिकर पर्वतों पर भी 1-1 शाश्वत जिन मंदिर है। ये 32 रतिकर पर्वत 10000 योजन विस्तारवाले और 1000 योजन ऊंचे गोलाकार स्थिति में है।

इस प्रकार 4 अंजनगिरि पर्वत पर	4
16 दधिमुख पर्वत पर	16
एवं 32 रतिकर पर्वत पर	32
कुल योग	52 जिनालय हुए।

ये मंदिर 100 योजन लंबे, 50 योजन चोडे और 72 योजन ऊंचे है।

इन मंदिरों में चारों दिशाओं में 27-27 प्रतिमाजी होने से कुल 108 प्रतिमाजी हुई तथा 1 मंदिर के चारों द्वार पर चौमुखजी की 4-4 प्रतिमाजी होने से 16 प्रमिताजी हुए। इस प्रकार एक मंदिर में 108 + 16 = 124 प्रतिमाजी हुए।

4 अंजनगिरि पर्वत पर 4 जिनालय में कुल 496 प्रतिमाएं
16 दधिमुख पर्वत पर 16 जिनालय में कुल 1984 प्रतिमाएं
32 रतिकर पर्वत पर 32 जिनालय में कुल 3968 प्रतिमाएं हुई !

ये प्रतिमाएं उत्सेध अंगुल से 500 धनुष के प्रमाणवाली है ।

राजधानियाँ

रतिकर पर्वत से 1 लाख योजन दूर जाने पर सौधर्म इन्द्र और ईशान इन्द्र की 8-8 पट्टरानियों की 8-8 राजधनियाँ है । कुल 4 दिशाओं में 16 राजधानियाँ है ।

दक्षिण दिशा की विदिशाओं में सौधर्म इन्द्र की पट्टरानियों की और उत्तर दिशा की विदिशाओं में ईशान इन्द्र की पट्टरानियों की राजधानियाँ है ।

इन 16 राजधानियों में भी 1-1 जिनालय है । 1-1 जिनालय में 120 प्रतिमाएं है । 4 दिशाओं में 27-27 प्रतिमाएं है । यहां चारों दिशाओं में 1 द्वार बंद होने से, तीन दिशाओं के द्वार में चौमुखजी की 12 प्रतिमाएं होने से कुल 108 + 12 = 120 प्रतिमाजी हुए ।

16 राजधानी में 16 मंदिर होने से 120 x 16 - 1920 प्रतिमाजी हुई ।

इस प्रकार राजधानी सहित नंदीश्वर द्वीप में कुल 68 शाश्वत मंदिर व 8468 शाश्वत प्रतिमाएं है ।

कुंडल द्वीप

नंदीश्वर द्वीप के बाद नंदीश्वर समुद्र आता है, उसके बाद अरुणोप-पात द्वीप और अरुणोपपात समुद्र आता है, उस समुद्र के बाद ग्यारहवां कुंडलद्वीप आता है ।

उस द्वीप पर सिंहनिषद्या आकार में कुंडलगिरि पर्वत है । उस पर्वत के मध्य भाग में चारों दिशा में 1-1 शाश्वत मंदिर है । यहां चारों द्वार खुले होने से एक जिनालय में 124 प्रतिमाजी होने से 4 x 124 = 496 प्रतिमाएं कुंडलगिरि पर्वत पर है ।

रुचक द्वीप

13 वें रुचकद्वीप पर मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत की तरह रुचक गिरि नाम का पर्वत हैं । यह पर्वत 84000 योजन ऊंचा है ।

इस पर्वत के शिखर के मध्य भाग में चारों दिशाओं में चार शाश्वत जिनालय है । मंदिर के चारों द्वार खुले होने से प्रत्येक मंदिर में 124 प्रतिमाएं हैं ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

4 x 124 = 496 प्रतिमाजी है ।

इसी रुचक द्वीप पर 40 शिखर हैं, जिस पर 40 दिक्कुमारिकाओं के आवास है ।

प्रभु के जन्माभिषेक प्रसंग पर जो 56 दिक्कुमारिकाएँ आती है, उनमें से 40 दिक्कुमारिकाएं इसी पर्वत पर से आती है ।

तिर्छालोक में चैत्य व प्रतिमाएं

बत्तीसे ने ओगणसाठ तिच्छार्लोकमां चैत्यनो पाठ ।
त्रण लाख एकाणुहजार, त्रणसे वींस ते बिंब जुहार ।।

क्षेत्र का नाम	**जिनालय**	**मंदिर में प्रतिमा**	**कुल प्रतिमाजी**
जंबुद्वीप	635	120	76200
धातकीखंड	1270	120	152400
इषुकार पर्वत	2	120	240
पुष्करार्ध द्वीप	1270	120	152400
इषुकार पर्वत	2	120	240
मानुषोत्तर पर्वत	4	120	480
नंदीश्वर द्वीप	52	124	6448
नंदीश्वर राजधानी	16	120	1920
कुंडलद्वीप	4	124	496
रुचकद्वीप	4	124	496
कुलयोग	**3252**		**391320**

तीनो लोक में शाश्वत चैत्य प्रतिमाएं

लोक	**जिनालय**	**प्रतिमाएँ**
ऊर्ध्वलोक	8497023	1529444760
अधोलोक	77200000	13896000000
तिर्च्छालोक	3259	391320
कुलयोग	**85700282**	**15425836080**

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सम्मेतशिखर वंदुं जिनवीश, अष्टापद वंदुं चोवीस

इस गाथा में महान तीर्थों की पंचतीर्थी के नामों का उल्लेख किया गया है ।

जिस प्रकार राणकपूर, मुछाला महावीर, नाडोल, नारलाई और वरकाणा में पांच तीर्थ, गोडवाड की पंचतीर्थी कहलाती है । उसी प्रकार शत्रुंजय आदि पांच तीर्थों की भी पंचतीर्थी है, वे मुख्य 5 तीर्थ हैं, सम्मेत-शिखर, अष्टापद, विमलाचल, गिरनार तथा आबु तीर्थ ।

सम्मेतशिखरजी तीर्थ :- झारखंड प्रांत में गिरडिह स्टे. के पास सम्मेतशिखर महातीर्थ आया हुआ है । इस तीर्थ भूमि पर इस अवसर्पिणी काल के अजितनाथ आदि 20 तीर्थंकर परमात्मा निर्वाण हुए थें, इस कारण यह 20 तीर्थंकरों की निर्वाण कल्याणक भूमि है ।

उन परमात्माओं के साथ लाखों-करोडों मुनियों की भी निर्वाणभूमि है ।

2. अष्टापद तीर्थ :- इस अवसर्पिणी काल के पहले तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु का निर्वाण अष्टापद तीर्थ पर हुआ था । 10000 मुनियों के साथ छ उपवास का तप कर महावदी 13 (मेरुतेरस) के शुभ दिन ऋषभदेव प्रभु मोक्ष में गए थे । अपने उपकारी सांसारिक पिता एवं ऋषभदेव प्रभु की याद में भरत महाराजा ने इस तीर्थ का निर्माण कराया था ।

यद्यपि इस तीर्थ पर ऋषभदेव प्रभु ही मोक्ष में पधारे थे, परंतु भरत महाराजा ने ऋषभदेव आदि 24 तीर्थंकरों की स्वदेह प्रमाण रत्नमय प्रतिमाएं स्थापित कर प्रतिष्ठित की थी ।

इस तीर्थ पर चारों दिशाओं में प्रतिमाजी है । पूर्व दिशा में पहले व दूसरे तीर्थंकर परमात्मा की,

दक्षिण दिशा में तीसरे से छट्ठे तीर्थंकर परमात्मा की,

पश्चिम दिशा में सातवें से चौदहवें तीर्थंकर परमात्मा की और

उत्तर दिशा में पंद्रहवें से 24 वें तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमाएं विद्यमान है ।

यह तीर्थ शत्रुंजय से 1 लाख 85000 गाऊ दूर तथा अयोध्या से उत्तर में 12 योजन दूर आया हुआ है ।

इस तीर्थ के आठ सीढियां होने से उसे अष्टापद तीर्थ कहते है । ये सभी सीढियाँ 1-1 योजन प्रमाण ऊंचाईवाली है ।

◆ सगर चक्रवर्ती के 60000 पुत्रों ने इस तीर्थ की रक्षा के लिए तीर्थ के चारों ओर खाई का निर्माण किया था और उसमें गंगा नदी का जल भराया था, जिससे रोषायमान होकर नागराज ने उन सभी को भस्मीभूत कर दिया था ।

◆ महासती दमयंती ने इसी तीर्थ पर रही चौबीस प्रतिमाओं के मस्तक पर तिलक बनवाकर प्रभु की भक्ति द्वारा विशिष्ट पुण्य कर्म उपार्जित किया था ।

◆ इस तीर्थ पर प्रभु की भक्ति करते हुए रावण ने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया था ।

जो मनुष्य अपनी आत्म-लब्धि से अष्टापद तीर्थ की यात्रा करता है, वह मनुष्य उसी भव में मोक्ष में जाता है । इस तीर्थ की इस महिमा को जानकर गौतमस्वामीजी ने अपनी आत्मलब्धि से इस तीर्थ की यात्रा की थी और वहां तिर्यक्‌जृंभक देव को प्रतिबोध किया था, जो बाद में वज्रस्वामी बने थे । इस तीर्थ की यात्राकर गौतस्वामी ने 1503 तापसों को प्रतिबोध कर उन्हें भागवती दीक्षा प्रदान की थी और उन्हें मोक्ष का मुसाफिर बनाया था ।

इसी तीर्थ पर गौतम स्वामीजी ने **जगचिंतामणि सूत्र** की रचना की थी ।

सिद्धाणं बुद्धाणं की अंतिम गाथा **'चत्तारि अट्ठ दस दोय वंदिया ।'** गाथा द्वारा हम इस तीर्थ को हमेशा याद करते हैं ।

3. विमलाचल :- 5 भरत आदि 15 कर्मभूमियों में शाश्वत तीर्थ यदि कोई है तो वह विमलाचल तीर्थ है । इस तीर्थ के शत्रुंजय, सिद्धाचल, कंचनगिरि, विमलगिरि आदि 99 नाम है ।

इस तीर्थ की स्पर्शना कर आज तक अनंत आत्माएं मोक्ष में गई है ।

वाणी द्वारा इस तीर्थ की संपूर्ण महिमा का गान नहीं हो सकता है ।

इस तीर्थ की स्पर्शना करनेवाली आत्मा नियमा भव्य होती है ।

दूर भवी और अभव्य आत्मा तो इस तीर्थ को अपनी नजर से भी नहीं देख पाती हैं ।

इस तीर्थ की स्पर्शना के प्रभाव से पापी व अधम आत्माओं का भी कल्याण हो गया है ।

इस पवित्र तीर्थ पर ऋषभदेव आदि 23 तीर्थंकर पधारे थें ।

ऋषभदेव प्रभु तो इस तीर्थ पर निन्यानवें पूर्व बार पधारे थे ।

इस तीर्थ का इस अवसर्पिणी काल में सबसे पहला उद्धार भरत महाराजा ने कराया था और भरत ने ही इस तीर्थ का छ'री पालक संघ निकाला था ।

चैत्री पूनम के दिन 5 करोड मुनियों के साथ पुंडरीक स्वामी,

आसो पूनम के दिन 20 करोड मुनियों के साथ पांच पांडव,

कार्तिक पूनम के दिन 20 करोड मुनियों के साथ द्राविड-वारिखिल्ल,

फागुण सुदी तेरस के दिन साढे आठ करोड मुनियों के साथ शांब-प्रद्युम्न इस तीर्थ पर मोक्ष में गए थे ।

दूर रहकर भी जो इस तीर्थ का ध्यान करता है, उस आत्मा का भी कल्याण हुए बिना नहीं रहता है ।

4. गिरनार :- इस अवसर्पिणी काल के 22 वें बालब्रह्मचारी नेमिनाथ प्रभु के दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणक गिरनार तीर्थ पर हुए थे ।

आगामी चोबीसी के सभी तीर्थंकरों का निर्वाण भी इसी तीर्थ पर होगा, इस कारण इस तीर्थ की महिमा अपरंपार है ।

5. आबुतीर्थ :- श्री आदिनाथ प्रभु के पुत्र भरत ने आबू पर्वत पर चार द्वार वाले सुवर्ण चैत्य का निर्माण कराया था । सुवर्ण चैत्य में प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ प्रभु का ध्यान करने के लिए दश करोड़ साधक तप कर रहे थें । संस्कृत भाषा में दश करोड़ की संख्या को `अर्बुद' कहते हैं, इस कारण यह पर्वत `अर्बुदाचल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । यहाँ पर की गई आराधना दश करोड़ गुणा फल देने वाली होने से यह गिरि `अर्बुदाचल' के रुप में प्रख्यात हुआ ।

शिलालेख और शास्त्रों के उल्लेखानुसार छद्मस्थ काल में श्रमण भगवान महावीर परमात्मा का अर्बुदाचल पर्वत पर विहार हुआ था। महावीर प्रभु की 10वीं पाट परंपरा में हुए श्री सुस्थिताचार्य अर्बुदाचल से अष्टापद तीर्थ की यात्रा पर गए थे।

श्री पादलिप्ताचार्य आकाशगामिनी विद्या द्वारा प्रतिदिन पाँच तीर्थों की यात्रा करते थे, उसमें एक तीर्थ के रूप में अर्बुदाचल का भी उल्लेख है।

श्री देलवाड़ा (आबू) तीर्थ

तीर्थाधिराज श्री आदीश्वर भगवान, पद्मासनस्थ श्वेत वर्ण, 1.5 मी।

तीर्थस्थल समुद्र की सतह से लगभग 1220 मीटर ऊँचे अर्बुदगिरि पर्वत की गोद में आया हुआ यह तीर्थ है।

कहा जाता है श्री भरत चक्रवर्तीजी ने यहाँ श्री आदिनाथ भगवान का मन्दिर बनवाकर चतुर्मुख प्रतिमा को प्रतिष्ठित करवाया था। जैन शास्त्रों में इसे अर्बुदाचल व अर्बुदगिरि कहते हैं। यहाँ जमाने से मुनिगण जैन मन्दिरों के दर्शनार्थ आते थे, ऐसा उल्लेख है। तदनन्तर यह भी कहा जाता है कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर ने भी अर्बुदभूमि पर पदार्पण किया था। भगवान श्री महावीर के बाद कई जैन आचार्य इस पवित्र धाम आबू पर यात्रार्थ पधारे थे व तपस्या की थी। जैसे ई. पूर्व 475 में श्री स्वयंप्रभसूरिजी, ई.पू. 236 में सुहस्तिसूरिजी, ई. प्रथम शताब्दी में श्री पादलिप्तसूरिजी, ई.सं. 203-225 में देवगुप्तसूरिजी, ई.सं. 937 में श्री उद्योतनसूरिजी, ई.सं. 1606-74 में श्री आनन्दघनजी।

श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामीजी द्वारा रचित ``बृहत् कल्प सूत्र'' में भी इस तीर्थ का उल्लेख आता है। वर्तमान में स्थित यहाँ का सब से प्राचीन मन्दिर मंत्री श्री विमलशाह द्वारा विक्रम की 11 वीं सदी में निर्मित हुआ था। इससे पूर्व के जैन मन्दिरों का पता नहीं लग रहा है। शायद कभी भूकंप में धराशायी होकर या अन्य किसी कारण से विच्छिन्न हुए हों। श्री अम्बिकादेवी की श्री विमलशाह द्वारा आराधना करने पर चम्पकवृक्ष के पास यहाँ भूगर्भ से आदिनाथ भगवान की प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो लगभग 2500 वर्ष प्राचीन बताई जाती है, इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि यहाँ प्राचीन काल से जैन मन्दिर थे।

वि.सं. 1088 में श्री विमलशाह ने 18 करोड़ 53 लाख रु. खर्च कर के मन्दिर निर्मित करवाया था व आचार्य श्री धर्मघोषसूरिजी के सुहस्ते प्रतिष्ठा करवायी थी, इस मन्दिर को विमलवसही कहते हैं। इसका पुनरुद्धार इनके ही वंशज मंत्री श्री पृथ्वीपाल द्वारा वि.सं. 1204-1206 में करवाने का उल्लेख है। विक्रम सं. 1368 में अलाउद्दीन खिलजी द्वारा मन्दिर को क्षति पहुँची, तब मंडोर निवासी सेठ गोसन व भीमाना बंधुओं के पुत्र धनसिंह व महणसिंह एवं उनके पुत्रों ने पुनः जीर्णोद्धार करवाकर विक्रम सं. 1378 ज्येष्ठ कृष्णा 9 के दिन श्री ज्ञानचन्द्रसूरिजी के सुहस्ते प्रतिष्ठा करवाई थी।

विक्रम सं. 1297 चैत्र कृष्णा 3 के दिन वस्तुपाल तेजपाल ने 13 करोड़ 53 लाख रुपये खर्च करके विमलवसही के सामने ही मन्दिर बनवाकर नागेन्द्रगच्छाचार्य श्री विजयसेनसूरिजी के सुहस्ते प्रतिष्ठा करवाई थी। इस मन्दिर को लूणिगवसहि कहते हैं। इस मन्दिर को भी विक्रम सं. 1368 में अल्लाउद्दीन खिलजी द्वारा क्षति पहुँची थी, जिसे तुरन्त ही 10 वर्ष बाद चन्द्रसिंह के पुत्र श्रेष्ठी श्री पेथड़शाह ने जीर्णोद्धार करवाया। इनके अलावा विक्रम सं. 1525 में अहमदाबाद के सुलतान मेहमूद बेगड़ा के मंत्री सुन्दर और गदा ने पीतलहर मन्दिर का निर्माण करवाया था। एक ओर खरतर वसही मन्दिर है, जो कारीगरों के मन्दिर के नाम से जाना जाता है।

यह एक प्राचीन व महत्त्वपूर्ण तीर्थ माना गया है। जैसे भरत चक्रवर्ती द्वारा श्री आदिनाथ भगवान का यहाँ मन्दिर बनवाना, भगवान श्री महावीर का इस भूमि में पदार्पण होना, अनेक मुनियों की तपोभूमि रहना।

शंखेश्वर केसरियो सार...

भारतभर में विद्यमान जिन-प्रतिमाओं में प्रायः सबसे अधिक प्राचीन श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, जो करोडों देवताओं और मनुष्यों के द्वारा पूजी गई है। जिसके दर्शन-वंदन-पूजन और भक्ति कर हजारों-लाखों आत्माओं ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया हैं। प्राप्त सम्यग्दर्शन को निर्मल बनाया है और अपने चारित्र के अंतरायों को तुडवाया है।

शंखेश्वर गांव में सात फणों से अलंकृत श्वेतवर्णीय अत्यंत ही मनोहर यह प्रतिमाजी 71´´ ऊंचे है। दर्शक के मन को प्रसन्नता से भर देनेवाले है।

अनेक पूर्वाचार्य महर्षियों ने अपने ग्रंथों के मंगलाचरण के रुप में श्री शंखेश्वर पार्श्वप्रभु को याद किया है ।

अजोड महिमावंत इस प्रतिमा का इतिहास भी रोमांचित कर देने-वाला है ।

जंबुद्वीप का यही भरत क्षेत्र !

गत उत्सर्पिणी काल में हुए नौंवें तीर्थंकर परमात्मा दामोदर प्रभु का शासन !

एक बार अष्ट महाप्रातिहार्य और चौतीस अतिशयों से युक्त दामोदर परमात्मा पृथ्वीतल को पावन करते हुए एक नगर में पधारे ।

प्रभु के आगमन के साथ ही चारों निकाय के असंख्य देवताओं का आगमन हुआ...रत्न-सुवर्ण और रजतमय गढ से युक्त समवसरण की रचना हुई । प्रभु की देशना सुनने के लिए हजारों नर-नारी और पशु-पंखी भी समवसरण में पधारे ।

प्रभु ने जगत् के जीवों के उद्धार के लिए धर्म देशना दी ! उस देशना को सुनकर हजारों आत्माओं में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश पैदा हुआ...मिथ्यात्व का अंधकार दूर हुआ ।

उसी समय मानव-पर्षदा में रहे अषाढी श्रावक ने प्रभु को पूछा, ``मुझे यह संसार अत्यंत ही भयंकर लग रहा है । हे प्रभो ! मेरी आत्मा इस भव बंधन से कब मुक्त बनेगी ?''

असाढी श्रावक के इस प्रश्न को सुनकर दामोदर परमात्मा ने कहा, ``हे भाग्यशाली ! आगामी चोबीसी के तेबीसवें पार्श्वनाथ प्रभु के गणधर बनकर उसी भव में तुम मोक्ष में जाओगे ।''

प्रभु के मुख से अपने भावी मोक्ष को जानकर असाढी श्रावक का मन प्रसन्नता से भर आया । उसके अन्तर्मन में पार्श्व प्रभु का नाम गुंजने लगा । उसने उसी दिन से पार्श्व प्रभु के नाम स्मरण द्वारा प्रभु की नाम-भक्ति चालू की...उसके बाद उसने पार्श्वप्रभु की प्रतिमा भरवाई और वह उसकी नियमित पूजा-भक्ति करने लगा ।

उसने जीवन पर्यंत पार्श्वप्रभु की खूब भक्ति की । असाढी श्रावक

मरकर सौधर्म देवलोक में पैदा हुआ । अपने अवधिज्ञान द्वारा पूर्व भव में निर्मित पार्श्वप्रभु की प्रतिमा को देखा । वह देव उस प्रतिमा को देवलोक में ले गया । उस देवलोक में भी असंख्य वर्षों तक उस प्रतिमा की खूब पूजा भक्ति व अर्चना की ।

सौधर्म इन्द्र ने भी दीर्घकाल तक उसकी पूजा की...फिर सौधर्म इन्द्र ने वह प्रतिमा ज्योतिष देवलोक के सूर्यदेव को प्रदान की । उसने भी दीर्घकाल तक उसकी पूजा भक्ति की । उसके बाद चंद्र विमान में, फिर सौधर्म, ईशान व प्राणत देवलोक में दीर्घकाल तक पूजी गई । उसके बाद लवण समुद्र के अधिष्ठायक वरुणदेव नागकुमार तथा भवनपति देवों ने पूजा भक्ति की ।

चंद्रप्रभ स्वामी के समवसरण में सौधर्म इन्द्र ने अपनी मुक्ति के बारे में पूछा ।

प्रभुने कहा, `तुम्हारी मुक्ति पार्श्वनाथ प्रभु के शासन में होगी ।'

पार्श्वप्रभु के शासन में अपनी मुक्ति को जान उस इन्द्र ने भी दीर्घकाल तक उसी प्रतिमा की पूजा भक्ति की ।

उसके बाद नागराज धरणेन्द्र ने किसी ज्ञानी महात्मा के पास इस प्रतिमा के माहात्म्य को जान, उस प्रतिमा को अपने आवास में ले आया और पूजा-भक्ति करने लगा ।

एक बार, सेनपल्ली गांव के पास कृष्ण वासुदेव और जरासंध का भयंकर युद्ध हुआ । जरासंध के पक्ष में अन्य सभी राजा थे जब कि कृष्ण के पक्ष में 56 कोटी यादव थे ।

इस युद्ध में कृष्ण सैन्य के पराक्रम को देख जरासंध ने कृष्ण के सैन्य पर जरा विद्या का प्रयोग किया । उस विद्या के प्रयोग से कृष्ण का सैन्य व्याधि व जरावस्था से पीडित होकर मूर्च्छितसा हो गया ।

मात्र कृष्ण बलदेव व नेमिकुमार पर इस विद्या का प्रभाव नहीं पडा ।

अपने सैन्य की इस दुर्दशा को देखकर निराश हुए कृष्ण ने नेमिकुमार को जरा विद्या की मुक्ति का उपाय पूछा ।

नेमिकुमार ने कहा, ``नागराज धरणेन्द्र के पास रही प्रतिमा के न्हवणजल से तुम्हारे सैन्य की मूर्च्छा दूर हो जाएगी ।''

श्री कृष्ण ने अट्ठम तप किया। सैन्य के रक्षण की जवाबदारी नेमिकुमार ने ली।

अट्ठम के प्रभाव से धरणेन्द्र ने पार्श्वप्रभु की प्रतिमा कृष्ण को प्रदान की। श्री कृष्ण खुश हो गए। पार्श्वप्रभु के न्हवणजल के छंटकाव से कृष्ण का सैन्य पुनः जागृत हो गया। जरासंध और कृष्ण के बीच पुनः युद्ध हुआ। उस युद्ध में कृष्ण की जय हुई।

युद्ध में विजय की प्राप्ति के प्रतीक रुप कृष्ण ने शंख बजाया। वहाँ पर शंखपुर नगर बसाया गया। उस गांव में प्रभुजी का भव्य जिनालय तैयार कर उसमें प्रभुजी को बिराजमान किया गया।

उस गांव के नाम से वे प्रभुजी शंखेश्वर पार्श्वनाथ के नाम से प्रख्यात हुए। लगभग 86,500 वर्ष से यह प्रतिमा यहाँ पूजी जा रही है।

12वीं सदी में सिद्धराज के मंत्री सज्जन शेठ ने पू.आ. श्री देवचन्द्रसूरिजी म. के उपदेश से इस तीर्थ का जीर्णोद्धार कर नया मंदिर बनवाकर वि.सं. 1155 में शंखेश्वर पार्श्व प्रभु की प्रतिष्ठा कराई।

उसके बाद पू.आ. श्री वर्धमानसूरीश्वरजी म. के उपदेश को सुनकर गुजरात के तत्कालीन मंत्री वस्तुपाल तेजपाल ने वि.सं. 1286 में इस तीर्थ का जीर्णोद्धार कराया। सभी देहरियों पर सुवर्ण के कलश चढाये।

जगडू चरित्र में राजा दुर्जनशल्य द्वारा इस मंदिर के जीर्णोद्धार का वर्णन आता है। पूर्णिमा गच्छ के आचार्य श्री परमदेवसूरिजी म. शंखेश्वर पार्श्वप्रभु के भक्त थे। उन्होंने वर्धमान तप की 100 ओली भी की। उन्होंने संघ में विघ्न करनेवाले 7 यक्षों को भी प्रतिबोध दिया था।

◆ दुर्जनशल्य राजा को कोढ रोग हो गया। उसने आचार्य भगवंत को रोग निवारण का उपाय पूछा। आचार्य भगवंत की सूचना से राजा ने शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की आराधना, पूजा-भक्ति की। इसके फल स्वरुप उसका कोढ रोग मिट गया। पूज्य आचार्य भगवंत के उपदेश से उस राजा ने उस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया।

14वीं सदी में हुए मुसलमानों के भयंकर आक्रमणों के फल स्वरुप यह मंदिर भी नष्ट हो गया। परंतु संघ के अग्रणियों ने यह प्रतिमा भूमि में छिपा दी।

श्री विजयसेनसूरिजी म. शंखेश्वर पधारे । किंवदंती के अनुसार उन्हें ज्ञात हुआ कि एक गाय पास में जंगल में चरने जाती हैं, परंतु एक स्थान पर उसका दूध स्वतः झर जाता है । आखिर उस स्थान की खुदाई करने पर शंखेश्वर पार्श्वप्रभु की यह प्रतिमा प्रगट हुई ।

उस गांव में पुनः 52 देरी युक्त नूतन मंदिर का निर्माण हुआ और उसमें विजयसेनसूरिजी म. के वरद हस्तों से शंखेश्वर प्रभु की प्रतिष्ठा की गई ।

कुछ वर्षों बाद पुनः मुसलमानों का हमला हुआ और यह मंदिर ध्वस्त हो गया । उस समय भी उस मूर्ति को भूमि में सुरक्षित छिपा दी गई ।

अनुमान है कि वि.सं. 1760 में पुनः इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ और विजयप्रभसूरिजी के वरद हस्तों से प्रतिष्ठा की गई ।

वि.सं. 1976 माघ शुक्ला पंचमी के दिन पांच प्रतिमाओं को छोड अन्य सभी देरियों की प्रतिष्ठा की गई । यहां पर लगे शिला लेखों में सबसे प्राचीन वि.सं. 1114 का व नवीन लेख वि.सं. 1976 का है ।

श्री शंखेश्वर पार्श्वप्रभु की प्रतिमा अत्यंत ही चमत्कारी व प्रभावशाली है ।

चमत्कारी घटनाएँ

◆ 1) वि.सं. 1750 में उपाध्याय श्री उदयरत्नजी म. खेडा (गुज.) से संघ सहित शंखेश्वर पधारे । उस समय यह मंदिर नहीं था । शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा किसी ठाकोर के कब्जे में थी । वह ठाकुर एक गिन्नी लेकर प्रभु के दर्शन करने देता था ।

देरी हो जाने से पूजारी ने द्वार बंद कर दिया था । पू. उदयरत्नजी म. ने प्रतिज्ञा की, `जब तक प्रभु के दर्शन नहीं होंगे, तब तक अन्न जल नहीं लूंगा ।' संघ ने भी वैसा ही किया ।

वे प्रभु-भक्ति में जुड गए और गाने लगे ।

`पास शंखेश्वरा सार कर सेवका,
देव का ! एवडी वार मांगे ?
कोडी कर जोडी, दरबार आगे खडा,
ठाकुरा चाकुरा मान मांगे !'

सच्चे ह्रदय से की गई इस प्रार्थना के फल स्वरुप अधिष्ठायक देव प्रसन्न हो गए और उन्होंने उसी समय द्वारा खोल दिए। संघ ने प्रभु के दर्शन किए।

◆ 2) वि.सं. 1996 में चाणस्मा गांव में आचार्य श्री मतिसागरसूरिजी का चातुर्मास था। उनका उपदेश सुनने के लिए जैन-अजैन सभी लोग आते थें। एक बार उन्होंने प्रवचन में शंखेश्वर प्रभु की महिमा का वर्णन किया। उस वर्णन को सुन वहाँ के जमींदार के मन में शंखेश्वर प्रभु की श्रद्धा दृढ हो गई। एक बार उसके घर कोई महेमान आए, जो आंख के मोतिया-बिंदु से परेशान थे। जमीदार ने उन्हें शंखेश्वर चलने के लिए प्रेरणा दी। वे दोनों शंखेश्वर पहुँच गए। भावपूर्वक प्रभु के दर्शन कर उन्होंने प्रभु का न्हवण जल अपनी आँखों पर लगाया और आश्चर्य हुआ-आगंतुक महेमान का मोतिया बिंदु उतर गया...उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लगा।

ऐसी एक नहीं, सैंकडों चमत्कारी घटनाएँ आए दिन बनती रहती है।

प्रभु की महिमा अपरंपार है। बस, अटूट श्रद्धा और विश्वास चाहिये।

श्री केशरियाजी तीर्थ

तीर्थाधिराज :- श्री आदिनाथ भगवान, अर्द्ध पद्मासनस्थ, श्याम वर्ण, लगभग 105 से.मी.।

तीर्थस्थल :- ऋषभदेव गाँव में पहाड़ों की ओट में।

प्राचीनता :- भव्य, चमत्कारी, भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाली इस प्रतिमा की प्राचीनता व इतिहास के बारे में अनेक मान्यताएँ है। उनमें यह भी एक है कि यह अलौकिक प्रतिमा बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी भगवान के समय प्रतिवासुदेव लंकापति श्रीरावण के यहाँ पूजित थी। पश्चात् मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचनद्रजी अयोध्या लेकर आये। बाद में उज्जैन में रही। पश्चात् दैविक शक्ति से वटप्रदनगर (बड़ोदा) के बाहर वटवृक्ष के नीचे प्रकट हुई। (जहाँ अभी भी प्रभु के चरण स्थापित हैं) कुछ वर्षों तक वटपद्रनगर में पूजी जाने के बाद पुनः दैविकशक्ति द्वारा यहाँ से लगभग एक कि.मी. दूर एक वृक्ष के नीचे प्रकट हुई, जहाँ पर भी प्रभु के चरण स्थापित हैं व वार्षिक मेले का विराट् जुलूस वहीं पर विसर्जित होता है।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

इस मन्दिर के बारे में कहा जाता है कि मन्दिर प्रथम ईंटों का बना व बाद में पत्थरों का बना था । सं. 1431 में जीर्णोद्धार होने के प्रमाण मिलते हैं । उसके पश्चात् भी जीर्णोद्धार होने के उल्लेख हैं । समय-समय पर अनेक यात्री संघ व आचार्यगण यहाँ दर्शनार्थ आने के उल्लेख हैं ।

विशिष्टता :- यह मेवाड़ राज्य में जैनों का एक मुख्य तीर्थ-स्थान है । मेवाड़ के राणा हरदम प्रभु के अनुयायी रहे व श्रद्धा-भक्ति से प्रभु के चरणों में दर्शनार्थ आते थे । राणा फतेहसिंहजी ने प्रभु के लिए स्वर्णमयी रत्नों जड़ित अमूल्य आँगी भी भेंट की थी । अभी भी यह आँगी नकरे से चढ़ायी जाती है । यहाँ पर जैनेतर भी श्रद्धा व भक्ति पूर्वक हमेशा आते रहते हैं । भील समुदाय में प्रभु काला बाबा के नाम से प्रचलित है ।

यहाँ नयी-नयी चमत्कारिक घटनाओं का अनेक भक्तों द्वारा वर्णन किया जाता है । यहाँ पर केशर चढ़ाने की मानता सदियों से चली आ रही है व हमेशा अत्यधिक मात्रा में केशर चढ़ती है । कभी-कभी तो केशर का इतना विलेपन हो जाता है कि प्रभु का वर्ण केशर-सा प्रतीत होने लगता है । आज तक मणोबद्ध केशर चढ़ गयी । इसलिए प्रभु को केशरियानाथ कहते हैं । प्रभु को केशरियालाल, धुलेवा धणी आदि भी कहते हैं ।

प्रतिवर्ष चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिवस मेला भरता है । इस अवसर पर हजारों नर-नारी इकट्ठे होते हैं । भील लोग अत्यन्त भक्ति भाव से नाचते झूमते हैं ।

यहाँ की देदीप्यमान आरती अति ही दर्शनीय है । उस समय हर भक्त तल्लीन होकर अपने आप को प्रभु में खो देता है ।

तारंगे श्री अजित जुहार

तीर्थाधिराज :- श्री अजितनाथ भगवान, पद्मासनस्थ, श्वेत वर्ण लगभग 2.75 मी. (6 फुट) ।

तीर्थ स्थल :- तारंगा हिल रेलवे स्टेशन से लगभग 5 कि.मी. दूर पहाड़ पर ।

प्राचीनता :- जैन ग्रंथों में इसका प्राचीन नाम तारउर तारावरनगर, तारणगिरि, तारणगढ़ आदि दिया है । वीर नि. सं. 1710 (विक्रम संवत्

1241) में आचार्य श्री सोमप्रभसूरिजी ने **'कुमार पाल प्रतिबोध'** नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें वीर नि. की छठी शताब्दी (विक्रम की पहली शताब्दी ।) मे श्री बप्पुटाचार्य के उपदेश से यहाँ के राजा वत्सराय ने जैन धर्म अंगीकार करके शासनाधिष्ठात्री श्री सिद्धायिकादेवी का मन्दिर यहाँ बनवाने का उल्लेख है, परन्तु बीच के इतिहास का उल्लेख नहीं है । हो सकता है कालक्रम से इस बीच यह तीर्थ विच्छेद रहा हो । वर्तमान श्वेताम्बर मन्दिर जैनाचार्य शासन प्रभावक श्री हेमचंद्रसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित गुर्जर नरेश श्री कुमारपाल राजा द्वारा वीर नि.सं. 1691 (विक्रम सं. 1221) में निर्मित है । वीर नि. सं. 1753 (विक्रम संवत् 1284) के फाल्गुन शुक्ला 2 को संघपति श्री वस्तुपाल द्वारा श्री नागेन्द्र गच्छाचार्य श्री विजयसेनसूरिजी के हाथों इस जिनालय में दो आलों में श्री आदिनाथ प्रभु की दो प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेख अब भी इस मन्दिर में सुरक्षित है । ये दोनों प्रतिमाएँ तो विद्यमान नहीं हैं, पर शिलालेख वाले दोनों आसन मन्दिर में मौजूद हैं । वीर नि.सं. 1948 (विक्रम संवत् 1479) में ईडर निवासी श्री गोविन्द श्रेष्ठी द्वारा आचार्य श्री सोमसुन्दरसूरिजी के सुहस्ते इस तीर्थ का उद्धार किये जाने का उल्लेख है । अंतिम उद्धार वीर नि. सं. 2111 (विक्रम संवत 1642) में आचार्य श्री विजयसेनसूरिजी के हाथों करवाये जाने के लेख हैं । इनके अतिरिक्त तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दी में इस मन्दिर में और जिनबिम्ब प्रतिष्ठित करवाने व गोखले आदि करवाने के उल्लेख भी मिलते हैं । इसलिए इन सबसे यह सिद्ध होता है कि यह तीर्थ लगभग वीर निर्वाण की छट्ठी शताब्दी (विक्रम की पहली शताब्दी के पूर्व) का है ।

अंतरिक्ख वरकाणो पास

शिरपूर (महाराष्ट्र) में भोंयरे में श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ प्रभु बिराजमान है । वेलू से निर्मित यह श्यामवर्ण की प्रतिमा अर्ध पद्मासन में जमीन से कुछ ऊपर है । यह प्रतिमा 36 इंच ऊंची (फणे सहित 42 इंच) तथा 30 इंच चोडी है ।

रात्रि प्रतिक्रमण में **'सकल तीर्थ वंदना'** के द्वारा हम इस तीर्थ व तीर्थाधिपति को नित्य वंदन करते है ।

एक बार रावण के बहनोई तथा पाताल लंका कै अधिपति खरदूषण किसी प्रयोजन से दूर देश में गए । खरदूषण की यह प्रतिज्ञा थी कि वह प्रभु

पूजा करके ही भोजन करता था । इस यात्रा दरम्यान खरदूषण जिन प्रतिमा को अपने साथ लाना भूल गए थे । अपने नियम के पालन के लिए उसने बालू व गोबर से एक प्रतिमा का निर्माण किया और नवकार मंत्र से उसे प्रतिष्ठित कर पूजा करके ही उसने भोजन किया ।

तत्पश्चात् उसने वह प्रतिमा किसी कुएँ में विसर्जित की । कुएँ के अधिष्ठाता देव ने वह प्रतिमा ले ली और उसे वज्रमय बना दी ।

वराढदेश के एलचपूर नगर के राजा श्रीपाल कोढ रोग से पीडित थे । अनेक उपचार करने पर भी उसका रोग नहीं मिटा । एक बार वह राजा कहीं जा रहा था, उसे अत्यंत ही प्यास लगी ! उसने उसी कुएँ का जल पिया और अपनी छावनी में गया । रात्रि में उसे शांति से नींद आ गई ।

कुएँ के जल का प्रभाव जानकर उसने उस जल से स्नान किया । इसके फलस्वरुप उसका देह, रोगमुक्त हो गया ।

श्रीपाल राजा ने आराधना कर कुएँ के अधिष्ठायक देव को प्रसन्न किया । देव द्वारा राजा को ख्याल आया कि यह सारा चमत्कार पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा का है । राजा ने उस प्रतिमा की मांग की ।

राजा के भक्तिपूर्ण आग्रह को देख देव ने वह प्रतिमा देना स्वीकार किया ।

देव के संकेतानुसार ज्वार के सांठों की पालखी को सूत के धागे से बांधकर कुएँ में उतारी । देव ने वह प्रतिमा पालखी में रखी । राजा ने वह प्रतिमा बाहर निकाली ।

उसके बाद ज्वार के सांठों से बने रथ में प्रतिमा स्थापित कर, उस रथ में 7 दिन के बछडे को जोडा गया । वह रथ आगे बढने लगा ।

कुछ दूर जाने के बादा राजा ने शंका से पीछे मुडकर देखा । बस, वह प्रतिमा वहीं स्थिर हो गई । अनेक प्रयत्न करने पर भी वह प्रतिमा वहां से हटी नहीं । वट वृक्ष के नीचे भूमि से 7 हाथ ऊपर आकाश में अधर रहने से यह प्रतिमाजी अंतरिक्ष पार्श्वनाथ के नाम से प्रख्यात हो गई ।

वि.सं. 1142 महा सुदी 5 के दिन नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी म. के वरद हस्तों से संघ निर्मित इस मंदिर में इस प्रतिमाजी को प्रतिष्ठित किया गया । श्रीपाल राजा ने रत्नमय आभूषणों से प्रभुजी की पूजा कर आरती उतारी और वहाँ श्रीपुर नगर बसाया ।

पहले इस प्रतिमाजी के नीचे से एक घुडसवार प्रसार हो सकता था, अब मात्र अंग लूंछन प्रसार हो, उतनी यह प्रतिमा आकाश में अद्धर है ।

चमत्कार :- श्री भाव विजयजी गणी को आंख का भयंकर रोग लागू पडा था । विजयदेवसूरिजी की सूचना से उन्होंने पद्मावती मंत्र की आराधना की । पद्मावती देवी ने अंतरीक्ष पार्श्वनाथ प्रभु का इतिहास व महत्त्व समझाया ।

पू. भावविजयजी गणि संघ सहित अंतरीक्षजी पधारें ।

उन्होंने प्रभु की भावपूर्वक भक्ति की । उस भक्ति के प्रभाव से उनका अंधत्व दूर हो गया । उनके नेत्रपटल खुल गए । यह रोमांचक घटना वि.सं. 1715 में बनी । इस मंदिर का पुनः जीर्णोद्धार हुआ और 1717 चैत्र सुद 5 को पुनः प्रतिष्ठा हुई ।

वरकाणा पार्श्वनाथ तीर्थ

अंतरिक्ष वरकाणो पास, जीरावलो ने थंभण पास ।।

सकल तीर्थ स्तोत्र में अनेक चमत्कारिक तीर्थों की वन्दना की गई है । इन तीर्थों में अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, वरकाणा पार्श्वनाथ, जीरावला पार्श्वनाथ तथा स्तम्भन पार्श्वनाथ को सर्वमान्य एवं उत्कृष्ट तीर्थ बताये गये है ।

17 वीं शताब्दी में समयसुन्दरजी उपाध्याय ने अपनी तीर्थमाला में वरकाणा पार्श्वनाथ का बहुत महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है । पंडित शीलविजयजी ने अपनी तीर्थमाला में वरकाणा पार्श्वनाथ की यात्रा कर अपने जन्म को धन्य माना है ।

संवत् 1618 विक्रम की पौष वदी सातम मंगलवार को तपागच्छाचार्य जगत् गुरु हीरविजयसूरि ने संघ समेत अहमदाबाद से इस तीर्थ एवं पंचतीर्थी की यात्रा की थी, उन्होंने यहाँ पौष दसमी का अट्ठम तप अनुष्ठान करवाया था ।

जगद्गुरु हीरविजयसूरिजी का महत्त्वपूर्ण समय वरकाणा एवं इसके पास-पड़ोस एवं नारलाई में गुजरा । संवत् 1607 में नारलाई में इन्हें पंडित की पदवी प्राप्त हुई और यहीं संवत् 1608 में इन्हें वाचक उपाध्याय की पदवी प्राप्त हुई ।

वरकाणा का पार्श्वनाथ मंदिर अपनी शिल्पकला, वास्तुकला एवं कोरणी के लिए प्रसिद्ध है । पर इसके निर्माण के सन् संवत का शिलालेखीय

प्रमाण नहीं मिलता है । जैन शास्त्रीय परम्परा और पट्टावलियों से वह पता लगता है कि इस मंदिर की प्रतिष्ठा संवत् 515 में हुई थी । एक जनश्रुति यह भी है कि इस मंदिर का निर्माण हरिभद्रसूरि के उपदेश से हुआ था । आचार्य हरिभद्रसूरि का मेवाड़ एवम् मेवाड़ द्वारा शासित इस इलाके पर बहुत उपकार रहा है । गच्छोत्पत्ति प्रकरण के अनुसार हरिभद्रसूरिजी का स्वर्गगमन संवत् 585 में हुआ । उनके 1444 प्रकरणों की रचना के आधार पर ही राणकपुर के त्रैलोक्यीय दीपक मंदिर में 1444 खम्भे बनाये गये है ।

वरकाणा का यह मंदिर आज किले-नुमा दिखायी देता है । इसे यह रुप महाराजा कुम्भा के समय में प्राप्त हुआ । मेवाड़ के महाराणाओं के कई लेख, ताम्रपट्ट व परवाने मन्दिर की पेढ़ी में सुरक्षित हैं । मंदिर जी के पूर्व उत्तरी दरवाजे व कोट महाराणा कुम्भा के समय में बने थे । उस समय की सामयिक आवश्यकतानुसार मन्दिरों को किले-नुमा बना दिया ।

श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ-जीरावला

जीरावला तीर्थमंडन श्री जीरावला पार्श्वनाथ की प्रतिमा श्वेतवर्णीय वेलु से निर्मित है । ये प्रतिमा जी 11`` ऊँचे व 14´´ चौड़े हैं । मंदिर में मूलनायक के रुप में जीरावला पार्श्वनाथ की प्रतिमा है । पहले मूलनायक प्रभु के बाई ओर भमती में गोखले में जीरावला पार्श्वनाथ की प्रतिमा थी ।

प्राचीन ग्रंथानुसार जीरावला एक समृद्ध नगर था । वर्तमान में वरमाण के नाम से प्रख्यात प्राचीन ब्रह्माण गाँव की एक वृद्धा की गाय सेहीली नदी के तट पर देवी की गुफा में जाती और वहीं पर उसका दूध झर जाता था । वृद्धा ने यह बात धांधल सेठ को कही । कुतूहलवश वे सेठ नवकार गिनकर उसी गुफा में सो गए । रात्रि में अधिष्ठायक देव ने स्वप्न में उस भूमि के नीचे मनोहर जिनबिंब का संकेत दिया ।

दूसरे दिन प्रतिमाजी के प्रगटीकरण के लिए संघ इकट्ठा हुआ । इधर जीरावला के लोग भी आ गए । जमीन में से पार्श्वनाथ प्रभु की मनोहर मूर्ति प्रगट हुई, सभी लोग खुश हुए ।

ब्रह्माण व जीरापल्ली के दोनों संघ मूर्ति को अपने-अपने नगर में ले जाने के लिए आग्रह करने लगे । इस विवाद का अंत लाने के लिए दोनों गाँवों के एक-एक बैल को बैलगाड़ी में जोड़कर उसमें प्रभुजी विराजमान किए गए । वह बैलगाड़ी जीरावला की ओर आगे बढ़ी, परिणामस्वरुप वहाँ वीर प्रभु के

जिनालय में मूलनायक के रुप में स्थापित किये गए ।

परमात्मा का प्रगटीकरण सं. 1109 में हुआ । धांधल श्रेष्ठी ने नूतन मंदिर बनवाकर सं. 1191 में अजितदेवसूरिजी के वरद हस्तों से प्रभुजी को गादीनशीन किया ।

सं. 1369 में अल्लाउद्दीन ने कानड़देव को मारकर जालोर पर विजय प्राप्त की । इस युद्ध में इस तीर्थ को भी नुकसान पहुँचा । ये प्रतिमाजी खंडित हो गए, उनके स्थान पर नए प्रतिमाजी स्थापित किए गए ।

प्रतिमा खंडित करनेवालों को तत्काल फल मिला । जालोर के सूबा को भयंकर उपद्रव हुआ । दीवान की सलाह से सूबा ने आकर इस तीर्थ में मस्तक मुंडाया...उसके बाद वह उपद्रव मुक्त बना ।

मुस्लिम आक्रमणों से बचने के लिए श्री संघ ने मूलनायक के स्थान में परिवर्तन किया । गर्भगृह के बाहर बाई ओर दीवाल में जीरावल्ला पार्श्वनाथ व दादा पार्श्वनाथ को गोखले में स्थापित किया गया ।

इस मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा वि.सं. 2020 में आचार्य श्री हिमाचलसूरिजी म. ने की थी । इस मंदिर का पुनः उद्धार हुआ । इसकी प्रतिष्ठा माघ शुक्ला छठ वि.सं. 2073 में हुई ।

इस तीर्थ के अनेक चमत्कार देखने-सुनने को मिलते है ।

चमत्कार :- चौदहवीं शताब्दी का समय था । पू.आ. श्री मेरुप्रभसूरिजी म. विहार करते हुए इस तीर्थ की ओर आ रहे थे । विकट जंगल में सूरिदेव मार्ग भूल गए । अनेक प्रयत्नों के बाद भी मार्ग का पता नहीं चला । जीरावला पार्श्वनाथ के दर्शन के लिए सूरिदेव बेचैन हो गए । आखिर उन्होंने प्रभु के दर्शन न हो तब तक आहार पानी का त्याग कर अनशन कर लिया । अभिग्रह के प्रभाव से निर्जन जंगल में अचानक एक घुड़सवार उपस्थित हुआ और उसने आचार्य भगवंत को जीरापल्ली तक सुरक्षित पहुँचा दिया । उसके बाद वह घुड़सवार अदृश्य हो गया ।

श्री स्तंभन पार्श्वनाथ-खंभात तीर्थ

तीर्थाधिराज :- श्री स्तंभनपार्श्वनाथ भगवान, नील वर्ण, पद्मासनस्थ, 23 सें मी. ।

तीर्थ स्थल :- खम्भात शहर के खारवाड़ा मुहल्ले में ।

प्राचीनता :- इसका प्राचीन नाम त्रंबावती नगरी था । जैन शास्त्रानुसार इस प्रभाविक प्रभु प्रतिमा का इतिहास बहुत पुराना है । बीसवें तीर्थंकर के काल से लेकर अंतिम तीर्थंकर के काल तक यहाँ अनेक चमत्कारिक घटनाएँ घटी है । तत्पश्चात् वर्षों तक प्रतिमा लुप्त रही । विक्रम सं. 1111 में नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी ने दैविक चेतना पाकर सेड़ी नदी के तट पर भक्तिभाव पूर्वक **'जयतिहुअण स्तोत्र'** की रचना की, जिससे अधिष्ठायक देव प्रसन्न हुए व यह अलौकिक चमत्कारी प्रतिमा वहीं पर भूगर्भ से अनेक भक्तगणों के सम्मुख पुनः प्रकट हुई । वर्तमान मन्दिर में स्थित एक शिला पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार विक्रम सं. 1165 में मोढ़वंशीय बेला श्रेष्ठी की धर्मपत्नी बाई बीड़दा ने श्री स्तंभन पार्श्वनाथ भगवान के मन्दिर का निर्माण करवाया था । विक्रम संवत् 1360 के आसपास श्री संघ द्वारा पुनः भव्य मन्दिर बनवाकर उत्साहपूर्वक प्रतिमाजी को प्रतिष्ठित करवाने का उल्लेख है ।

विशिष्टता :- कहा जाता है कि इसी प्रतिमा के न्हवन जल से श्री अभयदेवसूरिजी का देह कोढ रोग से मुक्त हुआ था । यहाँ का इतिहास गौरवशाली और प्राचीन है । कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य ने विक्रम सं. 1150 में यहीं पर दीक्षा ग्रहण कर शिक्षा प्रारम्भ की थी । कहा जाता है कि उस समय यहाँ अनेक करोड़पति श्रावकों के घर थे, जिन्होंने सैकड़ों मन्दिरों का निर्माण करवाया था । राजा श्री कुमारपाल के मंत्री श्री उदयन भी यहीं के थे, जिन्होंने उदयनवसही नामक मन्दिर का निर्माण करवाया था ।

विहरमान वंदुं जिन वीश

अनंत उपकारी तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने चारों निक्षेपों के द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते है ।

परमात्मा का नाम 'नाम निक्षेप' कहलाता है प्रभु के नाम स्मरण से भी पुण्य का बंध और पाप का क्षय होता है ।

प्रभु की प्रतिमा को स्थापना निक्षेप कहते है स्थापना रुप में रही प्रतिमा की पूजा-भक्ति करने से भी विशिष्ट पुण्य का बंध और पाप का क्षय होता है ।

भूत-काल में हुए तीर्थंकर तथा तीर्थंकर नामकर्म निकाचित की हुई आत्मा, जो देवगति आदि में हो, वे द्रव्य तीर्थंकर कहलाते हैं, उनकी भक्ति से भी पाप का क्षय व पुण्य का बंध होता है ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद तीर्थंकर नामकर्म के उदयवाले, चतुर्विध संघ रुप शासन की स्थापना करनेवाले, पृथ्वीतल पर विचरण कर समवसरण में बैठकर धर्मदेशना द्वारा हजारों भव्यात्माओं को धर्मबोध देनेवाले भाव तीर्थंकर कहलाते है ।

भरत क्षेत्र में रहे हम नाम व स्थापना निक्षेप द्वारा तो प्रभु की भक्ति कर सकते है ।

यहां साक्षात् जिनेश्वर परमात्मा का विरह होने से हम जिनेश्वर परमात्मा की साक्षात् भक्ति तो नहीं कर सकते है ।

जिनेश्वर भगवंत की सदा काल साक्षात् भक्ति करने का सौभाग्य महाविदेह क्षेत्र में पैदा होने वाले मनुष्यों को प्राप्त है । वे जिनेश्वर परमात्मा के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं, उनकी धर्म देशना का श्रवण कर सकते हैं, उनकी भक्ति कर सकते हैं ।

पांच महाविदेह क्षेत्र में जघन्य से 20 और उत्कृष्ट से 160 तीर्थंकर होते हैं ।

एक महाविदेह के 32 विजय हैं, 5 महाविदेह के कुल 160 विजय हैं ।

ढाई द्वीप में आए 5 भरत और 5 ऐरावत में काल की स्थिति बदलती रहती हैं । यहां छ आरे के 10 कोडाकोडी सागरोपम में से मात्र 1 कोडाकोडी सागरोपम तक ही तीर्थंकर और तीर्थ रहता हैं, जब कि 9 कोडाकोडी सागरोपम तक धर्म व शासन का सर्वथा अभाव रहता है ।

पांच महाविदेह क्षेत्र में सदा अवस्थित काल होता है । भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसे भाव होते हैं, वे भाव वहां हमेशा रहते है ।

भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल में जब दूसरे अजितनाथ तीर्थंकर हुए थे, तब पांचों महाविदेह के 160 विजयों में तीर्थंकर विद्यमान थे, उस समय महाविदेह क्षेत्र में कुल 160 तीर्थंकर थें ।

वर्तमान समय में 5 महाविदेह की 20 विजयों में तीर्थंकर परमात्मा विद्यमान है ।

जंबुद्वीप के महाविदेह में 4 तीर्थंकर

1 लाख योजन लंबे चोडे गोलाकार जंबुद्वीप के मध्य में 1 लाख योजन की ऊंचाईवाला मेरुपर्वत आया हुआ है, उस मेरुपर्वत के पूर्व और पश्चिम में महाविदेह क्षेत्र आया हुआ है । महाविदेह के पूर्व में सीतानदी और

पश्चिम में सीतोदा नदी बहती है, जो दोनों ओर से महाविदेह के उत्तर व दक्षिण विभाग करती है।

महाविदेह क्षेत्र की प्रत्येक विजय भरतक्षेत्र से अनेक गुणी लंबी-चोडी होती है। प्रत्येक विजय के बीच में वैताढ्य पर्वत होने से दो भाग होते हैं, पुनः गंगा-सिंधु या रक्ता-रक्तवती नदी दो भाग में बहती है, इस प्रकार हर विजय के छ खंड हो जाते है। वहां पैदा होनेवाला चक्रवर्ती इन छ खंडों के अधिपति बनते है।

महाविदेह के 32 विजय

पूर्व		पश्चिम	
विजय का नाम	**राजधानी**	**विजय का नाम**	**राजधानी**
1. कच्छ	क्षेमा	17. पक्ष्म	अश्वपुरी
2. सुकच्छ	क्षेमपुरी	18. सुपक्ष्म	सिंहपुरी
3. महाकच्छ	अरिष्टा	19. महापक्ष्म	महापुरी
4. कच्छवती	अरिष्टवती	20. पक्ष्मावती	विजयपुरी
5. आवर्त	खड़्गी	21. शंख	अपराजिती
6. मंगलावर्त	मंजुषा	22. नलीन	अपरा
7. पुष्कला	औषधिपुरी	23. कुमुद	अशोका
8. पुष्कलावती	पुंडरिकिणी	24. नलिनावती	वीतशोक
9. वत्स	सुसीमा	25. वप्रा	विजया
10. सुवत्स	कुंडला	26. सुवप्रा	वैजयंती
11. महावत्स	अपरावती	27. महावप्रा	जयंति
12. वत्सावती	प्रभंकरा	28. वप्रावती	अपराजिता
13. रम्य	अंकावती	29. वल्गु	चक्रपुरी
14. रम्यक्	पक्ष्मावती	30. सुवल्गु	खडगपुरी
15. रमणीय	शुभ	31. गंधिल	अवध्या
16. मंगलावती	रत्न संचया	32. गंधिलावती	अयोध्या

इन विजयों में से 8वीं पुष्कलावती विजय में श्री सीमंधरस्वामी, 7 वीं वत्स विजय में युगमंधरस्वामी, 24वीं नलीनावती विजय में बाहुस्वामी तथा

25 वीं वप्रा विजय में सुबाहुस्वामी पृथ्वीतल पर विचरण कर रहे हैं ।

धातकी खंड में 8 तीर्थंकर

पूर्व धातकी खंड के महाविदेह की 8 वीं विजय में सुजात स्वामी, नौवीं विजय में स्वयंप्रभस्वामी, 24वीं विजय में ऋषभानन स्वामी और 25वीं विजय में श्री अनंतवीर्य स्वामी विद्यमान है ।

पश्चिम धातकी खंड के महाविदेह की 8वीं विजय में सुरप्रभस्वामी, 9वीं विजय में विशालस्वामी, 24वीं विजय में वज्रधर स्वामी और 25वीं विजय में चंद्रानन स्वामी विद्यमान है ।

इन आठों तीर्थंकर का देहमान गृहस्थ पर्याय जन्म, दीक्षा आदि कल्याणक सीमंधरस्वामी के देहमान आदि के समान है ।

पुष्करार्ध द्वीप में 8 तीर्थंकर

धातकी खंड के चारों ओर कालोदधि समुद्र है और उस समुद्र के चारों ओर पुष्करद्वीप रहा हुआ हैं । इस पुष्कर द्वीप का आधा भाग पार करने पर मानुषोत्तर पर्वत आता है, जो पुष्कर द्वीप को दो भागों में विभाजित करता हैं । अंदर का पुष्करार्ध द्वीप मनुष्य क्षेत्र में आता है और बाहर का, मनुष्य क्षेत्र के बाहर आता है । पुष्करार्ध द्वीप में भी दो महाविदेह है । दोनों महाविदेह में चार-चार तीर्थंकर है ।

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप के महाविदेह की 8वीं विजय में चंद्रबाहुस्वामी, 9वीं विजय में भुजंगदेवस्वामी, 24वीं विजय में ईश्वरस्वामी, 24वीं विजय में ईश्वरस्वामी और 25वीं विजय में नेमिप्रभुस्वामी है ।

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के महाविदेह की 8वीं विजय में वीरसेन स्वामी, 9वीं विजय में महाभद्रस्वामी, 24वीं विजय में देवयशास्वामी तथा 25वीं विजय में अजितवीर्य स्वामी पृथ्वीतल पर विचरण कर रहे है ।

20 विहरमान प्रभु का जीवन परिचय

भरत क्षेत्र में 17वें कुंथुनाथ प्रभु के मोक्ष गमन के बाद 18वें अरनाथ प्रभु के जन्म पूर्व अर्थात् आज से 83 लाख पूर्व पहले महाविदेह क्षेत्र की भिन्न भिन्न विजयों में इन 20 तीर्थंकर परमात्मा का च्यवन व जन्म हुआ था ।

उनका च्यवन कल्याणक श्रावण वदी 1 तथा जन्म कल्याणक वैशाख वदी 10 है ।

अपने जन्म के 83 लाख पूर्व वर्ष व्यतीत होने के बाद समस्त राज्य सुखों का त्यागकर उन्होंने दीक्षा अंगीकार की थी, उस समय भरत क्षेत्र में मुनिसुव्रतस्वामी प्रभु का निर्वाण हो चूका था और उनका शासन चल रहा था । प्रभु की दीक्षा कल्याणक का दिन था, फागुण शुक्ला तृतीया । एक हजार वर्ष का छद्मस्थकाल व्यतीत होने पर सीमंधर स्वामी आदि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । वह दिन था चैत्र सुदी 13 का ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रभु ने शासन की स्थापना की । आज भी महाविदेह क्षेत्र में प्रभु का शासन चल रहा है ।

इन सभी 20 विहरमान प्रभु की काया 500 धनुष्य प्रमाण है । उन सबका आयुष्य 84 लाख पूर्व वर्ष का है । उन सबका गृहस्थ पर्याय 83 लाख पूर्व वर्ष का है । उन सभी का जन्म उत्तराषाढा नक्षत्र में हुआ था । उन सभी भगवान के 84 गणधर है ।

एक एक तीर्थंकर के परिवार में 100 करोड साधु और 100 करोड साध्वीजी तथा 10 लाख केवली भगवंत है ।

आगामी चोबीसी के सातवें तीर्थंकर उदयनाथ व 8वें पेढालनाथ प्रभु के बीच में श्रावण सुदी 3 के दिन उनका निर्वाण होगा ।

सिद्ध अनंत नमुं निश दिन

भूतकाल में अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी व्यतीत हो चुकी है । हर उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में भरत व ऐरावत क्षेत्र में 24-24 तीर्थंकर मोक्ष में गए है । महाविदेह क्षेत्र में तो तीर्थंकर पैदा होते रहते हैं ।

तीर्थंकरों के शासन में अनेक आत्माएं मोक्ष में जाती है । इस प्रकार आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया है ।

उन सभी मोक्षगत सिद्ध भगवंतों को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

अढी द्वीपमां जे अणगार

एकविध संयम के अट्ठारह हजार भंग

3 करण (करना, कराना व अनुमोदना करना) x 3 योग (मन, वचन व काया) = 9 x 4 संज्ञा (आहार, भय, मैथुन व परिग्रह, ये चारों संज्ञायें

क्रमशः वेदनीय, भयमोहनीय, वेदमोहनीय व लोभकषाय के उदय से जन्य अध्यवसायविशेषरुप हैं ।) = 36 x 5 इन्द्रियाँ (श्रोत, चक्षु, घ्राण, रसन व स्पर्शन । इन्द्रियों का पश्चानुपूर्वी से कथन इस बात को द्योतक है कि शीलांग उत्तरोत्तर गुणों की वृद्धि से ही उपलब्ध होते हैं ।) 180 x 10 (9 जीव + 1 अजीव) पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय=9 जीव । अजीव = महामूल्यवान वस्त्र, पात्र, सोना, चाँदी आदि 1800 x 10 श्रमणधर्म (क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिञ्चन्य व ब्रह्मचर्य)=18000 शीलांग होते हैं ।

भंगों की रचना इस प्रकार है:

1. क्षमायुक्त मन से आहारसंज्ञा विहीन होकर श्रोत्रेन्द्रिय के संयम पूर्वक पृथ्वीकायिक जीव की हिंसा न करना यह प्रथम शीलांग है ।

2. मार्दवगुण युक्त मन से आहार संज्ञा विहीन होकर क्षोत्रेन्द्रिय के संयम पूर्वक पृथ्वीकायिक जीव की हिंसा न करना यह द्वितीय शीलांग है ।

3. आर्जवगुणयुक्त मन से आहार संज्ञा विहीन होकर श्रोत्रेन्द्रिय के संयमपूर्वक पृथ्वीकायिक जीव की हिंसा न करना यह तृतीय शीलांग है ।

- इस प्रकार ब्रह्मचर्य, तप आदि सातों के साथ सात भाँगे हुए । कुल दशविध यतिधर्म के दश विकल्प बने ।
- अप्काय आदि नौ के साथ दशविध यतिधर्म के विकल्प करने पर 10 विकल्प हुए । पूर्वोक्त 10 मिलने पर 90 + 10 = 100 विकल्प हुए ।
- पूर्वोक्त 100 भांगे श्रोत्रेन्द्रिय के साथ हुए, वैसे अन्य इन्द्रियों के साथ भी होते हैं अतः 100 x 5 = 500 विकल्प हुए ।
- 2000 विकल्प मनोयोग के समान वचनयोग और काय योग के भी होते है । कुल मिलाकर तीनों योग के 2000 x 3 = 6000 विकल्प हुए ।
- 6000 `न करुं' के हैं वैसे न कराऊं और `न अनुमोदूं' के मिलाने से कुल विकल्प 6000 x 3 = 18000 हुए ।

इस प्रकार 18000 शीलांग रथ को धारण करनेवाले मुनियों को, जो ढाई द्वीप में रहे हुए हैं, उन सभी को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

संतिकरं स्तवन

51

पूर्व परिचय

भगवान् महावीर प्रभु की पाट परंपरा में अनेक समर्थ और प्रभावक आचार्य भगवंत हुए हैं । विक्रम की 15वीं शताब्दी में तपागच्छ में महान् प्रभावक आचार्य श्री सोमसुंदरसूरिजी म. हुए । उनके शिष्य सहस्त्रावधानी पू. आचार्य श्री मुनिसुन्दरसूरिजी म. हुए हैं, जिन्होंने शांति के लिए इस **संतिकरं स्तवन** की रचना की है ।

पाक्षिक, चातुर्मासिक व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के पहले दिन दैवसिक प्रतिक्रमण में स्तवन के रूप में **संतिकरं** बोला जाता है तथा पू. साधु-साध्वीजी म. विहार करते हुए जहाँ जाते है, वहाँ मांगलिक प्रतिक्रमण में स्तवन के रूप में यह स्तवन पढ़ते हैं ।

नित्य मांगलिक नव-स्मरण के तीसरे स्मरण के रूप में भी यह स्तवन पढ़ा जाता है ।

इस स्तवन में शांतिनाथ प्रभु की स्तुति के साथ-साथ सूरि-मंत्र की पीठिकाओं के अधिष्ठायक, ग्रह, दिक्पाल, इन्द्र, सोलह विद्या देवियाँ, चौबीस तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षिणी का भी स्मरण किया गया है और जिन भक्ति में सहायता करने की प्रार्थना की गई है ।

संतिकरं संतिजिणं, जग-सरणं जय-सिरीइ-दायारं ।
समरामि भत्त-पालग-निव्वाणी-गरुड-कय-सेवं ।।1।।
ॐ सनमो विप्पोसहि-पत्ताणं संतिसामि-पायाणं ।
झ्रौँ स्वाहा-मंतेणं, सव्वासिव-दुरिय-हरणाणं ।।2।।
ॐ संतिनमुक्कारो, खेलोसहिमाइ-लद्धि-पत्ताणं ।
सौँ ह्रीँ नमो सव्वोसहि-पत्ताणं च देइ सिरिं ।।3।।
वाणी-तिहुयणसामिणी-सिरिदेवी-जक्खराय-गणिपिडगा ।
गह-दिसिपाल-सुरिंदा, सया वि रक्खंतु जिणभत्ते ।।4।।
रक्खंतु मम रोहिणी-पन्नत्ती वज्जसिंखला य सया ।
वज्जंकुसि-चक्केसरि-नरदत्ता कालि-महाकाली ।।5।।
गोरी तह गंधारी, महजाला माणवी य वइरुट्टा ।
अच्छुत्ता माणसिआ, महामाणसिआ उ देवीओ ।।6।।

जक्खा गोमुह-महजक्ख-तिमुह-जक्खेस-तुंबरु कुसुमो ।
मायंग-विजय[3] अजिया, बंभो मणुओ सुरकुमारो ।।7।।
छम्मुह पयाल किन्नर, गरुडो गंधव्व तह य जक्खिदो ।
कूबेर वरुणो भिउडी, गोमेहो पास-मायंगा ।।8।।
देवीओ चक्केसरि-अजिआ-दुरिआरि-कालि-महाकाली ।
अच्चुय-संता-जाला, सुतारया सोय-सिरिवच्छा ।।9।।
चंडा विजयंकुसि-पन्नइत्ति निव्वाणि-अच्चुआ-धरणी,
वइरुट्ट-छुत्त-गंधारि-अंब-पउमावई-सिद्धा ।।10।।
इय तित्थ-रक्खण-रया, अन्ने वि सुरा सुरी य चउहा वि ।
वंतर-जोइणि-पमुहा कुणंतु रक्खं सया अम्हं ।।11।।
एवं सुदिट्ठि सुरगण-सहिओ-संघस्स संति-जिणचंदो ।
मज्झ वि करेउ रक्खं, मुणिसुंदरसूरि-थुय महिमा ।।12।।
इय 'संतिनाह-सम्मद्दिट्ठि-रक्खं' सरइ तिकालं जो ।
सव्वोवद्दव-रहिओ, स लहइ सुह-संपयं परमं ।।13।।
तवगच्छ-गयण दिणयर-जुगवर सिरि सोमसुंदर गुरूणं ।
सुपसाय लद्ध गणहर-विज्जा सिद्धी भणइ सीसो ।।14।।

संतिकरं संतिजिणं, जगसरणं जय-सिरीइ दायारं ।
समरामि भत्त-पालग-निव्वाणी-गरुड-कय-सेवं ।।1।।

।। शब्दार्थ ।।

संतिकरं=शांति करनेवालों को	**समरामि=**याद करता हूँ ।
संतिजिणं=शांतिनाथ प्रभु को	**भत्त पालग=**भक्तों के पालक
जगसरणं=जगत् के शरण	**निव्वाणी=**निर्वाणी देवी
जय-सिरीइ=जयलक्ष्मी	**गरुड=**गरुड़ यक्ष
दायारं=दाता को	**कयसेवं=**सेवित

अर्थ

शांति करने वाले, जगत् के शरणभूत, जय और श्री के दाता, भक्तजनों के पालक, निर्वाणी और गरुड के द्वारा सेवित ऐसे शांतिनाथ प्रभु का मैं स्मरण करता हूँ ।

विवेचन

16 वें शांतिनाथ प्रभु अपने नाम के अनुरूप ही शांति के दाता हैं । वे जगत् के प्राणियों के लिए एक मात्र शरणभूत हैं । उनकी शरणागति से आत्मा सदा के लिए भयमुक्त बन जाती है । उनके नाम-स्मरण से सर्वत्र विजय और लक्ष्मी (समृद्धि) की प्राप्ति होती है । भक्तजनों के मनोवांछित को पूर्ण करनेवाले उनके रक्षक हैं । शांतिनाथ प्रभु के अधिष्ठायक गरुड़ यक्ष है और अधिष्ठायिका निर्वाणी देवी है । वे सदैव प्रभु की सेवा में तत्पर हैं । ऐसे शांतिनाथ प्रभु का मैं स्मरण करता हूँ ।

ॐ स नमो विप्पोसहि-पत्ताणं संतिसामि-पायाणं ।
झ्रौं स्वाहा मंतेणं, सव्वासिव-दुरिय-हरणाणं ।।2।।
ॐ संति नमुक्कारो, खेलोसहिमाइ-लद्धि-पत्ताणं ।
सौं ह्रीं नमो सव्वोसहि-पत्ताणं च देइ सिरिं ।।3।।

।। शब्दार्थ ।।

ॐ स नमो=ॐ नमः सहित
विप्पोसहि=विप्रुड् औषधि
पत्ताणं=प्राप्त करनेवालों को
संति-सामि=शांतिनाथ स्वामी
पायाणं=पूज्य को
झ्रौं स्वाहा मंतेणं=झ्रौं स्वाहा मंत्र के साथ
सव्वासिव=समस्त अशिव
दुरिय=पाप
हरणाणं=हरनेवालों को

ॐ संति नमुक्कारो=ॐ पूर्वक शांतिनाथ को किया हुआ नमस्कार
खेलोसहिमाइ=श्लेष्म औषधि आदि
लद्धिपत्ताणं=प्राप्त लब्धिवालों को
सौं ह्रीं नमः=(मंत्र का नाम है)
सव्वोसहि पत्ताणं=सर्व औषधि को प्राप्त
च=और
देइ=देते हैं ।
सिरिं=श्री को

अर्थ

विप्रुड् औषधि, श्लेष्म औषधि, सर्व औषधि आदि लब्धि प्राप्त करने वाले, सर्व अशिव को दूर करने वाले ऐसे श्री शांतिनाथ भगवान को **'ॐ नमः'** **'झ्रौं स्वाहा'** तथा **'सौं ह्रीं नमः'** इन मंत्राक्षरपूर्वक नमस्कार हो । शांतिनाथ प्रभु का यह जाप जय और श्री प्रदान करता है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

विवेचन

विप्रुड् औषधि अर्थात् जिसके शरीर का मल भी रोगनाश के लिए औषधि का काम करता है ।

श्लेष्म औषधि अर्थात् जिसके शरीर के नाक का मैल भी औषधि का काम करता है ।

सर्वौषधि: जिसके शरीर के सभी पदार्थ औषधि रूप हों, उसे सर्वौषधि कहते हैं ।

श्री शांतिनाथ प्रभु उपरोक्त सभी लब्धियों से युक्त हैं । मंत्राक्षर पूर्वक उनका जाप करने से जय और श्री अर्थात् आत्मा की शाश्वत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।

वाणी-तिहुयण सामिणी-सिरिदेवी-जक्खराय-गणिपिडगा ।
गह-दिसिपाल-सुरिंदा, सया वि रक्खंतु जिणभत्ते ।।4।।

।। शब्दार्थ ।।

वाणी=सरस्वती देवी	**दिसिपाल=**दिक्पाल
तिहुयण सामिणी=त्रिभुवनस्वामिनी	**सुरिंदा=**सुरेन्द्र
सिरिदेवी=श्री देवी	**सया=**सदा
जक्खराय गणिपिडगा=यक्षराज गणि पिटक	**वि=**भी
	रक्खंतु=रक्षण करे
गह=ग्रह	**जिणभत्ते=**जिनेश्वर के भक्तो की

अर्थ

सरस्वती, त्रिभुवनस्वामिनी, श्रीदेवी, यक्षराज गणिपिटक, ग्रह, दिक्पाल और देवेन्द्र सदा जिनभक्तों की रक्षा करें ।

विवेचन

सूरि मंत्र की प्रथम पीठ की अधिष्ठायिका सरस्वती देवी है, दूसरी पीठ की अधिष्ठायिका मानुषोत्तर पर्वत के शिखर पर रहनेवाली त्रिभुवनस्वामिनी देवी है । तीसरी पीठ की अधिष्ठायिका पद्मद्रह के पद्म में रहनेवाली श्रीदेवी और चौथी पीठ के अणपण्णी व पणपण्णी नाम की व्यंतर जाति में प्रतिष्ठित, सोलह हजारों पक्षों के स्वामी, बीस हाथवाले अतुलबली अधिष्ठायक यक्षराज गणिपिटक है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, नाग और ब्रह्म ये दस दिक्पाल हैं।

तथा भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक के कुल 64 इंद्र हैं। वे सभी जिनेश्वर के भक्तों का रक्षण करें, ऐसी प्रार्थना की गई है।

रक्खंतु मम रोहिणी, पन्नत्ती वज्जसिंखला य सया।
वज्जंकुसि चक्केसरि, नरदत्ता कालि-महाकाली ॥5॥
गोरी तह गंधारी, महजाला माणवी अ वइरुट्टा।
अच्छुत्ता माणसिआ, महामाणसिआ उ देवीओ ॥6॥

॥ शब्दार्थ ॥

रक्खंतु=रक्षण करे
मम=मेरा
रोहिणी-पन्नत्ती=रोहिणी और प्रज्ञप्ति
वज्जसिंखला=वज्रशृंखला
य=और
सया=सदा
वज्जंकुसि=वज्राङ्कुशी
चक्केसरि=चक्रेश्वरी
नरदत्ता=नरदत्ता
कालि-महाकाली=काली और महाकाली
गोरी=गोरी
तह=तथा
गंधारी=गांधारी
महजाला=महाज्वाला
माणवी=मानवी
वइरुट्टा=वैरोट्या
य=और
अच्छुत्ता=अच्छुप्ता
माणसिआ=मानसी
उ=और
महामाणसिआ=महामानसी
देवीओ=देवियाँ

अर्थ

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्राङ्कुशी, चक्रेश्वरी, नरदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गांधारी, महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी, महामानसी ये 16 विद्यादेवियाँ मेरा रक्षण करें।

जक्खा गोमुह महजक्ख, तिमुह जक्खेस-तुंबरु-कुसुमो।
मायंग-विजय-अजिआ, बंभो मणुओ सुरकुमारो ॥7॥
छम्मुह-पयाल-किन्नर गरुलो गंधव्व तह य जक्खिंदो।
कूबर वरुणो भिउडी गोमेहो पास मायंगा ॥8॥

।। शब्दार्थ ।।

जक्खा=यक्ष
गोमुह=गोमुख
महजक्ख=महायक्ष
तिमुह=त्रिमुख
जक्खेस=यक्षेश
तुम्बरु=तुम्बरु
कुसुमो=कुसुम
मायंग=मातंग
विजय=विजय
अजिआ=अजित
बंभो=ब्रह्म
मणुओ=मनुज
सुरकुमारो=सुरकुमार
छम्मुह=षण्मुख
पयाल=पाताल
किन्नर=किंनर
गरुलो=गरुड़
गंधव्व=गंधर्व
तह=तथा
य=और
जक्खिंदो=यक्षेन्द्र
कूबर=कुबेर
वरुणो=वरुण
भिउडी=भृकुटि
गोमेहो=गोमेध
पास=पार्श्व
मायंगो=मातंग

अर्थ

गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश, तुम्बरु, कुसुम, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, मनुज, सुरकुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड़, गंधर्व, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातंग ये 24 यक्ष हैं ।

विवेचन

जिनेश्वर देव की भक्ति करनेवाले शासनदेव को यक्ष कहा जाता है । ये यक्ष व्यंतर जाति के देव होते हैं । जिनमंदिर में मूलनायक अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा के साथ यक्ष और यक्षिणी होते हैं । ये यक्ष प्रभु के शासन की आराधना-उपासना करनेवाले भक्तों को आराधना आदि में सहायता करते हैं ।

24 तीर्थंकरों की भक्ति में विशेष परायण देव यक्ष अधिष्ठायक कहलाते है ।

तीर्थंकरों के यक्ष —

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?	मुख
1.	गोमुख	सुनहरा	हाथी	4	2 दायें हाथों में अक्षमालिका आशीर्वाद मुद्रा । 2 बायें हाथों में मातुलिंग पाशक ।	गाय जैसा
2.	महायक्ष	कृष्ण	ऐरावण हाथी	8	4 दायें हाथों में वरद, मुद्गर, अक्षसूत्र, पाशक । 4 बायें हाथों में बीजोरा, अभयमुद्रा, अंकुश, शक्ति ।	चतुर्मुख
3.	त्रिमुख	कृष्ण	मयूर	6	3 दायें हाथों में नकुल, गदा, अक्षयमुद्रा 3 बायें हाथों में मातुलिंग, नाग, अक्षसूत्र	त्रिमुख और त्रिनेत्र
4 .	यक्षनायक (ईश्वर)	कृष्ण	गज	4	2 दायें हाथों में मातुलिंग अक्षसूत्र २ बायें हाथों में नकुल, अंकुश	एक मुख
5.	तुम्बुरु	श्वेत	गरुड़	4	2 दायें हाथों में वरद, शक्ति २ बायें हाथों में गदा, नागपाश	एक मुख
6.	कुसुम	नीला	हिरण	4	2 दायें हाथों मे फल, अभयमुद्रा २ बायें हाथों में नकुल, अक्षसूत्र	एक मुख
7.	मातंग	नीला	गज	4	2 दायें हाथों में बिल्व, पाश २ बायें हाथों में नकुल, अंकुश	एक मुख
8.	विजय	नीला	हंस	2	1 दायें हाथ में चक्र 1 बायें हाथ में मुद्गर	त्रिमुख और त्रिनेत्र
9.	अजित	सफेद	कछुआ	4	2 दायें हाथों में मातुलिंग अक्षसूत्र 2 बायें हाथों में नकुल, भाला	एक मुख
10.	ब्रह्मा	सफेद	पद्म	8	4 दायें हाथों में मातुलिंग, मुद्गर, पाशक, अभयमुद्रा	चतुर्मुख त्रिनेत्र

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?	मुख
					4 बायें हाथों में नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र	
11.	मनुज (ईश्वर)	सफेद	वृषभ	4	2 दायें हाथों में मातुलिंग, गदा २ बायें हाथों में नकुल, अक्षसूत्र	एक मुख त्रिनेत्र
12.	सुरकुमार (श्री कुमार)	सफेद	हंसवाहन	4	2 दायें हाथों में बीजोरा, वीणा (बाण) २ बायें हाथों में नकुल, धनुष	एक मुख
13.	षणमुख	सफेद	मोर	12	6 दायें हाथों में फल, चक्र, धनुष खड्ग, पाशक, अक्षसूत्र 6 बायें हाथों में नकुल, चक्र धनुष, अंकुश, फलक (ढाल), अभयमुद्रा	छः मुख
14.	पाताल	लाल	मगरमच्छ	6	3 दायें हाथों में पद्म, खड्ग, पाश 3 बायें हाथों में नकुल, फलक (ढाल) अक्षसूत्र	त्रिमुख
15.	किन्नर	लाल	कछुआ	6	3 दायें हाथों में बीजोरा, गदा, अभयमुद्रा 3 बायें हाथों में नकुल, पद्म, अक्षमाला	त्रिमुख
16.	गरूड़	कृष्ण	वराह	4	2 दायें हाथों में बीजोरा, पद्म २ बायें हाथों में नकुल, अक्षसूत्र	क्रोड़ वदन
17.	गन्धर्व यक्ष	कृष्ण	हंस	4	2 दायें हाथों में वरद, पाशक २ बायें हाथों में मातुलिंग, अंकुश	एक मुख
18.	यक्षेन्द्र	कृष्ण	शंख	12	6 दायें हाथों में बीजोरा, बाण खड्ग, मुद्गर, पाशक, अभयमुद्रा 6 बायें हाथों में नकुल, धनुष, ढाल, त्रिशूल, अंकुश, अक्षसूत्र	छः मुख त्रिनेत्र

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?	मुख
19.	कूबर (कुबेर)	इन्द्र धनुषी रंग	हाथी	8	4 दायें हाथों में वरद, परशु, त्रिशूल, अभयमुद्रा 4 बायें हाथों में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर, अक्षसूत्र	चतुर्मुख
20.	वरुण	श्वेत	बैल	8	4 दायें हाथों में बीजोरा, गदा, बाण, शक्ति 4 बायें हाथों में नकुल, पद्म, धनुष, परशु (फरसा)	चतुर्मुख त्रिनेत्र
21.	भृकुटि	सुनहरा	बैल	8	4 दायें हाथों में बीजोरा, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा 4 बायें हाथों में नकुल, फरसा, वज्र, अक्षसूत्र	चतुर्मुख त्रिनेत्र
22.	गोमेध	काला	पुरुष	6	3 दायें हाथों में मातुलिंग, परशु, चक्र 3 बायें हाथों में नकुल, त्रिशूल, शक्ति	त्रिमुख
23.	वामन (पार्श्व)	काला	कछुआ	4	2 दायें हाथों में बीजोरा, नाग 2 बायें हाथों में नकुल, भुजंग	गजमुख व मस्तक पर सर्पफण
24.	मातंग	काला	हाथी	2	दायें हाथ में नकुल बायें हाथ में बीजोरा	एक मुख

देवीओ चक्केसरि-अजिआ-दुरिआरि-कालि-महाकाली ।
अच्चुअ-संता-जाला, सुतारयासोय-सिरिवच्छा ।।9।।
चंडा विजयंकुसि-पन्नइत्ति निव्वाणि-अच्चुआ-धरणी,
वइरुट्ट-छुत्त-गंधारि, अंब-पउमावई-सिद्धा ।।10।।

इय तित्थ-रक्खण-रया, अन्नेवि सुरा सुरी य चउहा वि ।
वंतर-जोइणि-पमुहा कुणंतु रक्खं सया अम्हं ।।11।।

।। शब्दार्थ ।।

देवीओ=देवियाँ
चक्केसरि=चक्रेश्वरी
अजिआ=अजिता
दुरिआरि=दुरितारि
कालि-महाकाली=काली और महाकाली
अच्चुअ=अच्युता
संता=शांता
जाला=ज्वाला
सुतारया=सुतारका
सोय=अशोका
सिरिवच्छा=श्रीवत्सा
चंडा=चण्डा
विजयंकुसि=विजया व अंकुशी
पन्नइत्ति=प्रज्ञप्ति
निव्वाणि=निर्वाणी
अच्चुआ=अच्युता
धरणी=धारिणी
वइरुट्ट=वैरोट्या
छुत्त=अच्छुप्ता
गंधारी=गांधारी
अंब=अंबा
पउमावई=पद्मावती
सिद्धा=सिद्धायिका
इय=इस प्रकार
तित्थरक्खण रया=तीर्थ के रक्षण में तत्पर
अन्नेवि=दूसरे भी
सुरा=देव
सुरीउ=देवियाँ
चउहा=चार प्रकार के
वि=भी
वंतर=व्यंतर
जोइणि=योगिनी
पमुहा=प्रमुखा
कुणंतु=करें
रक्खं=रक्षा
सया=सदा
अम्हं=हमारी

अर्थ

चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युता, शांता, ज्वाला, सुतारका, अशोका, श्रीवत्सा, चंडा, विजया, अंकुशी, प्रज्ञप्ति, निर्वाणी, अच्युता, धारिणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, गांधारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका ये शासन देवियाँ तथा भगवान के शासन का रक्षण करने में तत्पर ऐसे अन्य चारों प्रकार के देव-देवियाँ तथा व्यंतर, योगिनी आदि सभी

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

हमारी रक्षा करो ।

विवेचन

चक्रेश्वरी आदि ऋषभदेव आदि के शासन की अधिष्टायक देवियाँ हैं । जिनके लक्षण निम्नानुसार हैं–

24 तीर्थंकरों का यक्षिणिा–

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?
1.	चक्रेश्वरी (अप्रतिचक्रा)	सुनहरा	गरूड़	8	4 दायें हाथों में वरद, बाण, चक्र, पाश ४ बायें हाथों में धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश
2.	अजिता (अजितबला)	गौर	लोहासन (जीव-विशेष)	4	2 दायें हाथों में वरद, पाश 2 बायें हाथों में बीजोरा, अंकुश
3.	दुरितारि	गौर	मेष (भेड़)	4	2 दायें हाथों में वरद, अक्षमाला २ बायें हाथों में फल, अभयमुद्रा
4.	काली	श्याम	पद्म	4	2 दायें हाथों में वरद, पाश २ बायें हाथों में नाग, अंकुश
5.	महाकाली	सुनहरा	पद्म	4	2 दायें हाथों में वरद, पाश २ बायें हाथों में मातुलिंग, अंकुश
6.	अच्युता (श्यामा)	श्याम	नर	4	2 दायें हाथों में वरद, बाण (वीणा) २ बायें हाथों में धनुष, अभयमुद्रा
7.	शान्ता	सुनहरा	गज	4	2 दायें हाथों में वरद, अक्षसूत्र २ बायें हाथों में त्रिशूल, अभयमुद्रा
8.	ज्वाला (भृकुटि)	पीला	बिडाल (वरालक)	4	2 दायें हाथों में खड्ग, मुद्गर २ बायें हाथों में फलक, (ढ़ाल) फरसा
9.	सुतारा	गौर	वृषभ	4	2 दायें हाथों में वरद, अक्षसूत्र २ बायें हाथों में कलश, अंकुश

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?
10.	अशोका	नीला	पद्म	4	2 दायें हाथ में वरद, पाश २ बायें हाथों में फल, अंकुश
11.	मानवी (श्रीवत्सा)	गौर	सिंह	4	2 दायें हाथों में वरद, मुद्गर २ बायें हाथों में कलश, अंकुश
12.	प्रवरा (चण्डा)	श्याम	घोड़ा	4	2 दायें हाथों में वरद, शक्ति २ बायें हाथों में फूल, गदा
13.	विजया (विदिता)	पीला	पद्म	4	2 दायें हाथों में बाण, पाश २ बायें हाथों में धनुष, नाग
14.	अंकुशा	गौर	पद्म	4	2 दायें हाथों में खड्ग, पाश २ बायें हाथों में ढाल, अंकुश
15.	पन्नगा (कन्दर्पा)	गौर	मछली	4	2 दायें हाथों में कमल, अंकुश २ बायें हाथों में पद्म, अभयमुद्रा
16.	निर्वाणी	सुवर्ण	पद्म	4	2 दायें हाथों में पुस्तक, उत्पल (कमल) २ बायें हाथों में कमंडलु, कमल
17.	अच्युता (बला देवी)	सुवर्ण	मोर	4	2 दायें हाथों में बीजोरा, त्रिशूल 2 बायें हाथों में मुसुंढ़ि (शस्त्र विशेष), पद्म
18.	धारणी	नील	पद्म	4	2 दायें हाथों में मातुलिंग, उत्पल (कमल) २ बायें हाथों में पद्म, अक्षसूत्र
19.	वैरोट्या	कृष्ण	पद्म	4	2 दायें हाथों में वरद, अक्षसूत्र २ बायें हाथों में बीजोरा, शक्ति
20.	अच्छुप्ता (नरदत्ता)	सुवर्ण	भद्रासन	4	2 दायें हाथों में वरद, अक्षसूत्र २ बायें हाथों में बीजोरा, त्रिशूल

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

क्र.	नाम	वर्ण	वाहन	हाथ	हाथ में क्या ?
21.	गान्धारी	श्वेत	हंस	4	2 दायें हाथों में वरद, खड्ग २ बायें हाथों में बीजोरा, भाला
22.	अम्बा	सुवर्ण	सिंह	4	2 दायें हाथों में आम की लूंब, पाश २ बायें हाथों में पुत्र, अंकुश
23.	पद्मावती	सुवर्ण	कुर्कुट सर्प	4	2 दायें हाथों में पद्म, पाश २ बायें हाथों में फल, अंकुश
24.	सिद्धायिका	हरित	सिंह	4	2 दायें हाथों में पुस्तक, अभयमुद्रा २ बायें हाथों में बीजोरा, वीणा ( ) कोष्ठक में दिये गये नाम मतान्तर से जानना ।

एवं सुदिट्ठि सुरगण-सहिओ-संघस्स संति-जिणचंदो ।
मज्झ वि करेउ रक्खं, मुणिसुंदर सूरि-थुअ महिमा ।।12।।

।। शब्दार्थ ।।

एवं=इस प्रकार
सुदिट्ठि=सम्यग्दृष्टि
सुरगण सहिओ=देवतागण सहित
संघस्स=संघ की
संति जिण चंदो=शांतिनाथ प्रभु
मज्झ वि=मेरी भी
करेउ=करे
रक्खं=रक्षा
मुणिसुंदर सूरि-थुय महिमा=मुनि सुंदर सूरि द्वारा जिनकी महिमा गाई गई ।

अर्थ

इस प्रकार मुनिसुंदरसूरि ने जिनकी महिमा व स्तुति की है, ऐसे शांतिनाथ जिनेश्वर सम्यग्दृष्टि देवों के समूह सहित श्रीसंघ की व मेरी भी रक्षा करे ।

विवेचन

इस स्तुति के रचयिता ने अपने नाम का उल्लेख कर प्रार्थना की है कि सम्यग्दृष्टि देवताओं के साथ शांतिनाथ प्रभु संघ की तथा उनकी भी रक्षा करे ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

इय संतिनाह-सम्मदिट्ठि रक्खं सरइ तिकालं जो ।
सव्वोवद्दव-रहिओ, स लहइ सुह-संपयं परमं ।।13।।

शब्दार्थ

इय=इस प्रकार,	**सव्वोवद्दव रहिओ=**सर्व उपद्रव रहित
संतिनाह=शांतिनाथ	**स=**वह
सम्मदिट्ठि-रक्खं=सम्यग्दृष्टि की रक्षा	**लहइ=**प्राप्त करता है
सरइ=याद करता है ।	**सुह संपयं=**सुख संपदा
तिकालं=त्रिकाल	**परमं=**श्रेष्ठ
जो=जो व्यक्ति	

अर्थ

इस प्रकार 'शांतिनाथ सम्यग्दृष्टिक रक्षा' स्तोत्र का जो प्रतिदिन तीन काल में स्मरण करता है, वह सर्व उपद्रवों से रहित उत्कृष्ट सुख-संपदा प्राप्त करता है ।

विवेचन

इस गाथा द्वारा इस स्तोत्र का नाम व स्तोत्र के स्मरण का वास्तविक फल बतलाया है ।

तवगच्छ-गयण दिणयर-जुगवर सिरि सोमसुंदर गुरूणं ।
सुपसाय लद्ध गणहर-विज्जा सिद्धी भणइ सीसो ।।14।।

।। शब्दार्थ ।।

तवगच्छ=तपागच्छ	**सुपसाय=**कृपा से
गयण दिणयर=गगन में सूर्य समान	**लद्ध=**प्राप्त की है
जुगवर=युग में श्रेष्ठ	**गणहर विज्जासिद्धि=**विद्या की सिद्धि
सिरिसोम सुंदर गुरुणं=श्री सोमसुंदर गुरु के	**भणइ=**कहता है
	सीसो=शिष्य

अर्थ

तपागच्छ रूपी आकाश में सूर्य समान ऐसे युगश्रेष्ठ श्री सोमसुंदर गुरु के सुप्रसाद से जिन्होंने गणधर विद्या की सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे उनके शिष्य ने यह स्तोत्र बनाया है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

श्री वर्धमान जिन-स्तुति

52

卐 स्नातस्या-स्तुति 卐

स्नातस्याप्रतिमस्य मेरुशिखरे, शच्या विभोः शैशवे,
रूपालोकनविस्मयाहृतरस-भ्रान्त्या भ्रमच्चक्षुषा।
उन्मृष्टं नयनप्रभाधवलितं, क्षीरोदकाशङ्कया,
वक्त्रं यस्य पुनः पुनः स जयति, श्री वर्धमानो जिनः ॥1॥

हंसांसाहतपद्मरेणुकपिश-क्षीरार्णवाम्भोभृतैः,
कुम्भैरप्सरसां पयोधर-भर-प्रस्पर्द्धिभिः काञ्चनैः।
येषां मन्दररत्नशैलशिखरे, जन्माभिषेकः कृतः,
सर्वैः सर्वसुरासुरेश्वरगणै-स्तेषां नतोऽहं क्रमान् ॥2॥

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधर-रचितं, द्वादशाङ्गं विशालं,
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभै-र्धारितं बुद्धिमद्भिः।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं, ज्ञेयभावप्रदीपं,
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ॥3॥

निष्पङ्कव्योमनील-द्युतिमलसदृशं, बालचन्द्राभदंष्ट्रं,
मत्तं घण्टारवेण प्रसृतमदजलं, पूरयन्तं समन्तात्।
आरूढो दिव्यनागं विचरति गगने, कामदः कामरूपी,
यक्षः सर्वानुभूतिर्दिशतु मम सदा, सर्वकार्येषु सिद्धिम् ॥4॥

स्नातस्याप्रतिमस्य मेरु-शिखरे, शच्या विभोः शैशवे,
रूपालोकन-विस्मयाहृत-रस-भ्रान्त्याभ्रमच्चक्षुषा।
उन्मृष्टं नयन-प्रभा धवलितं, क्षीरोदका-शङ्कया,
वक्त्रं यस्य पुनः पुनः स जयति, श्री वर्धमानो जिनः ॥1॥

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

।। शब्दार्थ ।।

स्नातस्य=स्नान (अभिषेक) कराए हुए ।
अप्रतिमस्य=अनुपम
मेरुशिखरे=मेरु पर्वत पर
शच्या=इन्द्राणी द्वारा
विभो:=प्रभु के
शैशवे=शिशु अवस्था में
रूपा-लोकन=रूप को देखने से
विस्मयाहृत-रस=आश्चर्य से उत्पन्न हुआ उत्कृष्ट भाव
भ्रान्त्या=भ्रम से
भ्रमच्चक्षुषा=चंचल नेत्रों से
उन्मृष्टं=साफ किया गया
नयन-प्रभाधवलितं=नेत्र की प्रभा से उज्ज्वल बने हुए
क्षीरोदका-शङ्कया=क्षीर सागर के जल की आशंका से
वक्त्रं=मुँह
यस्य=जिनका
पुन:पुन:=बार-बार
स=वह
जयति=जय को प्राप्त होता है ।
श्री वर्धमानो जिन:=श्री महावीर स्वामी प्रभु

अर्थ

शिशु अवस्था में मेरु पर्वत के शिखर पर स्नात्र-अभिषेक कराए हुए प्रभु के रूप का अवलोकन करने से अद्‌भुत रस की भ्रांति से चंचल नेत्रोंवाली इन्द्राणी ने `क्षीरसागर का जल रह तो नहीं गया न ?' इस आशंका से जिसने स्व नेत्र कांति से उज्ज्वल बने मुख को बार बार साफ किया, ऐसे महावीर प्रभु जय पाते हैं ।

हंसांसाहत-पद्मरेणु-कपिश-क्षीरार्णवाम्भोभृतै:,
कुम्भैरप्सरसां पयोधर-भर-प्रस्पर्द्धिभि: काञ्चनै: ।
येषां मन्दर-रत्नशैल-शिखरे, जन्माभिषेक: कृत:,
सर्वै: सर्व-सुरा-सुरेश्वरगणैस्तेषां नतोऽहं क्रमान् ।।2।।

।। शब्दार्थ ।।

(हंस+अंस + आहत) हंसां साहत= हंस के पंखों से आहत (उडे हुए)
पद्मरेणु=कमल के पराग-कण
कपिश=पीला
क्षीरार्णव=क्षीरसागर
अम्भ:=पानी
भृतै:=भरा हुआ
कुम्भै:=घड़ों द्वारा

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

अप्सरसां=अप्सराओं के
पयोधर=स्तन
भर=समूह
प्रस्पर्द्धिभि:=स्पर्धा करनेवाले
काञ्चनै:=सुवर्ण
येषां=जिनके
मन्दर=मेरु पर्वत
रत्नशैल-शिखरे=रत्नशैल शिखर पर
जन्माभिषेक:=जन्म के समय अभिषेक
कृत:=किया गया
सर्वै:=सभी
सर्व=सब
सुरासुरेश्वर=सुर व असुर के इन्द्र
गणै:=समूह द्वारा
तेषां=उनको
नतोऽहं=नतमस्तक हूँ
क्रमान्=चरणों का

अर्थ

सभी जाति के सुरों और असुरों तथा सभी इन्द्रों द्वारा जिनका जन्माभिषेक, हंसों के पंखों से उड़े हुए कमल-पराग से पीले बने क्षीरसागर के जल से भरे हुए तथा अप्सराओं के स्तन-समूह की स्पर्धा करनेवाले सुवर्ण के घड़ों द्वारा मेरु पर्वत के रत्नशैल शिखर पर किया गया है, उन सभी के चरणों में मैं नतमस्तक हूँ ।

अर्हद् वक्त्र-प्रसूतं गणधर-रचितं द्वादशाङ्गं विशालं,
चित्रं बह्वर्थ-युक्तं, मुनिगण-वृषभैर्धारितं बुद्धि-मद्भि: ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरण-फलं, ज्ञेय-भाव प्रदीपं,
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिलं सर्वलौकेकसारं ।।3।।

शब्दार्थ

अर्हद्=अरिहंत
वक्त्र=मुख
प्रसूतं=उत्पन्न हुआ
गणधर-रचितं=गणधरों से विरचित
द्वादशाङ्गं=द्वादशांगी
विशालं=विस्तृत
चित्रं=अद्भुत
बह्वर्थयुक्तं=बहुत से अर्थों से युक्त
मुनिगण-वृषभै:=श्रेष्ठ मुनियों द्वारा
धारितं=धारण किए हुए
बुद्धिमद्भि:=बुद्धिमानों द्वारा
मोक्षाग्रद्वारभूतं=मोक्ष के अग्र द्वार समान
व्रत-चरण फलं=व्रत और चारित्र के फलवाला
ज्ञेय-भाव=जानने योग्य पदार्थ
प्रदीपं=दीपक
भक्त्या=भक्ति से

नित्यं=हमेशा
प्रपद्ये=स्वीकार करता हूँ
श्रुतं=श्रुत को
अहं=मैं
अखिलं=संपूर्ण
सर्व=समस्त
लोकैकसारं=लोक में एक सारभूत

अर्थ

श्री जिनेश्वर देव के मुख से अर्थ रूप में प्रगटित, गणधरों द्वारा सूत्र रूप में गूँथे हुए, बारह अंगवाले, विस्तीर्ण, अद्‌भुत रचना शैलीवाले, अनेक अर्थों से युक्त, बुद्धिनिधान श्रेष्ठ मुनियों द्वारा धारण किए हुए, मोक्ष के द्वार समान, व्रत और चारित्र के फलवाले, समस्त ज्ञेय पदार्थों को जानने में दीपक समान और समस्त विश्व में अद्वितीय सारभूत ऐसे समस्त श्रुत का मैं नित्य भक्तिपूर्वक आश्रय करता हूँ ।

निष्पङ्क-व्योम-नील-द्युतिमलसदृशं, बालचन्द्राभदंष्ट्र,
मत्तं घण्टारवेण प्रसृत-मदजलं पूरयन्तं समन्तात् ।
आरूढो दिव्यनागं विचरति गगने कामदः कामरूपी,
यक्षः सर्वानुभूतिर्दिशतु मम सदा सर्वकार्येषु सिद्धिम् ।।4।।

शब्दार्थ

निष्पङ्क=बादल रहित
व्योम=आकाश
नीलद्युतिं=नीलवर्ण की कांति
अलसदृशं=आलस्य भरी दृष्टि
बालचन्द्राभ=दूज के चांद समान
दंष्ट्रं=दाढ़
मत्तं=मत्त
घण्टा-रवेण=घंट के नाद से
प्रसृत=बहते हुए
मद-जलं=मद जल
पूरयन्तं=भरते हुए
समन्तात्=चारों ओर से
आरूढो=चढ़े हुए
दिव्यनागं=दिव्य हाथी
विचरति=विचरण करता है
गगने=आकाश में
कामद=कामनाओं को पूर्ण करनेवाला
कामरुपी=इच्छित रूप करनेवाला
यक्षः=यक्ष
सर्वानुभूति=सर्वानुभूति (नाम है)
दिशतु=प्रदान करे
मम=मुझे
सदा=हमेंशा
सर्वकार्येषु=सभी कार्यों में
सिद्धिम्=सिद्धि

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

अर्थ

बादल रहित स्वच्छ आकाश की नील-प्रभा को धारण करनेवाले, आलस्य से मंद दृष्टिवाले, दूज के चांद की तरह वक्र दाढ़वाले, घंटनाद से मत्त, झरते हुए मदजल को चारों ओर फैलाते हुए ऐसे दिव्य हाथी पर बिराजमान, मनःकामनाओं को पूर्ण करनेवाले, इच्छित रूप करनेवाले और आकाश में विचरण करने वाले सर्वानुभूति यक्ष मुझे सभी कार्यों में सिद्धि प्रदान करे।

विवेचन

इस स्तुति के कर्ता के कर्ता कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी के शिष्य श्री बालचन्द्राचार्यजी है। पहले तो उनके द्वारा विरचित इस स्तुति को संघ ने मान्य नहीं की थी, परंतु बाद में वे मरकर व्यंतर बने और जैन संघ के ऊपर उपद्रव करने लगे, तब संघ ने जिनमत से अविरुद्ध होने के कारण इस स्तुति को मान्यता प्रदान की तब से चतुदर्शी, चौमासी व संवत्सरी प्रतिक्रमण में यह स्तुति बोली जाती है।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सकलार्हत्-स्तोत्र (चैत्यवंदन)

53

卐 मूल-सूत्र 卐

सकलार्हत्-प्रतिष्ठान-मधिष्ठानं शिवश्रियः ।
भूर्भुवःस्वस्त्रयीशान-मार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ।।1।।

नामाऽऽकृति-द्रव्य-भावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मि-न्नर्हतः समुपास्महे ।।2।।

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभस्वामिनं स्तुमः ।।3।।

अर्हन्तमजितं विश्व-कमलाकर-भास्करम् ।
अम्लान-केवलादर्श-सङ्क्रान्त-जगतं स्तुवे ।।4।।

विश्व-भव्य-जनाराम-कुल्या-तुल्या जयन्ति ताः ।
देशना-समये वाचः, श्री सम्भव-जगत्पतेः ।।5।।

अनेकान्त-मताम्भोधि-समुल्लासन-चन्द्रमाः ।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दनः ।।6।।

द्युसत्-किरीट-शाणाग्रो-त्तेजिताङ्घ्रि-नखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ।।7।।

पद्मप्रभ-प्रभोर्देह-भासः पुष्णन्तु वः श्रियम् ।
अन्तरङ्गारि-मथने, कोपाटोपादिवारुणाः ।।8।।

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्राय, महेन्द्र-महिताङ्घ्रये ।
नमश्चतुर्वर्ण-सङ्घ-गगनाभोग-भास्वते ।।9।।

चन्द्रप्रभ-प्रभोश्चन्द्र-मरीचि-निचयोज्ज्वला ।
मूर्तिर्मूर्त-सितध्यान-निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ।।10।।

करामलकवद् विश्वं, कलयन् केवलश्रिया ।
अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ।।11।।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सत्त्वानां परमानन्द-कन्दोद्भेद-नवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृत-निःस्यन्दी, शीतलः पातु वो जिनः ।।12।।

भवरोगाऽऽर्त्त-जन्तूनामगदङ्कार-दर्शनः ।
निःश्रेयस-श्री-रमणः, श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु वः ।।13।।

विश्वोपकारकीभूत-तीर्थकृत्कर्मनिर्मितिः ।
सुरासुर-नरैः पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ।।14।।

विमलस्वामिनो वाचः, कतक-क्षोद-सोदराः ।
जयन्ति त्रिजगच्चेतो-जल-नैर्मल्य-हेतवः ।।15।।

स्वयम्भूरमण-स्पर्द्धि, करुणारस-वारिणा ।
अनन्तजिदनन्तां वः, प्रयच्छतु सुख-श्रियम् ।।16।।

कल्पद्रुम-सधर्माण-मिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धा धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ।।17।।

सुधा-सोदर-वाग्-ज्योत्स्ना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः ।
मृग-लक्ष्मा तमः-शान्त्यै, शान्तिनाथजिनोऽस्तु वः ।।18।।

श्रीकुन्थुनाथो भगवान् सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरासुर-नृ-नाथाना-मेकनाथोऽस्तु वः श्रिये ।।19।।

अरनाथस्तु भगवाँश्चतुर्थार-नभो-रविः ।
चतुर्थ-पुरुषार्थश्री-विलासं वितनोतु वः ।।20।।

सुरासुर-नराधीश-मयूर-नव-वारिदम् ।
कर्म्मद्रून्मूलने हस्ति-मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ।।21।।

जगन्महामोह-निद्रा-प्रत्यूष-समयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशना-वचनं स्तुमः ।।22।।

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि निर्मलीकार-कारणम् ।
वारि-प्लवा इव नमेः पान्तु पाद-नखांशवः ।।23।।

यदुवंश-समुद्रेन्दुः कर्म-कक्ष-हुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद् वोऽरिष्ट-नाशनः ।।24।।

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभुस्तुल्य-मनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ।।25।।

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद्भुतश्रिया ।
महानन्द-सरो-राज-मरालायार्हते नमः ।।26।।

कृतापराधेऽपि जने, कृपा-मन्थर-तारयोः ।
ईषद्-बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिन-नेत्रयोः ।।27।।

जयति विजितान्यतेजाः, सुरासुराधीश-सेवितः श्रीमान् ।
विमलस्त्रास-विरहित-स्त्रिभुवन-चूडामणिर्भगवान् ।।28।।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो, वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्म-निचयो, वीराय नित्यं नमः ।
वीरात् त्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-धृति-कीर्ति-कान्ति-निचयः, श्रीवीर ! भद्रं दिश ।।29।।

अवनितल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वरभवनगतानां दिव्य-वैमानिकानाम् ।
इह मनुज-कृतानां, देवराजार्चितानां,
जिनवर-भवनानां, भावतोऽहं नमामि ।।30।।

सर्वेषां वेधसामाद्य-मादिमं परमेष्ठिनाम् ।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं, श्रीवीरं प्रणिदध्महे ।।31।।

देवोऽनेक-भवार्जितोर्जित-महा-पाप-प्रदीपानलो,
देवः सिद्धि-वधु-विशाल-हृदया-लङ्कार-हारोपमः ।
देवोऽष्टादश-दोष-सिन्धुरघटा-निर्भेद-पञ्चाननो,
भव्यानां विदधातु वाञ्छितफलं श्रीवीतरागो जिनः ।।32।।

ख्यातोऽष्टापदपर्वतो गजपदः, सम्मेतशैलाभिधः,
श्रीमान् रैवतकः प्रसिद्धमहिमा, शत्रुञ्जयो मण्डपः,
वैभारः कनकाचलोऽर्बुदगिरिः, श्रीचित्रकूटादय-,
स्तत्र श्रीऋषभादयो जिनवराः, कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ।।33।।

सकलार्हत्-प्रतिष्ठान-मधिष्ठानं शिवश्रियः ।
भूर्भुवःस्वस्त्रयीशान-मार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥1॥

।। शब्दार्थ ।।

सकलार्हत् प्रतिष्ठानं=समस्त अरिहंतों में रहा हुआ ।
शिवश्रियः=मोक्षरूपी लक्ष्मी
अधिष्ठानं=निवासस्थान
भूर्भुवःस्वस्=पाताल लोक, मृत्युलोक और स्वर्गलोक

त्रयी=तीन
ईशानं=अधिपति
आर्हन्त्यं=अरिहंतपने का
प्रणिदध्महे=ध्यान करते हैं ।

अर्थ

जो समस्त अरिहंतों में रहा हुआ है, मोक्ष-लक्ष्मी का निवासस्थान है, जिसका पाताल, मर्त्यलोक और स्वर्गलोक पर पूर्ण आधिपत्य है, ऐसे आर्हन्त्य का हम ध्यान करते हैं ।

विवेचन

त्रिषष्टी शलाका पुरुष चरित्र ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यजी ने जिन 24 तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति की हैं, वही स्तुति **'सकलार्हत्-स्तोत्र'** के नाम से प्रसिद्ध है । पाक्षिक, चातुर्मासिक व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के प्रारंभ में **'चैत्यवंदन'** के रूप में यह स्तोत्र पढा जाता है । इस स्तोत्र में 24 जिनेश्वरों को नमस्कार होने से इसे **'चतुर्विंशति जिन नमस्कार'** भी कहा जाता है ।

इस स्तोत्र के मंगलाचरण के रूप में समस्त अरिहंतों में विद्यमान 'आर्हन्त्य' अर्थात् अरिहंतपने का ध्यान किया गया है । यह आर्हन्त्य मोक्षलक्ष्मी का आश्रय स्थान है अर्थात् इस अरिहंतपने का ध्यान करनेवाला ध्याता अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है । इस 'आर्हंत्य' का तीनों लोकों में एकछत्री शासन है । कहा भी है, **''आज्ञाराद्धा विराद्धा च शिवाय च भवाय च ।''**

हे प्रभो ! आपकी आज्ञा की आराधना मोक्ष के लिए है और आपकी आज्ञा की विराधना संसार के लिए है ।'

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

पाताल, मृत्यु व स्वर्गलोक में जो भी प्रभु आज्ञा की आराधना करता है उसे एकांततः लाभ होता है और जो प्रभु आज्ञा की विराधना करता है, उसे एकांततः नुकसान होता है ।

अरिहंत पद तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ पद होने से मंगल के रूप में भी इस पद का सर्वप्रथम ध्यान किया गया है ।

नामाकृतिद्रव्यभावैः पुनतस्त्रिजगज्जनं ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मिन्नर्हतः समुपास्महे ।।2।।

।। शब्दार्थ ।।

नामाकृति=नाम और स्थापना
द्रव्यभावैः=द्रव्य और भाव से
पुनतः=पवित्र कर रहे
त्रिजगज्जनं=तीन जगत् के समूह को
क्षेत्रे=क्षेत्र में
काले=काल में
सर्वस्मिन्=सभी
अर्हतः=अरिहंत की
समुपास्महे=अच्छी तरह से उपासना करते हैं ।

अर्थ

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप चारों निक्षेपों द्वारा जो सभी क्षेत्र व सर्वकाल में तीन लोक के जीवों को पवित्र कर रहे हैं, उन अरिहंतों की हम सम्यग् प्रकार से उपासना करते हैं ।

विवेचन

इस स्तुति द्वारा समस्त अरिहंतों के समस्त प्रकार के उपकारों को याद किया गया है । श्री अरिहंत परमात्मा अपने चारों निक्षेपों द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार करते हैं । कहा भी है-**'नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।'** हे परमात्मा ! अचिंत्य-महिमावाले आपका स्तवन तो दूर रहो, सिर्फ आपके नाम का स्मरण भी जगत् के जीवों को भवसागर से पार उतार देता है ।'

कहा है-'प्रभु नाम की औषधी, खरे भाव से खाय ।
रोग शोक आवे नहीं, सवि संकट मिट जाय ।।

नाम की तरह प्रभु की स्थापना (मूर्ति) का भी उतना ही महत्त्व है- कहा है-**'जिनप्रतिमा जिन सारिखी'** जिनेश्वर की प्रतिमा जिनेश्वर के समान है ।

'विषमकाल जिनबिंब-जिनागम, भवियण कुं आधारा ।'

विषम काल में भवसागर तैरने के लिए जिन-प्रतिमा और जिनागम सर्वश्रेष्ठ आलंबन हैं ।

प्रभु द्रव्य निक्षेप से भी जगत् के जीवों का उपकार करते हैं । किसी वस्तु के भूत, भावी पर्याय को द्रव्य कहते हैं । मोक्ष में गए महावीर प्रभु और भविष्य में तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित किए हुए पद्मनाभप्रभु द्रव्य से तीर्थंकर कहलाते हैं । उनकी पूजा-स्तुति व भक्ति से भी कर्मों का नाश होता है ।

भावनिक्षेप से भी अरिहंत परमात्मा महान् उपकार करते हैं । समवसरण में बिराजमान धर्मदेशना दे रहे परमात्मा भावनिक्षेप से अरिहंत कहलाते हैं । वाणी के 35 गुणों से युक्त प्रभु की देशना का श्रवण कर अनेक भव्य जीव सम्यक्त्व, देशविरति और सर्वविरति धर्म का स्वीकार करते हैं ।

अरिहंत परमात्मा अपने चारों निक्षेपों द्वारा सभी क्षेत्र व सर्वकाल में जगत् के जीवों पर उपकार करते हैं, ऐसे अरिहंत का हम ध्यान करते हैं ।

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभ-स्वामिनं स्तुमः ॥3॥

॥ शब्दार्थ ॥

आदिमं=पहले	**तीर्थनाथं=**तीर्थंकर
पृथिवीनाथं=राजा	**ऋषभस्वामिनं=**ऋषभदेव की
निष्परिग्रहं=साधु	**स्तुमः=**स्तुति करते हैं
च=और	

अर्थ

सर्वप्रथम राजा, सर्वप्रथम साधु और सर्वप्रथम तीर्थंकर ऐसे ऋषभदेव प्रभु की हम स्तुति करते हैं ।

विवेचन

इस भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में प्रथम तीन आरे तक युगलिक काल चल रहा था, उस समय यहाँ न तो कोई राजा था और न ही धर्म था । लोग युगलिक के रूप में ही जन्म लेते थे, वे अत्यंत ही भद्रिक

प्रकृति के होते थे । कल्पवृक्षों से ही उनकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती थीं । धीरे-धीरे कालक्रम से कल्पवृक्ष समाप्त होने लगे । कुलकरों के द्वारा हक्कार, मकार व धिक्कार व उसके बाद दंड नीति का प्रारंभ हुआ । लोक-व्यवस्था के लिए नाभि कुलकर के निर्देशानुसार ऋषभदेव सर्वप्रथम राजा बने । ऋषभदेव 63 लाख पूर्व वर्ष तक राजा के रूप में रहे । उसके बाद अपने भोगावली कर्मों को क्षीण हुए जानकर उन्होंने दीक्षा अंगीकार की और वे सर्वप्रथम साधु बने । 1000 वर्ष की कठोर साधना के फलस्वरूप उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया । उसके बाद उन्होंने चतुर्विध संघ रूपी तीर्थ की स्थापना की । इस प्रकार वे सर्वप्रथम तीर्थंकर बने । ऐसे आदिनाथ प्रभु की हम स्तुति करते हैं ।

अर्हन्तमजितं विश्व-कमलाकर-भास्करम् ।
अम्लान-केवला-दर्श-सङ् क्रान्त-जगतं स्तुवे ॥4॥

॥ शब्दार्थ ॥

अर्हन्तं=पूजनीय	**अम्लान=**निर्मल
अजितं=अजितनाथ	**केवलादर्श=**केवलज्ञान रूपी दर्पण
विश्व-कमलाकर=विश्व के प्राणी रूपी कमलों का समूह	**सङ्क्रान्त-जगतं=**जिसमें संपूर्ण जगत् प्रतिबिंबित हुआ है ।
भास्करं=सूर्य	**स्तुवे=**मैं स्तुति करता हूँ ।

अर्थ

जगत् के प्राणी रूपी कमलों के समूह को विकसित करने में सूर्य के समान और जिनके केवलज्ञान रूपी दर्पण में संपूर्ण जगत् प्रतिबिंबित हुआ है, ऐसे अजितनाथ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ।

विवेचन

इस स्तुति में अजितनाथ प्रभु को तेजस्वी सूर्य की उपमा दी गई है । सूर्य के साथ कमल खिल उठता है, उसी प्रकार अजितनाथ प्रभु जगत् के भव्य जीव रूपी कमलों को विकसित करने में सूर्य के समान हैं । वे अपने उपदेश द्वारा भव्य जीवों की मोहनिद्रा को दूर करते हैं ।

जिस प्रकार निर्मल दर्पण में वस्तु का प्रतिबिंब गिरता है, उसी प्रकार अजितनाथ प्रभु के केवलज्ञान रूपी दर्पण में संपूर्ण जगत् का प्रतिबिंब पडा

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

हुआ है-अर्थात् अजितनाथ प्रभु जगत् के समस्त पदार्थों के समस्त पर्यायों के पूर्ण ज्ञाता हैं ।

विश्वभव्य-जनाराम-कुल्या-तुल्या जयन्ति ताः ।
देशना-समये वाचः श्री सम्भव-जगत्पतेः ।।5।।

।। शब्दार्थ ।।

विश्व-भव्य-जनाराम=विश्व के भव्य जीव रूपी बगीचा	**देशनासमये=**देशना के समय में
कुल्या-तुल्या=नाली के समान	**वाचः=**वाणी
जयन्ति=जय पाते हैं ।	**श्रीसंभवजगत्पतेः=**श्री संभवनाथ प्रभु की
ताः=वे	

अर्थ

धर्मोपदेश करते समय जिनकी वाणी भव्य जीव रूपी बगीचे के सिंचन के लिए नाली के समान है, ऐसे संभवनाथ प्रभु की वाणी जय को प्राप्त हो ।

विवेचन

जिस प्रकार बगीचे की नाली, बगीचे के पेड़-पौधों का सिंचन कर उन्हें हरा-भरा रखती है, उसी प्रकार देशना के समय संभवनाथ प्रभु की वाणी विश्व के भव्य जीव रूपी बगीचे का नाली की तरह सिंचन करती है ।

बगीचे में जल का सिंचन बंद हो जाय तो सभी पेड़-पौधे मुर्झा जाएंगे और उनका सिंचन होता रहे तो वे पेड़-पौधे विकसित होते रहते हैं । संभवनाथ प्रभु अपनी वाणी से उपदेश द्वारा भव्य जीव रूपी बगीचें का सिंचन करते रहते हैं और इस प्रकार उन्हें मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहते हैं ।

अनेकान्त-मताम्भोधि-समुल्लासन-चन्द्रमाः ।
दद्यादमन्दमानन्दं, भगवानभिनन्दनः ।।6।।

।। शब्दार्थ ।।

अनेकान्तमत=स्याद्वाद दर्शन	**दद्याद्=**प्रदान करे
अम्भोधि=सागर	**अमन्दं=**अत्यधिक ।
समुल्लासनचन्द्रमा=उल्लसित करने में चंद्र समान	**आनन्दं=**आनन्द को ।
	भगवान् अभिनन्दन=अभिनंदनस्वामी

अर्थ

स्याद्वाद मत रुपी सागर को उल्लसित करने में चंद्र समान अभिनंदन स्वामी अत्यधिक आनंद प्रदान करें ।

विवेचन

चंद्रमा को देखकर समुद्र उल्लसित होता है। अनेकांत मत रूपी सागर को उल्लसित करने में अभिनंदन स्वामी चंद्र तुल्य है। प्रभु की वाणी अनेकांत मत को अत्यधिक पुष्ट करती है । ये अभिनंदन प्रभु जगत् के जीवों को अत्यधिक आनंद प्रदान करने वाले हैं अर्थात् जो भव्य जीव प्रभु की अनेकांत युक्त वाणी का श्रवण करता है, उसे परम आनंद की अनुभूति हुए बिना नहीं रहती है ।

द्युसत्किरीट-शाणाग्रोत्तेजिताङ्घ्रि-नखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ॥7॥

शब्दार्थ

द्युसत्=देव,
किरीट=मुकुट
शाणाग्रोत्तेजित=शाण (कसौटी) के अग्रभाग से उत्तेजित ।
अङ्घ्रि=चरणों की
नखावलिः=नखों की पंक्ति
तनोतु=प्रदान करे
अभिमतानि=मनोवांछित को
वः=तुम्हारे

अर्थ

जिनके चरणों की नख-पंक्तियाँ देवों के मुकुट रूपी शाण के अग्रभाग से चकचकित हो गई हैं, ऐसे सुमतिनाथ प्रभु तुम्हारे मनोवांछित को प्रदान करे ।

विवेचन

अरिहंत प्रभु के चरणों में प्रतिदिन करोड़ों देवता नमस्कार करते हैं । नमस्कार करते समय देवताओं के मुकुट भी प्रभु के चरणों के नखों का स्पर्श करते हैं। कवि यहाँ कल्पना करते हैं कि देवताओं के मुकुट रूपी शाण के अग्र भाग से घिसने के कारण प्रभु के चरणों के नाखून और अधिक उज्ज्वल बनते हैं। ऐसे सुमतिनाथ प्रभु तुम्हारे मनोवांछित को पूर्ण करे ।

पद्मप्रभप्रभोर्देह-भासः पुष्णन्तु वः श्रियम् ।
अन्तरङ्गारि-मथने कोपाटोपादिवारुणाः ॥8॥

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

।। शब्दार्थ ।।

पद्मप्रभप्रभो:=पद्मप्रभ स्वामी के	**अन्तरंगारि-मथने=**अंतरंग शत्रुओं को मथने में
देहभास:=देह की कांति	**कोपाटोपाद्=**कोप के आवेश से
श्रियं=लक्ष्मी को	**इव=**मानो
पुष्णन्तु=पुष्ट करे	**अरुणा:=**लाल
व:=तुम्हारी	

अर्थ

अंतरंग शत्रुओं को नष्ट करने के लिए क्रोध के आवेग से मानो लाल वर्ण की हो गई है ऐसे पद्मप्रभस्वामी के शरीर की कांति तुम्हारी आत्म-लक्ष्मी को पुष्ट करे ।

विवेचन

शत्रु का हनन करने के लिए कोप करना पड़ता है, कोप करने से मुँह लाल हो जाता है । पद्मप्रभस्वामी के देह की कांति लालवर्ण की है । इस लाल वर्ण को देखकर कवि यहाँ उत्प्रेक्षा करते हैं कि अंतरंग शत्रुओं को जडमूल से उखाड़ने के लिए प्रभु ने इतना अधिक कोप किया है कि इस कोप के कारण उनका पूरा शरीर लाल वर्ण का हो गया है । ऐसे पद्मप्रभ स्वामी के देह की कांति तुम्हारी आत्म-लक्ष्मी को खूब-खूब बढ़ाए ।

श्रीसुपार्श्व-जिनेन्द्राय, महेन्द्र-महिताङ्घ्रये ।
नमश्चतुर्वर्ण-सङ्घ-गगनाभोग-भास्वते ।।9।।

।। शब्दार्थ ।।

श्री सुपार्श्व-जिनेन्द्राय=श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र को	**नम:=**नमस्कार हो ।
महेन्द्र-महिताङ्घ्रये=इन्द्रों के द्वारा भी जिनके चरण पूजित है ।	**चतुर्वर्ण-सङ्घ=**चतुर्विध संघ
	गगनाभोग=आकाश मंडल
	भास्वते=सूर्य समान

अर्थः

चतुर्विध संघ रूपी आकाशमंडल में सूर्य समान तथा महेन्द्रों से भी पूजित चरण कमलवाले श्री सुपार्श्व जिनेश्वर को नमस्कार हो ।

विवेचन

इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ पूजा के पात्र श्री अरिहंत परमात्मा हैं । ऐसे अरिहंत परमात्मा को चक्रवर्ती और देव-देवेन्द्र भी नमस्कार करते हैं । इस स्तुति में यह बतलाया गया है कि सुपार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में इन्द्र महाराजा भी नमन करते हैं...ऐसे सुपार्श्वनाथ प्रभु चतुर्विध संघ रूपी गगन मंडल में तेजस्वी सूर्य की भाँति देदीप्यमान है ।

चन्द्रप्रभप्रभोश्चन्द्र-मरीचि-निचयोज्ज्वला ।
मूर्तिर्मूर्त-सितध्यान-निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ।।10।।

।। शब्दार्थ ।।

चन्द्रप्रभ-प्रभोः=चंद्रप्रभस्वामी की ।	**निर्मिता**=बनाई हुई हो ।
चन्द्र-मरीचि=चन्द्र की किरणें ।	**इव**=ऐसी
निचयोज्ज्वला=समूह से उज्ज्वल	**श्रिये**=कल्याण के लिए
मूर्तिः=काया	**अस्तु**=हो
मूर्तसितध्यान=मूर्तिमान् शुक्ल ध्यान	**वः**=तुम्हारे

अर्थ

चन्द्र की किरणों के समूह समान उज्ज्वल और शुक्ल ध्यान से निर्मित ऐसी चन्द्रप्रभस्वामी की शुक्ल मूर्ति (काया) तुम्हारी आत्म-लक्ष्मी के लिए हो ।

विवेचन

चन्द्रप्रभ स्वामी की काया चन्द्र किरणों की कांति के समान अत्यंत ही उज्ज्वल है, वह तेजस्वी काया ऐसी प्रतीत हो रही है मानो प्रभु, शुक्ल ध्यान की साक्षात् मूर्ति हैं ।

करामलकवद् विश्वं, कलयन् केवलश्रिया ।
अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ।।11।।

।। शब्दार्थ ।।

करामलकवद्=हाथ में रहे आंवले की तरह	**अचिन्त्य-माहात्म्य-निधिः**=कल्पनातीत महिमा के भंडार
विश्वं=जगत् को	**सुविधिः**=सुविधिनाथ प्रभु
कलयन्=देखते हुए	**बोधये**=बोधि के लिए
केवलश्रिया=केवलज्ञान लक्ष्मी से	**अस्तु**=हो
	वः=तुम्हारे लिए

अर्थ

जो केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से हाथ में रहे आँवले की भाँति जगत् को देख रहे हैं और जो कल्पनातीत प्रभाव के निधि हैं, ऐसे सुविधिनाथ प्रभु तुम्हारी बोधि के लिए हो ।

विवेचन

जिस प्रकार हम हथेली में रखी वस्तु को अच्छी तरह से जान सकते है, उसी प्रकार सुविधिनाथ प्रभु जगत् में रहे समस्त पदार्थों के समस्त भावों को प्रत्यक्ष देखते हैं । उनके लिए जगत् का कोई भी पदार्थ अदृश्य नहीं है । उनका प्रभाव भी कल्पनातीत है । ऐसे परमात्मा की भक्ति करने से बोधि-लाभ (सम्यग्दर्शन) की प्राप्ति होती है ।

सत्त्वानां परमानन्द-कन्दोद्भेद-नवाम्बुदः ।
स्याद्वादामृत-निःस्यन्दी, शीतलः पातु वो जिनः ।।12।।

।। शब्दार्थ ।।

सत्त्वानां=प्राणियों के	**निःस्यन्दी**=बरसानेवाला
परमानन्द=उत्कृष्ट आनंद	**शीतलः**=शीतलनाथ
कन्दोद्भेद=कंद के उद्भेद के लिए	**पातु**=रक्षण करे
नवाम्बुदः=नवीन मेघ समान	**वः**=तुम्हारा
स्याद्वादामृत=स्याद्वाद रूपी अमृत	**जिनः**=वीतराग

अर्थ

जगत् के जीवों के परम आनंद रूपी कंद (अंकुर) को प्रगटित करने

में नवीन मेघ के समान और स्याद्वाद रूपी अमृत को बरसाने वाले शीतलनाथ प्रभु आपका रक्षण करे ।

विवेचन

इस स्तुति में शीतलनाथ प्रभु की दो विशेषताएँ बतलाई हैं । जिस प्रकार सर्वप्रथम मेघ के बरसने से बीज में अंकुर फूटते हैं, उसी प्रकार शीतलनाथ प्रभु की भक्ति करने से अपनी आत्मा में परमानंद का अंकुर प्रस्फुटित होता है । प्रभु की देशना स्याद्वादमय होती है । ये प्रभु स्याद्वाद रूपी अमृत को बरसानेवाले हैं । जिस अमृत के पान से आत्मा में रहा मोह रूपी विष सदा के लिए नष्ट हो जाता है । ऐसे शीतलनाथ प्रभु आपका रक्षण करें ।

भव-रोगार्त्त-जन्तूना-मगदङ्कारदर्शनः ।
निःश्रेयस-श्री-रमणः-श्रेयांस श्रेयसेऽस्तु वः ।।13।।

।। शब्दार्थ ।।

भव-रोगार्त=संसार के रोग से पीड़ित
जन्तूनां=प्राणियों के लिए
अगदङ्कार-दर्शनः=वैद्य के दर्शन समान
निःश्रेयस-श्री-रमणः=मुक्ति रूपी लक्ष्मी के पति
श्रेयांस=श्रेयांसनाथ
श्रेयसे=कल्याण के लिए
अस्तु=हो
वः=तुम्हारे

अर्थ

संसार के रोग से पीड़ित प्राणियों के लिए जिनका दर्शन, वैद्य के दर्शन समान है और जो मुक्ति रूपी लक्ष्मी के पति हैं, ऐसे श्रेयांसनाथ प्रभु आपके कल्याण के लिए हो ।

विवेचन

रोग से पीड़ित व्यक्ति जैसे ही कुशल वैद्य को देखता है, इसके साथ ही उसका दर्द आधा हो जाता है, वह शांति का अनुभव करता है । बस, इसी प्रकार भव-भ्रमण के रोग से दुःखी प्राणियों के लिए श्रेयांसनाथ प्रभु का दर्शन एक कुशल वैद्य के दर्शन के समान है । श्रेयांसनाथ प्रभु मुक्ति रूपी लक्ष्मी के पति है, ऐसे वे प्रभु आपके कल्याण के लिए हो ।

विश्वोपकारकीभूत-तीर्थकृत् कर्म-निर्मितिः ।
सुरासुर-नरैः पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ।।14।।

।। शब्दार्थ ।।

विश्वोपकारकीभूतः=विश्व पर उपकार करनेवाले
तीर्थकृत् कर्म-निर्मितिः=तीर्थंकर नाम कर्म को बांधनेवाले
सुर-असुर-नरैः=सुर-असुर तथा मनुष्यों द्वारा
पूज्यो=पूजनीय
वासुपूज्यः=वासुपूज्य स्वामी।
पुनातु=पवित्र करें
वः=तुम्हें

अर्थ

विश्व पर महान् उपकार करने वाले, तीर्थंकर नाम कर्म को बाँधने वाले तथा सुर-असुर तथा मनुष्यों से पूज्य ऐसे वासुपूज्य स्वामी आपको पवित्र करें।

विवेचन

जैन दर्शन में पुण्य प्रकृति के 42 भेद बतलाए हैं, उनमें सर्वाधिक उपकारक तीर्थंकर नामकर्म है। अन्य पुण्य प्रकृतियों का उदय तो नए पाप के बंध का भी कारण बन सकता है, जैसे-वेश्या को प्राप्त रूप आदि। परंतु तीर्थंकर नाम कर्म की कर्म प्रकृति ऐसी है, जो अवश्य ही स्व-पर का हित करती है। वासुपूज्य स्वामी ने अपने पूर्व के तीसरे भव में जगत् पर सबसे अधिक उपकार करनेवाले तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया था। उस कर्म के उदय से उन्होंने अनेक भव्य जीवों पर महान् उपकार किया। ये वासुपूज्य स्वामी सुर-असुर व मनुष्यों से भी पूजनीय हैं। ऐसे वासुपूज्य स्वामी आपका भी कल्याण करें।

विमलस्वामिनो वाचः कतक-क्षोद-सोदराः ।
जयन्ति त्रिजगच्चेतो-जल-नैर्मल्य-हेतवः ।।15।।

।। शब्दार्थ ।।

विमलस्वामिनो=विमलनाथ प्रभु की।
वाचः=वाणी
कतक-क्षोद=कतक का चूर्ण
सोदरा=समान
जयन्ति=जय प्राप्त हो।
त्रिजगच्चेतो=तीन जगत् के चित्त
जल-नैर्मल्य=जल की निर्मलता
हेतवः=कारण

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

अर्थ

तीन भुवन में रहे हुए प्राणियों के चित्त रूपी निर्मल जल को साफ करने के लिए कतक के चूर्ण समान विमलनाथ प्रभु की वाणी जय को प्राप्त हो ।

विवेचन

जिस प्रकार मलिन जल में कतक का चूर्ण डालने से वह जल एकदम स्वच्छ हो जाता है; बस, इसी प्रकार त्रिभुवन के प्राणियों का चित्त, जो मोह से मलिन बना हुआ है, उस चित्त को शुद्ध करने के लिए विमलनाथ प्रभु की वाणी कतक के चूर्ण समान है, अर्थात् जो प्राणी विमलनाथ प्रभु की वाणी का पान करता है, उसके चित्त का मैल दूर हुए बिना नहीं रहता है । ऐसे विमलनाथ प्रभु की वाणी जय को प्राप्त हो ।

स्वयम्भूरमण-स्पर्द्धि, करुणारस-वारिणा ।
अनन्तजिदनन्तां वः, प्रयच्छतु सुख-श्रियम् ।।16।।

शब्दार्थ

स्वयम्भूरमण=स्वयंभूरमण नाम का समुद्र	**अनन्तजिद्**=अनंतनाथ प्रभु
स्पर्द्धि=स्पर्धा करनेवाला	**अनन्तां**=अनंत
करुणारस-वारिणा=करुणा रूपी पानी से	**वः**=तुम्हे
	प्रयच्छतु=प्रदान करे
	सुख-श्रियम्=सुख रूपी लक्ष्मी

अर्थ

दया रुपी जल से स्वयंभूरमण समुद्र की स्पर्धा करनेवाले श्री अनंतनाथ प्रभु तुम्हे अनंत सुख की लक्ष्मी प्रदान करें ।

विवेचन

मध्यलोक में अंत में स्वयंभूरमण समुद्र आया हुआ है, जिसका व्यास आधा राजलोक प्रमाण है । जिसमें अमाप जल है । अनंतनाथ प्रभु के ह्रदय में दया का जो जल है, वह इस स्वयंभूरमण समुद्र के जल से भी बढ़कर है । दुनिया में अत्यंत समृद्ध व्यक्ति भी जो सुख प्रदान करता है, वह क्षणजीवी और अस्थायी होता है जबकि अनंतनाथ की भक्ति से जो सुख मिलता है,

वह अनंत और स्थायी होता है ।

कल्पद्रुम-सधर्माण-मिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धा-धर्म-देष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ।।17।।

।। शब्दार्थ ।।

कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष	**चतुर्धा=**चार प्रकार के
सधर्माणम्=समान	**धर्मदेष्टारं=**धर्म का उपदेश देनेवाले
इष्टप्राप्तौ=इष्ट की प्राप्ति में	**धर्मनाथं=**धर्मनाथ की
शरीरिणां=प्राणियों के	**उपास्महे=**उपासना करते हैं ।

अर्थ

प्राणियों को इष्ट वस्तु की प्राप्ति में कल्पवृक्ष के समान और दान आदि चार प्रकार के धर्म का उपदेश देनेवाले धर्मनाथ प्रभु की हम उपासना करते हैं ।

विवेचन

कल्पवृक्ष मनोवांछित प्रदान करते है, अर्थात् उनसे जो मांगे वह मिलता है, इसी प्रकार धर्मनाथ प्रभु प्राणियों के मनोवांछित को पूर्ण करने में साक्षात् कल्पवृक्ष है । अरे ! प्रभु तो कल्पवृक्ष से भी बढ़कर है । कल्पवृक्ष तो मांगने पर ही प्रदान करता है, जबकि प्रभु तो बिना मांगे ही प्रदान करने वाले है । धर्मनाथ प्रभु ने दान-शील-तप और भावरूप चार प्रकार के धर्म का उपदेश दिया है, ऐसे धर्मनाथ प्रभु की हम उपासना करते हैं ।

सुधा-सोदर-वाग्-ज्योत्स्ना-निर्मलीकृत-दिङ्मुखः ।
मृग-लक्ष्मा तमः शान्त्यै शान्तिनाथजिनोऽस्तु वः ।।18।।

शब्दार्थ

सुधा-सोदर=अमृत के समान ।	**तमःशान्त्यै=**अंधकार की शांति के लिए (अज्ञान निवारण के लिए)
वाग्=वाणी	**अस्तु=**हो
ज्योत्स्ना=चन्द्रिका ।	**शान्तिनाथ जिनो=**शांतिनाथ प्रभु
निर्मलीकृत=निर्मल किया है ।	**वः=**तुम्हारे
दिङ्मुखः=दिशाओं के मुख	
मृग-लक्ष्मा=हिरण के चिह्नवाले	

अर्थ

अमृत तुल्य धर्म देशना द्वारा दिशाओं के मुख को उज्ज्वल करनेवाले और हिरण के लांछन को धारण करने वाले शांतिनाथ प्रभु आपके अज्ञान के नाश के लिए हो ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा समवसरण में बैठकर जब धर्मदेशना देते हैं, तब वे स्वयं पूर्व दिशा के सन्मुख बैठते है, परन्तु तीन दिशाओं में देवतागण उनके प्रतिबिंब स्थापित करते है । इस प्रकार वे चतुर्मुख होकर चारों दिशाओं में धर्म का उपदेश देते हैं । उपदेश समय अपनी वाणी द्वारा वे चारों दिशाओं के मुख को उज्ज्वल करते हैं । जिस प्रकार मृग के चिह्नवाला चंद्रमा अंधकार को दूर करता है, उसी प्रकार मृग के लांछनवाले शांतिनाथ प्रभु भव्य जीवों के अज्ञान-अंधकार का नाश करते है ।

श्रीकुन्थुनाथो भगवान् सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरा-सुर-नृनाथानामेकनाथः श्रियेऽस्तु वः ।।19।।

।। शब्दार्थ ।।

श्री कुन्थुनाथो भगवान्=17वें तीर्थंकर श्री कुंथुनाथ भगवान	मनुष्यों के नाथ
सनाथो=सहित	**एकनाथ**=एक मात्र स्वामी
अतिशयर्द्धिभिः=अतिशयों की ऋद्धि से	**श्रिये**=लक्ष्मी के लिए
सुरा-सुर-नृ-नाथानाम्=सुर असुर और	**अस्तु**=हो
	वः=तुम्हारी

अर्थ

अतिशयों की ऋद्धि से युक्त और सुर, असुर व मनुष्यों के नायकों के भी अधिपति श्री कुंथुनाथ भगवान तुम्हारी आत्मलक्ष्मी के लिए हो ।

विवेचन

तारक तीर्थंकर परमात्मा के जन्म से चार, कर्मक्षय से ग्यारह और देवताकृत 19 अर्थात् कुल 34 अतिशय होते हैं । उनकी वाणी 35 गुणों से युक्त होती है । श्री कुंथुनाथ भगवान इन सब अतिशयों से युक्त है । ये प्रभु देवों के स्वामी देवेन्द्र, असुरों के स्वामी, असुरेन्द्र तथा मनुष्यों के स्वामी,

चक्रवर्ती के भी स्वामी हैं अर्थात् वे भी प्रभु को अपने नाथ के रूप में स्वीकार करते हैं । ऐसे कुंथुनाथ स्वामी तुम्हे आत्मा की शाश्वत लक्ष्मी प्रदान करे ।

अरनाथस्तु भगवान् चतुर्थार-नभो-रविः ।
चतुर्थ-पुरुषार्थ-श्री-विलासं वितनोतु वः ।।20।।

।। शब्दार्थ ।।

अरनाथः=श्री अरनाथ भगवान
तु=और
भगवान्=प्रभु
चतुर्थार-नभोरवि=चौथे आरे के गगन मंडल में सूर्य समान
चतुर्थ-पुरुषार्थ=मोक्ष
श्री=लक्ष्मी
विलासं=विलास को
वितनोतु=प्रदान करें
वः=आपको

अर्थ

चौथे आरे रूपी आकाश मंडल में सूर्य समान ऐसे अरनाथ प्रभु तुम्हे मोक्ष-लक्ष्मी का विलास प्रदान करें ।

विवेचन

इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में श्री अरनाथ भगवान् सूर्य के समान हुए हैं । सूर्य तो बाहर का अंधकार दूर करता है, जबकि अरनाथ प्रभु ने आत्मा के मोह व अज्ञान रूपी अंधकार को दूर किया है । अन्य धन-संपत्ति तो क्षणिक व क्लेश का कारण है, एक मात्र मोक्षलक्ष्मी ही शाश्वत और समस्त प्रकार के क्लेशों का क्षय करनेवाली है । अतः प्रभु से भी यही प्रार्थना की गई है कि वे शाश्वत मोक्षलक्ष्मी प्रदान करे ।

सुरासुर-नराधीश-मयूर-नव-वारिदम् ।
कर्म्म-द्रून्मूलने हस्ति-मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ।।21।।

।। शब्दार्थ ।।

सुरासुरनराधीश=सुर, असुर व मनुष्यों के अधिपति
मयूर-नव-वारिदं=मयूर के लिए नवीन मेघ समान
कर्म्म-द्रून्मूलने=कर्म रूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिए
हस्ति-मल्लं=ऐरावण हाथी के समान
मल्लिं=मल्लिनाथ प्रभु को
अभिष्टुमः=स्तुति करते हैं ।

अर्थ

सुर, असुर व मनुष्यों के अधिपति रूपी मयूर के लिए नवीन मेघ के समान तथा कर्मरूपी वृक्ष को उखाड़ने में ऐरावण हाथी के समान ऐसे मल्लिनाथ प्रभु की हम स्तुति करते हैं ।

विवेचन

गर्जना करते हुए बादलों को देखकर मोर नाचने लगता है । बस, इसी प्रकार मल्लिनाथ प्रभु का जन्म होता है और उन्हें देखकर सुर-असुर व मनुष्यों के अधिपति भी खुश हो जाते हैं । मल्लिनाथ प्रभु सभी को आनंद प्रदान करनेवाले हैं । जैसे सामान्य वस्तु को तो कोई भी तोड़ सकता है, परंतु पर्वत को चूर-चूर करने की ताकत तो वज्र में ही है । इसी प्रकार सामान्य वृक्ष को तो कोई भी हाथी उखाड़ देता है, परन्तु मल्लिनाथ प्रभु ने तो जिसकी जड़ अत्यंत ही मजबूत है, ऐसे कर्म रूपी वृक्ष को भी उखाड़ डाला है । सचमुच, कर्मवृक्ष को उखाड़ने में ऐरावण हाथी की उपमा यथार्थ ही है । ऐसे मल्लिनाथ प्रभु की हम स्तुति करते हैं ।

जगन्महा-मोहनिद्रा-प्रत्यूष-समयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशना-वचनं स्तुमः ।।22।।

।। शब्दार्थ ।।

जगन्महा-मोहनिद्रा=संसारी जीवों की मोह रूपी निद्रा
प्रत्यूष-समयोपमम्=प्रातःकाल के समय के समान
मुनिसुव्रतनाथस्य=मुनिसुव्रतनाथ की
देशना-वचनं=देशना के वचनों की
स्तुमः=स्तुति करते हैं ।

अर्थ

संसार के प्राणियों की मोह निद्रा को उड़ाने के लिए प्रातःकाल समान मुनिसुव्रतस्वामी की देशना की हम स्तुति करते हैं ।

विवेचन

प्रातःकाल में सूर्य का उदय होता है और उसके साथ ही लोगों की नींद उड़ जाती है । लोग जागृत होकर अपने-अपने काम पर लग जाते हैं । बस, इसी प्रकार मुनिसुव्रत स्वामी प्रभु की धर्मदेशना भी मोह की गाढ़ निद्रा

में सोए हुए प्राणियों को जगाने के लिए प्रातःकाल के सूर्योदय समान है । प्रभु की धर्मदेशना को सुनकर अनेक प्राणी मोहनिद्रा से जागृत हो जाते है और आत्मकल्याण के मार्ग पर कदम उठाने के लिए प्रयत्नशील बन जाते है । प्रभु की ऐसी देशना की हम भावपूर्वक स्तुति करते हैं ।

लुठन्तो नमतां मूर्ध्नि निर्मलीकार-कारणम् ।
वारिप्लवा इव नमेः पान्तु पाद-नखांशवः ॥23॥

॥ शब्दार्थ ॥

लुठन्तो=लुढ़कते हुए	**इव=**जैसे
नमतां=नमस्कार करनेवालों के	**नमेः=**नमिनाथ के
मूर्ध्नि=मस्तक पर	**पान्तु=**रक्षण करे ।
निर्मलीकार-कारणं=निर्मल करने में कारण रूप	**पाद-नखांशवः=**पैर के नाखूनों की किरणें
वारिप्लवाः=जल का प्रवाह	

अर्थ

नमस्कार करनेवालों के मस्तक पर फिरकती हुई और जल के प्रवाह की तरह निर्मलता में कारणभूत नमिनाथ प्रभु के पैर के नाखूनों की किरणें तुम्हारा रक्षण करे ।

विवेचन

इस स्तुति में नमिनाथ प्रभु के चरणों के नाखूनों की दिव्यता बतलाई गई है । उनके चरणों में नमस्कार करने से प्रभु के नाखूनों की प्रभा नमस्कार करनेवाले के मस्तक पर गिरती है जो जल के प्रवाह की भाँति आत्मा में रहे कर्ममल का विनाश करती है ।

यदुवंशसमुद्रेन्दुः कर्म-कक्ष-हुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान् भूयाद् वोऽरिष्टनाशनः ॥24॥

॥ शब्दार्थ ॥

यदुवंशसमुद्रेन्दुः=यदु वंश रूपी समुद्र में चन्द्र समान	**हुताशनः=**अग्नि
कर्म-कक्ष=कर्म रूपी वन	**अरिष्टनेमिः=**अरिष्ट नेमिनाथ
	भगवान्=प्रभु

अरिष्टनाशनः=अमंगल का नाश करने वाले	**भूयाद्=**हो **वः=**तुम्हारे

अर्थ

यदुवंश रूपी समुद्र में चंद्र समान व कर्म रूपी वन को जलाने में अग्नि समान ऐसे श्री अरिष्ट नेमि भगवान् तुम्हारे अमंगल का नाश करनेवाले हो ।

विवेचन

लौकिक मान्यतानुसार चंद्र को समुद्र का पुत्र माना जाता है । वह चंद्रमा सभी को प्रकाश देता है । उसी प्रकार यदुवंश में ऐसे तो बहुत से व्यक्ति पैदा हुए, परन्तु नेमिनाथ प्रभु इस यदुवंश में चंद्र के समान हैं ।

नेमिनाथ प्रभु ने शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा आत्मा पर लगे कर्मों को जलाकर भस्मीभूत कर दिया । कर्मवन को जलाने में प्रभु अग्नि के समान हैं । ऐसे नेमिनाथ प्रभु का नामस्मरण करने से, उनकी पूजा और भक्ति करने से सभी प्रकार के विघ्न-अंतरायों का नाश हो जाता है ।

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभुस्तुल्य-मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ।।25।।

।। शब्दार्थ ।।

कमठे=कमठ पर	**प्रभुः=**प्रभु
धरणेन्द्रे=धरणेन्द्र पर	**तुल्यमनोवृत्तिः=**समान भाववाले
च=और	**पार्श्वनाथ=**पार्श्वनाथ
स्वोचितं=अपने उचित	**श्रिये=**कल्याण के लिए
कर्म=कृत्य	**अस्तु=**हो
कुर्वति=करनेवाले	**वः=**तुम्हारे

अर्थ

अपनी-अपनी भूमिका के उचित कर्म करनेवाले कमठ और धरणेन्द्र पर समान दृष्टि रखनेवाले पार्श्वनाथ तुम्हारे कल्याण के लिए हों ।

विवेचन

पार्श्वनाथ प्रभु ने मरुभूति के भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था । उसी

भव में कमठ के दिल में उनके प्रति वैर की गाँठ बँध गई थी । प्रत्येक भव में वह प्रभु को परेशान करने लगा । अंतिम भव में भी कमठ भवनपति निकाय में देव बनकर प्रभु के ऊपर घोर उपसर्ग करता है । उस उपसर्ग के प्रसंग पर धरणेन्द्र ने आकर प्रभु की भक्ति की । कमठ ने उपसर्ग किया और धरणेन्द्र ने भक्ति की परंतु पार्श्वनाथ प्रभु उन दोनों पर समदृष्टिवाले थे । न तो धरणेन्द्र के प्रति उन्हें राग था और न ही कमठ के प्रति उन्हें द्वेष । ऐसे पार्श्वनाथ प्रभु तुम्हारा कल्याण करें ।

श्रीमते वीरनाथाय सनाथायाद्भुतश्रिया ।
महानन्द-सरो-राजमरालायार्हते नमः ।।26।।

।। शब्दार्थ ।।

श्रीमते=ज्ञानादि लक्ष्मीवाले	**राजमरालाय=**राजहंस
वीरनाथाय=महावीर प्रभु को	**अर्हते=**अरिहंत को
सनाथाय-अद्भुत श्रिया=अलौकिक लक्ष्मी से युक्त	**नमः=**नमस्कार हो
महानन्दसरो=परम आनंद रुपी सरोवर	

अर्थ

परम आनंद रूपी सरोवर में राजहंस के समान तथा अलौकिक लक्ष्मी से युक्त ऐसे श्री महावीर स्वामी को नमस्कार हो ।

विवेचन

महावीर प्रभु जगत् के जीवों को अत्यंत ही आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले 34 अतिशय रूपी लक्ष्मी से युक्त हैं । घातिकर्मों का नाश हो जाने से उनकी आत्मा राजहंस के समान अत्यंत ही निर्मल-पवित्र बन चुकी है । ऐसे परमात्मा, परमानंद रूपी मानसरोवर में क्रीड़ा करते हैं । ऐसे आत्मसुख के सरोवर में लयलीन महावीर प्रभु को नमस्कार हो ।

कृताऽपराधेऽपि जने, कृपा-मन्थर-तारयोः ।
ईषद् बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिन-नेत्रयोः ।।27।।

।। शब्दार्थ ।।

कृतापराधे=अपराधी ।	**पि=**भी

जने=लोगों पर	**बाष्पार्द्रयो:=**बाष्प से आर्द्र बने हुए
कृपा-मन्थर-तारयो:=अनुकंपा से नम्र कनीनिका वाले	**भद्रं=**कल्याण हो
ईषद्=अल्प	**श्री-वीरजिन-नेत्रयो:=**श्री वीर प्रभु के नेत्रों का

अर्थ

अपराधी व्यक्ति पर भी अनुकंपा से मंद कनीनिका वाले और थोड़े आँसुओं से भीगे हुए महावीर प्रभु के नेत्रों का कल्याण हो।

विवेचन

महावीर प्रभु अपनी छद्मस्थ अवस्था में विहार करते हुए दृढ़भूमि में गए थे। वहाँ पेढाल ग्राम के निकट पेढाल उद्यान में जब कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे, तब इन्द्र के वचनों पर अश्रद्धा रखनेवाले संगमदेव ने एक ही रात्रि में प्रभु के ऊपर मरणांत बीस उपसर्ग किए थे। उसके बाद भी वह छ महीने तक प्रभु की भिक्षा में अंतराय करता रहा। उसने प्रभु को चलित करने के लिए भरसक प्रयत्न किए परन्तु वह सफल नहीं हो सका, आखिर थक कर जब वापस लौटा, तब दया के महासागर प्रभु की आँखें भी यह सोचकर अश्रुभीनी हो गईं कि एक ओर मेरा आलंबन लेकर हजारों आत्माएँ भव सागर से पार उतरेंगी, जबकि यह आत्मा मेरा ही अवलंबन लेकर अपना अनंत संसार बढ़ा रही है। ऐसे दया के महासागर वीर प्रभु के नेत्रों का कल्याण हो।

जयति विजितान्यतेजा:, सुरासुराधीश-सेवित: श्रीमान्।
विमलस्त्रासविरहितस्त्रिभुवन-चूडामणिर्भगवान् ॥28॥

॥ शब्दार्थ ॥

जयति=जय पाते हैं।	**श्रीमान्=**केवलज्ञान रूपी लक्ष्मीवाले
विजितान्यतेजा:=जिन्होंने अन्य तेज को जीत लिया है।	**विमल:=**निर्मल
सुरासुराधीश-सेवित:=सुरअसुरों के अधिपतियों से सेवित	**त्रास-विरहित=**पीड़ा से रहित।
	त्रिभुवन-चूड़ामणि=त्रिभुवन के मुकुट समान
	भगवान्=अरिहंत प्रभु

अर्थ

अन्य तीर्थिकों के तेज को जीतनेवाले, सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों से

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

सेवित, केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से युक्त, मलरहित, भयमुक्त, तथा त्रिभुवन के मुकुट मणि ऐसे अरिहंत परमात्मा जय पाते है ।

विवेचन

24 तीर्थंकरों की स्तुति करने के बाद प्रस्तुत श्लोक द्वारा अरिहंत सामान्य की स्तुति की गई है । ये विशेषण सभी तीर्थंकर परमात्माओं में घटते हैं । ये तीर्थंकर परमात्मा विजय को प्राप्त हों । स्याद्वादमय उपदेश शैली के द्वारा तीर्थंकर परमात्मा ने अन्य दर्शनों को परास्त कर दिया है । अन्य सभी दर्शन एकांतवादी है, जबकि जैन दर्शन स्याद्वादमय है । ये अरिहंत परमात्मा सुर-असुर से सेवित हैं । प्रभु जहाँ-जहाँ विचरण करते हैं, उस समय करोड़ों देवता प्रभु के साथ रहते हैं । अरिहंत परमात्मा ज्ञानादि गुणलक्ष्मी से युक्त है ।

घाति कर्म एवं 18 दोषों से रहित होने के कारण सर्वथा निर्मल अर्थात् मल रहित हैं ।

आत्मा के लिए हानिकारक यदि कोई है तो वह मोहनीय कर्म है । अरिहंत परमात्मा मोहनीय कर्म से रहित होने के कारण त्रास रहित हैं ।

अरिहंत परमात्मा त्रिभुवन के चूड़ामणि अर्थात् मुकुट समान हैं । वे सभी के लिए परम आदरणीय, पूजनीय व सम्माननीय हैं ।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो, वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्म-निचयो, वीराय नित्यं नमः ।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-धृति-कीर्ति-कान्ति-निचयः श्रीवीर ! भद्रं दिश ।।29।।

।। शब्दार्थ ।।

वीरः=महावीर स्वामी
सर्वसुरासुरेन्द्र-महितो=समस्त सुर-असुरेन्द्रों से पूजित
वीरं=महावीर प्रभु को
बुधाः=पंडित
संश्रिताः=अच्छी तरह से आश्रित है ।
वीरेण=महावीर प्रभु द्वारा
अभिहतः=नष्ट किया गया है ।
स्वकर्मनिचयो=अपने कर्मों का समूह
वीराय=वीर प्रभु को
नित्यं=हमेशा
नमः=नमस्कार हो
वीरात्=वीर प्रभु से
तीर्थमिदं=यह तीर्थ
प्रवृत्तं=प्रवृत्त हुआ है
अतुलं=जिसकी तुलना न की जा सके ।

वीरस्य=वीर प्रभु का
घोरं तपः=घोर तप है
वीरे=महावीर प्रभु में
श्री=लक्ष्मी
धृति=धैर्य
कीर्ति=यश
कांति=तेज
निचयः=समूह
श्री वीर !=हे महावीर प्रभो !
भद्रं=कल्याण
दिश=प्रदान करे ।

अर्थ

श्री महावीर प्रभु समस्त सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों से पूजित हैं । पंडित जनों ने भी उनका आश्रय स्वीकार किया है । महावीर प्रभु के द्वारा कर्म-समूह का नाश किया गया है । श्री महावीर प्रभु को नित्य नमस्कार हो । श्री महावीर प्रभु से ही यह तीर्थ प्रवृत्त हुआ है । श्री महावीर प्रभु का तप अत्यंत ही घोर तप है । श्री महावीर प्रभु में ज्ञान रूप लक्ष्मी, धैर्य, कीर्ति और कांति का समूह रहा हुआ है । ऐसे हे महावीर प्रभो ! आप मेरा कल्याण करें ।

विवेचन

इस स्तुति में व्याकरण की दृष्टि से सभी आठों विभक्तियों द्वारा महावीर प्रभु की स्तुति की गई है–

1) **कर्ता प्रथमा विभक्ति-**महावीर प्रभु समस्त इन्द्रों से पूजित हैं अर्थात् सभी इन्द्र प्रभु की पूजा करते हैं ।
2) **कर्म-द्वितीया विभक्ति-**सभी पंडित पुरुषों ने श्री महावीर प्रभु का आश्रय लिया है । गणधर आदि भी अपनी शंकाओं का समाधान प्रभु के पास करते हैं ।
3) **करण-तृतीया विभक्ति-**महावीर प्रभु ने अपने अद्भुत पराक्रम द्वारा अपनी आत्मा पर लगे हुए समस्त कर्मों के समूह का नाश किया ।
4) **संप्रदान-चतुर्थी विभक्ति-**नमस्कार के अर्थ में व्याकरण के नियमानुसार चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है । महावीर प्रभु को मेरा नित्य नमस्कार हो ।
5) **अपादान-पंचमी विभक्ति-**चतुर्विध संघ रूपी तीर्थ की उत्पत्ति महावीर प्रभु से हुई है अर्थात् वे इस तीर्थ के जनक हैं ।
6) **संबंध-षष्टी विभक्ति-**वीर प्रभु के तप की तुलना नहीं की जा सकती, उनका

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

तप अत्यंत ही घोर-कठोर है ।

7) **अधिकरण-सप्तमी विभक्ति-**महावीर प्रभु में ज्ञान रूपी लक्ष्मी है, धैर्य, कीर्ति तथा कांति का समुदाय रहा हुआ है ।

8) **संबोधन-**हे महावीर प्रभो ! आप अनेकानेक गुणों से अलंकृत हो, आप मेरा कल्याण करो ।

अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमानां,
वरभवनगतानां दिव्य-वैमानिकानाम् ।
इह मनुज-कृतानां, देवराजार्चितानां,
जिनवर-भवनानां, भावतोऽहं नमामि ।।30।।

।। शब्दार्थ ।।

अवनितलगतानां=पृथ्वीतल पर रहे हुए
कृत्रिम-अकृत्रिमानां=अशाश्वत और शाश्वत
वरभवन गतानां=श्रेष्ठ भवनों में रहे हुए
दिव्य-वैमानिकानां=दिव्य विमानों में रहे हुए
इह=यहाँ पर
मनुज-कृतानां=मनुष्यों के द्वारा बनाए हुए
देवराजार्चितानां=इन्द्रों के द्वारा पूजित
जिनवर-भवनानां=जिनेश्वर के भवनों को
भावतो=भावपूर्वक
अहं=मैं
नमामि=नमस्कार करता हूँ ।

अर्थ

पृथ्वीतल पर रहे हुए शाश्वत और अशाश्वत जिन-चैत्य, श्रेष्ठ भवनों में एवं विमानों में रहे हुए, यहाँ मनुष्यों द्वारा निर्मित तथा इन्द्रों द्वारा पूजित जिनेश्वर भगवंत के सभी चैत्यों को मैं भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

विवेचन

प्रस्तुत स्तुति में तीनों भुवनों में रहे हुए जिनेश्वर भगवंत के सभी शाश्वत और अशाश्वत जिन-मंदिरों को नमस्कार किया गया है । जिन मंदिरों में जिनेश्वर की प्रतिमाएँ रही हुई हैं वे सभी जिनमंदिर भी नमस्करणीय हैं । मनुष्य लोक में नंदीश्वर आदि द्वीपों पर शाश्वत चैत्य रहे हुए हैं तथा वैमानिक देवलोक के विमानों में तथा भवनपति आदि देवों के भवनों में भी शाश्वत जिन मंदिर रहे हुए हैं । उन सभी शाश्वत चैत्यों को तथा मनुष्य लोक में मनुष्य द्वारा

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

निर्मित अशाश्वत चैत्यों को भी नमस्कार किया गया है ।

सर्वेषां वेद्यसामाद्यमादिमं परमेष्ठिनाम् ।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं, श्रीवीरं प्रणिदध्महे ।।31।।

।। शब्दार्थ ।।

सर्वेषां=सभी
वेद्यसां=ज्ञाताओं में
आद्यं-प्रथम=श्रेष्ठ
आदिमं=प्रथम
परमेष्ठिनां=परमेष्ठियों में
देवाधिदेवं=देवाधिदेव को
सर्वज्ञं=सर्वज्ञ प्रभु का
श्रीवीरं=श्री वीर प्रभु को
प्रणिदध्महे=हम ध्यान करते है ।

अर्थ

सभी ज्ञानियों में श्रेष्ठ, परमेष्ठियों में प्रथम, देवों के भी देव और सर्वज्ञ श्री महावीर प्रभु का हम ध्यान करते हैं ।

विवेचन

इस स्तुति में श्री महावीर प्रभु की कुछ विशेषताएँ बतलाई गई हैं । वे महावीर प्रभु सभी ज्ञानियों में प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ हैं । पंच परमेष्ठी के प्रथम स्थान पर बिराजमान हैं । देवों के भी देव है और सर्वज्ञ है । ऐसे वीर प्रभु का हम ध्यान करते हैं ।

देवोऽनेक-भवार्जितोर्जित-महापाप-प्रदीपानलो,
देवः सिद्धि वधु-विशाल-हृदयालंकार-हारोपमः ।
देवोष्टादश-दोष-सिन्धुरघटा-निर्भेद-पञ्चाननो,
भव्यानां विदधातु वाञ्छितफलं श्री वीतरागो जिनः ।।32।।

।। शब्दार्थ ।।

देवो=देव
अनेक-भवार्जितो=अनेक भवों में उपार्जित
अर्जित महा पाप=अर्जित महापाप
प्रदीपानलो=दहन करने में अग्नि समान
सिद्धिवधू=मुक्ति रूपी वधू
विशाल-हृदयालङ्कार=विशाल हृदय के अलंकार
देव=देव
हारोपमः=हार की उपमावाले
अष्टादशदोष=अठारह दोष
सिन्धुरघटा=हाथी के समूह

निर्भेद-पश्चानन:=भेदने में सिंह समान	**वाञ्छितफलं=**इच्छित फल
भव्यानां=भव्यों को	**श्री वीतरागो=**श्री वीतराग परमात्मा
विदधातु=प्रदान करे	**जिन=**राग द्वेष के विजेता

अर्थ

जो देव (परमात्मा) अनेक भवों के अर्जित किए हुए पापों को दहन करने में अग्नि समान है। जो मुक्ति रूपी वधू के विशाल हृदय को अलंकृत करने में हार के समान है। जो अठारह दोष रूपी हाथियों के समूह को भेदने में सिंह समान हैं, ऐसे वीतराग जिनेश्वर परमात्मा भव्य जीवों के मनो वांछित फल को प्रदान करे।

विवेचन

इस स्तुति में वीतराग परमात्मा की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को विभिन्न उपमाओं के द्वारा समझाया गया है। अपनी आत्मा ने अनेक भवों में भयंकर पापों का अर्जन किया है, परन्तु वीतराग परमात्मा की भक्ति, उनकी शरणागति हमारे उन सब पापों को जलाकर खाक करने में प्रचंड अग्नि के समान है।

स्त्री के वक्ष:स्थल का सौंदर्य रत्नजडित सुवर्ण का हार है, अरिहंत परमात्मा मुक्ति रूपी कन्या के वक्षस्थल को अलंकृत करने में श्रेष्ठ हार के समान हैं।

आत्मा को चतुर्गति रूपी संसार में भटकाने वाले मिथ्यात्व, अज्ञान आदि 18 दोष हैं। श्री वीतराग परमात्मा इन 18 दोषों से सर्वथा मुक्त हैं। ऐसे वीतराग प्रभु मनोवांछित प्रदान करे, ऐसी प्रार्थना की गई है।

ख्यातोऽष्टापदपर्वतो गजपद:, सम्मेतशैलाभिध:,
श्रीमान् रैवतक: प्रसिद्धमहिमा, शत्रुञ्जयो मण्डप:,
वैभार: कनकाचलोऽर्बुदगिरि:, श्री चित्रकूटादय,
स्तत्र श्री ऋषभादयो जिनवरा: कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ।।33।।

।। शब्दार्थ ।।

ख्यात:=प्रसिद्ध	**गजपद:=**गजपद पर्वत
अष्टापद पर्वत=अष्टापद नामक पर्वत	**सम्मेतशैलाभिध:=**सम्मेतशिखर पर्वत

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

श्रीमान्=शोभावाला	**अर्बुदगिरि:=**आबू पर्वत
रैवतक:=गिरनार पर्वत	**श्री चित्र कुटादय=**श्री चित्रकूट आदि
प्रसिद्ध महिमा=जिसकी महिमा प्रसिद्ध है	**तत्र=**वहाँ
शत्रुञ्जय:=शत्रुंजय पर्वत	**श्री ऋषभादय:=**ऋषभदेव आदि
मण्डप=मांडवगढ	**जिनवरा:=**जिनेश्वर देव
वैभार:=वैभारगिरि	**कुर्वन्तु=**करे
कनकाचल:=सुवर्ण गिरि	**व:=**तुम्हारा
	मङ्गलम्=मंगल

अर्थ

प्रसिद्ध अष्टापद पर्वत, गजपद, सम्मैतशिखर, गिरनार, प्रसिद्ध महिमावाला शत्रुंजय, मांडवगढ, वैभारगिरि, सुवर्णगिरि, आबू, चित्रकूट आदि में रहे ऋषभदेव आदि जिनेश्वर तुम्हारा कल्याण करे ।

विवेचन

इस स्तुति में सुप्रसिद्ध तीर्थों का नाम निर्देश कर वहाँ रहे जिनेश्वर भगवंतों से कल्याण की कामना की गई है ।

ऋषभदेव प्रभु का निर्वाण अष्टापद पर्वत पर हुआ था, जहाँ भरत महाराजा ने स्वदेहप्रमाण 24 जिनेश्वरों की रत्नमय प्रतिमाएँ स्थापित की थी ।

मालवा देश में दशार्णपुर नगर के बाहर का दशार्णकूट नाम का पर्वत कालक्रम से गजाग्रपद के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

- बीस जिनेश्वरों की निर्वाण भूमि सम्मेतशिखर तीर्थ है ।
- गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ प्रभु के तीन कल्याणक हुए हैं ।
- शत्रुंजय पर्वत की स्पर्शना कर अनंत आत्माओं ने मुक्तिपद प्राप्त किया है ।
- मांडवगढ़ में धर्मनाथ प्रभु का जिनमंदिर है ।
- वैभारगिरि गौतम आदि ग्यारह गणधरों की निर्वाण भूमि है ।
- वैभारगिरि के निकट के पर्वतों में से एक सुवर्णगिरि पर्वत है । आबूपर्वत पर विमलमंत्री, वस्तुपाल-तेजपाल द्वारा निर्मित अनेक भव्य जिनालय हैं, जो वास्तुकला में विश्वप्रसिद्ध है । चित्रकूट अर्थात् चित्तौड़ में भी अनेक भव्य जिनालय हैं ।

अजित शांति-स्तव

परिचय

महामंगलकारी नव-स्मरण के छठे स्मरण के रूप में **'अजित-शान्ति'** का स्मरण किया जाता है और वर्तमान में पक्खी, चउमासी व संवत्सरी प्रतिक्रमण में स्तवन के रूप में यह स्तवन पढ़ा जाता है । इस स्तवन में दूसरे व सोलहवें अर्थात् अजितनाथ और शांतिनाथ प्रभु की स्तवना की गई है ।

इस स्तवन में अनेक छंदों व अलंकारों का प्रयोग किया गया है । इसमें चित्र-बंधों की चमत्कृति भी है ।

इस स्तवन के रचयिता महर्षि नंदिषेण हैं । विक्रम की 14वीं सदी में हुए धर्मघोषसूरि विरचित 'शत्रुंजय कल्प' में कहा है-

``श्री नेमिनाथ के वचन से यात्रा के लिए श्री नंदिषेण गणधर ने जहाँ अजित-शांति स्तव की रचना की है, वह पुंडरीक तीर्थ जय को प्राप्त हो ।''

अजिअं जिअ सव्वभयं, संतिं च पसंत सव्वगय-पावं ।
जय गुरु संति-गुण करे, दो वि जिणवरे पणिवयामि ।।1।। (गाहा)

।। शब्दार्थ ।।

अजियं=अजितनाथ को	**जयगुरु=**जगत् के गुरु
जिय सव्वभयं=सर्व भयो को जीतनेवाले	**संतिगुणकरे=**शांति का गुण करनेवाले
संतिं=शांतिनाथ को	**दो वि=**दोनों
च=और	**जिणवरे=**जिनेश्वरों को
पसंत सव्वगय-पावं=सभी रोग व पाप नष्ट हो गए हैं ।	**पणिवयामि=**पंचांग प्रणिपात करता हूँ ।

अर्थ

सभी भयों को जीतनेवाले अजितनाथ को तथा सभी रोगों व पापों को शांत करनेवाले शांतिनाथ को और जगद् के गुरु एवं सभी विघ्नों का उपशमन करनेवाले दोनों तीर्थंकर परमात्मा को मैं पंचांग प्रणिपात करता हूँ ।

विवेचन

इस अवसर्पिणी काल में ऋषभदेव प्रभु के बाद दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ भगवान हुए हैं । उनकी काया 450 धनुष की थी और उनका आयुष्य 72 लाख

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

पूर्व वर्ष का था । वे सगर चक्रवर्ती के बंधु थे ।

इस अवसर्पिणी काल में 16वें तीर्थंकर शांतिनाथ भगवान हुए, जो तीर्थंकर के साथ-साथ चक्रवर्ती भी थे ।

सर्वप्रथम मंगलाचरण के रूप में अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु के स्वतंत्र विशेषण बताकर स्तुति की गई और उसके बाद उन दोनों के संयुक्त गुण बताकर संयुक्त रूप से स्तुति की गई है ।

अजितनाथ प्रभु 'अजित' हैं अर्थात् किसी से जीते नहीं गए हैं । इतना ही नहीं, इस जगत् में प्रसिद्ध इहलोक भय, परलोक भय, आकस्मिक भय, आदान भय, आजीविका भय, अपयश भय और मरण भय इन सभी भयों को भी जीत लिया है, अर्थात् परमात्मा को इनमें से किसी भी प्रकार का भय सता नहीं सकता है, वे सर्वथा भयमुक्त बने हुए हैं ।

शांतिनाथ प्रभु ने सभी रोगों व पापों को नष्ट कर डाला है । सामान्यतः कहा जाता है कि मानव शरीर में 3½ करोड़ रोंगटे हैं और प्रत्येक रोंगटे पर पोने दो रोग हैं । अशाता वेदनीय कर्म के उदय के अनुसार वे रोग प्रगट होते हैं । परन्तु शांतिनाथ प्रभु ने उन समस्त रोगों को नष्ट कर डाला है । इतना ही नहीं, रोग व संसार परिभ्रमण में कारणभूत समस्त पापों को भी उन्होंने नष्ट कर डाला है ।

अजितनाथ व शांतिनाथ की स्वतंत्र रूप से नाम के अनुरूप गुणों की स्तवना करने के बाद उनकी संयुक्त स्तवना करते हुए कहते हैं कि स्व-आत्म-कल्याण के साथ जगत् के जीवों को भी आत्मकल्याण का मार्ग दिखलाने में अरिहंत परमात्मा ही पूर्णतया समर्थ हैं । उनके समान अन्य कोई पुण्यशाली या प्रतिभाशाली नहीं है । इसी कारण वे **'जगद्गुरु'** कहलाते हैं । ये परमात्मा ही जगत् के जीवों के बाह्य रोग-शोक-आधि-व्याधि आदि उपद्रव व अभ्यंतर राग-द्वेष आदि उपद्रवों को शांत करने में सक्षम हैं । ऐसे अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु को पंचांग भाव से नमस्कार करता हूँ ।

ववगय-मंगुल-भावे, ते हं विउल तव निम्मल-सहावे ।
निरुवम-महप्पभावे, थोसामि सुदिट्ठ-सब्भावे ।।2।। गाहा

।। शब्दार्थ ।।

ववगय=दूर हो गया है । | **मंगुल भावे=**अमंगल भाव

ते=उन दोनों को
हं=मैं
विउल-तव=विपुल तप
निम्मल सहावे=निर्मल स्वभाव वाले
निरुवम=निरुपम
महप्पभावे=महाप्रभाववाले
थोसामि=स्तुति करता हूँ ।
सुदिट्ठ-सब्भावे=वस्तु के सद्भाव को जिन्होंने अच्छी तरह से देखा है ।

अर्थ

अमंगल भाव से मुक्त, विपुल तपवाले, निर्मल स्वभाववाले, निरुपम माहात्म्यवाले तथा सर्वज्ञ ऐसे उन दोनों की मैं स्तुति करता हूँ ।

सव्व-दुक्ख-प्पसंतीणं, सव्व पाव-प्पसंतीणं ।
सया अजिय-संतीणं, नमो अजिय-संतीणं ॥ सिलोगो ॥3॥

॥ शब्दार्थ ॥

सव्व=सभी ।
दुक्खप्पसंतीणं=दुःखों को शांत करनेवाले ।
सव्व-पावप्पसंतीणं=पापों को शांत करनेवाले
सया=सदा ।
अजिय-संतीणं=अजित शांति को धारण करनेवाले
नमो=नमस्कार हो
अजिय-संतीणं=अजितनाथ और शांतिनाथ को ।

सामान्य अर्थ

समस्त दुःखों को शांत करनेवाले, समस्त पापों को शांत करने वाले तथा रागादि से अपराभूत ऐसी शांति को धारण करनेवाले ऐसे अजितनाथ और शांतिनाथ प्रभु को नमस्कार हो ।

विशेषार्थ

इस गाथा में संयुक्त रूप से उनकी विशेषताओं को बतलाते हुए अजितनाथ और शांतिनाथ प्रभु की स्तुति की गई है । इन दोनों प्रभु की शरणागति को स्वीकार करने से आधि, व्याधि और उपाधि रूप समस्त दुःखों का नाश हो जाता है, इतना ही नहीं उन दुःखों के कारणभूत सभी प्रकार के पापकर्म भी नष्ट हो जाते हैं । **'मूलं नास्ति कुतो शाखा'** । मूल ही नहीं होगा तो शाखा कहाँ से होगी ? पाप ही नहीं होगा तो दुःख कहाँ से आएगा ? प्रभु

का स्मरण करने से सभी दु:ख और पाप नष्ट हो जाते है । ये दोनों प्रभु राग आदि से कभी भी पराभव नहीं पानेवाली परम शांति को धारण करनेवाले हैं । ऐसे शांति के प्रदाता श्री अजितनाथ और शांतिनाथ प्रभु को मेरा भावपूर्वक नमस्कार हो ।

अजिय जिण ! सुहप्पवत्तणं, तव पुरिसुत्तम ! नाम-कित्तणं ।
तह य धिइ-मइ-प्पवत्तणं, तव य जिणुत्तम ! संति ! कित्तणं ।।4।।

मागहिआ

।। शब्दार्थ ।।

अजिय जिण !=हे अजित जिन (वीतराग-परमात्मा)	**तह=**तथा
	य=और
सुहप्पवत्तणं=सुख या शुभ को प्रवर्तन करनेवाला ।	**धिइ-मइप्पवत्तणं=**धैर्य युक्त मति को देनेवाला ।
तव=तुम्हारा ।	**जिणुत्तम=**जिनोत्तम !
पुरिसुत्तम=पुरुषोत्तम	**संति=**हे शांतिनाथ प्रभु
नामकित्तणं=नाम का कीर्तन ।	**कीत्तणं=**कीर्तन (नाम स्मरण)

सामान्य अर्थ

हे पुरुषोत्तम ! अजितनाथ ! आपका नाम-स्मरण शुभ-सुख को करनेवाला है तथा स्थिर बुद्धि प्रदान करनेवाला है । हे जिनोत्तम शांतिनाथ प्रभो ! आपका नाम भी वैसा ही है ।

विशेष अर्थ

प्रभु के नाम में भी अपरंपार शक्ति रही हुई है । कहा भी है-

प्रभु नाम की औषधि, खरे भाव से खाय ।
रोग शोक आवे नहि, सवि संकट मिट जाय ।।

जो व्यक्ति अत्यंत ही शुभ भाव से प्रभु के नाम रूप औषधि का भक्षण करता है, उसके रोग, शोक व संकट सभी नष्ट हो जाते हैं । इस गाथा में अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु के नाम की महिमा का गान किया गया हैं । जो पुण्यशाली आत्मा अजित-शांतिनाथ प्रभु के नाम का स्मरण करता हैं, उसे समस्त प्रकार के सुखों की तथा स्थिर व निर्मल बुद्धि की प्राप्ति होती है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

किरिया-विहि-संचिअ-कम्म-किलेस-विमुक्खयरं,
अजिअं निचिअं च गुणेहिं महामुणि-सिद्धिगयं ।
अजिअस्स य संति-महामुणिणो वि अ संतिकरं,
सययं मम निव्वुइ-कारणयं च नमंसणयं ॥5॥ आलिंगणयं

।। शब्दार्थ ।।

किरिया-विहि=क्रिया और विधि
संचिय=संचित/संग्रहित
कम्म-किलेस=कर्मक्लेश
विमुक्खयरं=मुक्त करानेवाले
अजियं=अजित
निचियं=व्याप्त
गुणेहिं=गुणों द्वारा
महा-मुणि सिद्धिगयं=महा मुनियों की सिद्धि को प्राप्त कराने वाला ।

अजियस्स=अजितनाथ का
संति महामुणिणो=श्री शांतिनाथ महामुनि का
वि=भी
संतिकरं=शांति को करनेवाला
सययं=सदा
मम=मुझे
निव्वुइ कारणयं=मोक्ष का कारण
नमंसणयं=नमस्कार-पूजन

सामान्य अर्थ

कायिकी आदि पच्चीस प्रकार की क्रियाओं से संचित कर्मों की पीडा से मुक्त करानेवाला, सर्वोत्कृष्ट, सम्यग्दर्शन आदि गुणों से परिपूर्ण, महामुनियों की अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त करानेवाला तथा शांति को करनेवाला श्री अजितनाथ और शांतिनाथ भगवान का पूजन मेरे लिए सदैव मोक्ष का कारण हो ।

विशेष अर्थ

इस गाथा द्वारा अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु के दर्शन की महिमा का गान किया गया है । अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु का हृदय के भावों के साथ किया गया पूजन, संसार की विविध प्रवृत्तियों से उपार्जित कर्मसमूह को समाप्त कर देता है । महामुनि अपनी साधना के बल से जिन अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व वशित्व आदि सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, उन सिद्धियों की प्राप्ति अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु को भावपूर्वक अर्चन करने से हो जाती है । अजितनाथ व शान्तिनाथ प्रभु शांति

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

को करनेवाले है । यद्यपि आपके पूजन में समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति रही हुई हैं, परन्तु मुझ दिल में मोक्ष के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है, अतः हे प्रभो ! आपके इस पूजन के प्रभाव से मुझे एक मात्र मोक्ष की प्राप्ति हो ।

एक मात्र मोक्ष को छोड़ संसार में कहीं भी शाश्वत सुख नहीं है, अतः मोक्ष की इच्छा में शाश्वत-सुख की इच्छा का समावेश हो जाता है । प्रभु का सच्चा भक्त भी वही कहलाता है, जिसके दिल में शाश्वत सुख पाने की इच्छा रही हुई है ।

पुरिसा जइ दुक्खवारणं, जइ य विमग्गह सुक्ख-कारणं ।
अजियं संतिं च भावओ, अभयकरे सरणं पवज्जहा ।।6।। मागहिआ

।। शब्दार्थ ।।

पुरिसा=हे पुरुषों !	**अजियं संतिं च=**अजितनाथ और शांतिनाथ को
जइ=यदि	**भावओ=**भाव से
दुक्खवारणं=दुःख को दूर करना चाहते हो ।	**अभयकरे=**अभयकरनेवाले
विमग्गह=शोध करते हो	**सरणं=**शरणागति
सुक्ख कारणं=सुख के कारण की	**पवज्जहा=**स्वीकार करो

सामान्य अर्थ

हे पुरुषों ! यदि आप दुःख के निवारण और सुख के कारण की शोध करते हो तो अभय को करनेवाले अजितनाथ और शांतिनाथ प्रभु की शरणागति स्वीकार करो ।

विशेष अर्थ

संसार के सभी प्राणी सुख को प्राप्त करना और दुःख से मुक्त होना चाहते हैं । परन्तु इच्छा मात्र से कभी सुख मिलता नहीं है और दुःख दूर होता नहीं है । मोह और अज्ञानता के कारण संसारी जीव ज्यों-ज्यों सुख-प्राप्ति व दुःख मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है त्यों-त्यों वह अधिकाधिक दुःख के गर्त में डूबता जाता है । इसका मुख्य कारण यही है कि मोहाधीन संसारी जीव को सुख के सच्चे मार्ग का ख्याल नहीं है । इस गाथा में वास्तविक सुख

की प्राप्ति व दु:ख मुक्ति का उपाय बतलाया गया है ।

ग्रंथकार कहते हैं कि हे सत्पुरुषों ! आप दु:ख-मुक्ति व सुख-प्राप्ति चाहते हैं तो भाव से अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु की शरणागति को स्वीकार करो । उनकी शरणागति ही आपको सदा के लिए दु:ख मुक्त बनाने में समर्थ है । आज तक जिन-जिन आत्माओं ने भावपूर्वक अजितनाथ-शांतिनाथ आदि की शरणागति को स्वीकार किया है, वे आत्माएँ सदा के लिए दु:खमुक्त बन गई हैं । वे जन्म, जरा, मृत्यु, आधि-व्याधि उपाधि, रोग-शोक आदि सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त बन गई हैं । अत: जो भी सुख चाहता है, उसके लिए प्रभु की शरणागति को छोड़ अन्य कोई सरल व सहज उपाय नहीं है ।

अरइ-रइ-तिमिर-विरहिय-मुवरय-जर-मरणं,
सुर-असुर-गरुल-भुयगवइ-पयय-पणिवइयं ।
अजियमहमवि अ सुनय नय निउणमभयकरं,
सरणमुवसरिय भुवि दिविज-महियं सययमुवणमे ।।7।। संगययं

।। शब्दार्थ ।।

अरइ-रइ=अरति और रति (विषाद और हर्ष)
तिमिर=अंधकार
विरहिय=विरहित
मुवरय=रुक गया है
जर-मरणं=जरा और मृत्यु
सुर=देवता
असुर=असुरकुमार
गरुल=गरुड़
भुयगवइ=नागकुमार के इन्द्र
पयय=आदरपूर्वक
पणिवइयं=वंदन कराए हुए

अजियं=अजितनाथ
अहमवि=मैं भी
सुनय=सम्यग् नय
नयनिउणं=नयों में निपुण
अभयकरं=अभय करनेवाले
सरण=शरणागति
मुवसरिय=प्राप्त करके
भुवि-दिविज-महियं=मनुष्य व देवों से पूजित
सययं=हमेशा
मुवणमे=निकट जाकर नमस्कार करता हूँ ।

सामान्य अर्थ

विषाद और हर्ष के अंधकार से रहित, जरा और मृत्यु से मुक्त, देव,

असुरकुमार, सुवर्णकुमार, नागकुमार आदि के इन्द्रों से नमस्कार कराए हुए, सुनयों का प्रतिपादन करने में कुशल, सर्व जीवों को अभय देनेवाले, मनुष्य तथा देवताओं से पूजित ऐसे अजितनाथ प्रभु की शरणागति स्वीकार कर मैं भी उनके चरणों की निरंतर सेवा करता हूँ।

विशेष अर्थ

इस गाथा में अजितनाथ प्रभु की कुछ विशेषताएँ बतलाई हैं। अजितनाथ प्रभु ने मोहनीय कर्म का सर्वथा नाश कर दिया है, अतः उस कर्म के उदय से जन्य हर्ष और शोक से वे सर्वथा मुक्त बने हुए हैं। जन्म, जरा और मृत्यु के दुःखों से वे सर्वथा रहित हैं। मुक्ति की प्राप्ति के बाद आत्मा को इस संसार में पुनः जन्म धारण करना नहीं पड़ता है। जब जन्म ही नहीं हो तो जरा और मृत्यु का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। तारक परमात्मा को देव-देवेन्द्र भी नमस्कार करते हैं अर्थात् वे जगत् में आदर पात्र ऐसे देव-देवेन्द्रों के लिए भी नमस्कार के पात्र हैं।

अजितनाथ प्रभु की धर्मदेशना सुनयगर्भित है अर्थात् अनेकांत व स्याद्वाद की मुद्रा से अलंकृत है। ये परमात्मा जगत् के जीव मात्र को अभय प्रदान करनेवाले हैं। मनुष्यों में सबसे अधिक पूजा व आदर के पात्र चक्रवर्ती तथा देवताओं में सबसे अधिक पूजा के पात्र देवेन्द्रों से भी ये प्रभु पूजित हैं। मैं भी उन परमात्मा की शरणागति को स्वीकार करता हूँ और उनके चरणों में भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

तं च जिणुत्तममुत्तम-नित्तम-सत्तधरं,
अज्जव-मद्दव-खंति-विमुत्ति-समाहि-निहिं ।
संतिकरं पणमामि दमुत्तम-तित्थयरं,
संति मुणी ! मम संति-समाहिवरं दिसउ ॥8॥ सोवाणयं

॥ शब्दार्थ ॥

तं=वे
च=और
जिणुत्तमं=जिनोत्तम
उत्तम-नित्तम=श्रेष्ठ और निर्दोष
सत्तधरं=सत्त्व को धारण करनेवाले
अज्जव=सरलता
मद्दव=नम्रता
खंति=क्षमा
विमुत्ति=निर्लोभता/संतोष
समाहि-निहिं=समाधि के खजाने

संतिकरं=शांति को करनेवाले
पणमामि=प्रणाम करता हूँ ।
दमुत्तम=दमन करने में श्रेष्ठ
तित्थयरं=तीर्थंकर को

संतिमुणी=हे शांतिनाथ मुनि
मम=मुझे
संति-समाहिवरं=श्रेष्ठ शांति व समाधि
दिसउ=प्रदान करें

सामान्य अर्थ

जिनों में उत्तम, श्रेष्ठ व निर्दोष पराक्रम को धारण करनेवाले, सरलता, नम्रता, क्षमा व संतोष द्वारा समाधि के भंडार, शांति करनेवाले, इन्द्रिय-दमन करने में उत्तम और धर्मतीर्थ की स्थापना करनेवाले हे शांतिनाथ प्रभो ! आप मुझे श्रेष्ठ शांति व समाधि प्रदान करो ।।8।।

विशेष-अर्थ

इस गाथा में शांतिनाथ प्रभु की अनेक विशेषताएँ बतलाकर उन्हें प्रणाम किया गया है । राग-द्वेष के विजेता तो सामान्य केवली भी होते हैं, परन्तु शान्तिनाथ प्रभु उन सब में उत्तम (श्रेष्ठ) है । वे श्रेष्ठ व निर्दोष पराक्रम वाले हैं, जिस पराक्रम द्वारा उन्होंने सर्व घाति-अघाति कर्मों का क्षय कर डाला है । क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी चार कषाय जो जीवात्मा की समाधि को नष्ट करनेवाले हैं, ऐसे चारों कषायों को शांतिनाथ प्रभु ने निर्मूल कर दिया है और इस कारण वे अद्‌भुत समाधि के भंडार हैं । वे सर्वत्र शांति करनेवाले हैं । उन्होंने पाँचों इन्द्रियों को अपने अधीन कर लिया है । जगत् के जीवों के उद्धार के लिए वे धर्म-तीर्थ के स्थापक हैं । ऐसी अनेकविध विशेषताओं के स्वामी हे शांतिनाथ प्रभो ! आप मुझे श्रेष्ठ शांति व समाधि प्रदान करो अर्थात् मेरे क्रोध आदि चारों कषाय सदा के लिए शांत हो जाय और मेरा चित्त समाधिभाव में स्थिर बने ।

हे प्रभो ! मुझे इस जगत् के अन्य किसी पदार्थ की अभिलाषा नहीं है, क्योंकि भौतिक सामग्रियों की मांग कर-करके तो मैंने अपना संसार ही बढ़ाया है, अतः इस संसार का सदा के लिए अंत लाने के लिए हे प्रभो ! दुनिया की अन्य कोई भौतिक सामग्री नहीं चाहिए, मुझे तो एक मात्र शांति व समाधि चाहिए ।।8।।

सावत्थि-पुव्व-पत्थिवं च वरहत्थि-मत्थय-पसत्थ
वित्थिन्न-संथियं थिर-सरिच्छ-वच्छं—
मय-गल लीलायमाण-वरगंध-हत्थि-पत्थाण-पत्थियं संथवारिहं ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

हत्थि हत्थ बाहुं धंतकणग-रुअग-निरुवहय–
पिंजरं पवर-लक्खणोवचिय-सोम-चारु-रूवं,
सुइ-सुह-मणाभिराम-परम-रमणिज्ज-
वर-देवदुंदुहि-निनाय-महुरयर-सुहगिरं ।।9।। वेड्ढओ
अजियं जियारिगणं, जिय सव्व-भयं भवोह-रिउं ।
पणमामि अहं पयओ, पावं पसमेउ मे भयवं ।।10।। रासालुद्धओ

।। शब्दार्थ ।।

सावत्थि-पुव्व-पत्थिवं=श्रावस्ती नगरी के पूर्व काल के राजा
च=और
वरहत्थि=श्रेष्ठ हाथी
मत्थय=मस्तक
पसत्थ=प्रशस्त
वित्थिन्न=विस्तीर्ण
संथियं=संस्थानवाले
थिर=स्थिर
सरिच्छ=समान
वच्छं=वक्षस्थल
मयगल=मद झरते हुए
लीलायमाण=लीलापूर्वक चलते
वरगंधहत्थि=श्रेष्ठ गंधहस्ती
पत्थाण=प्रस्थान
पत्थियं=चलता हुआ
संथवारिहं=प्रशंसा योग्य
हत्थि हत्थ=हाथी की सूंड
बाहुं=हाथ
धंत=तपा हुआ
कणग=स्वर्ण
रुअग=कांति
निरुवहय=स्वच्छ
पिंजरं=पीतवर्ण
पवर=श्रेष्ठ
लक्खणोवचिय=लक्षणों से युक्त
सोम=सौम्य
चारु-रूवं=मनोहर रूप वाले
सुइ-सुह=श्रुति (कान) को सुखकारक
मणाभिराम=मन को आनंद देनेवाला
परमरमणिज्ज=अत्यंत रमणीय
वर देव दुंदुहि=श्रेष्ठ देव दुंदुभि
निनाय=निनाद (आवाज)
महुरयर=अधिक मधुर
सुह गिरं=मंगल वाणी
अजियं=अजितनाथ को
जियारिगणं=शत्रुओं के समूह को जीतनेवाले
जिय सव्वभयं=सभी भयों को जीता है।
भवोह-रिउं=भवपरंपरा के शत्रु
पणमामि=नमस्कार करता हूँ
अहं=मैं

पयओ=आदरपूर्वक
पावं=पाप
पसमेउ=शांत करो

मे=मेरे
भयवं=हे भगवन् !

सामान्य अर्थ

जो दीक्षा लेने के पूर्व श्रावस्ती के राजा थे । जिनका संस्थान श्रेष्ठ हाथी के कुंभस्थल के समान प्रशस्त व विस्तीर्ण था, जिनकी छाती में निश्चल श्रीवत्स था । जिनकी चाल मद झरते हुए और लीलापूर्वक चलते हुए उत्तम गंधहस्ती के समान मनोहर थी, जो हर प्रकार से प्रशंसा के योग्य थे । जिनकी भुजा हाथी की सुंड के समान दीर्घ थी । जिनके शरीर का वर्ण तपे हुए स्वर्ण की कांति के समान स्वच्छ व पीला था । जो श्रेष्ठ लक्षणों से पुष्ट, सौम्य व मनोहर स्वरूपवाले थे, जिनकी वाणी कान को प्रिय, सुखकारक, मन को आनंददायी, अति रमणीय और श्रेष्ठ देवदुंदुभि के नाद से अधिक मधुर और मंगलमय थी । जो अंतरंग शत्रुओं पर विजय पानेवाले थे । जो सर्व भयों को जीतने वाले थे, जो भवपरंपरा के शत्रु थे, ऐसे अजितनाथ प्रभु को मैं मन-वचन और काया के प्रणिधान पूर्वक नमस्कार करता हूँ और विज्ञप्ति करता हूँ कि हे भगवन् ! आप मेरे अशुभ कर्मों का शमन करें ।।9-10।।

विशेष अर्थ

प्रस्तुत गाथा में अजितनाथ प्रभु की राज्यावस्था का वर्णन किया गया है । 24 तीर्थंकरों में से वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी ने अपने गृहस्थ जीवन में राज्य ग्रहण नहीं किया था । तीर्थंकर परमात्मा अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए ही लग्न जीवन को स्वीकार करते हैं और राज्य ग्रहण करते हैं । लग्न व राज्यग्रहण की सांसारिक क्रिया करते हुए भी वे अशुभ कर्मों का बंध नहीं करते हैं, बल्कि कर्मों की निर्जरा ही करते हैं । अजितनाथ प्रभु ने अपने भोगावली कर्मों को खपाने के लिए ही राज्य ग्रहण किया था । अरिहंत परमात्मा की राज्यावस्था का चिंतन भी शुभ ध्यान कहलाता है । जिनमंदिर में 10 त्रिक के पालन के अन्तर्गत चौथी त्रिक आती है- अवस्था चिंतन त्रिक । इसके अन्तर्गत अरिहंत परमात्मा के पिंडस्थ, पदस्थ व रूपस्थ अवस्था का चिंतन किया जाता है । पिंडस्थ

अवस्था में प्रभु की जन्मावस्था, राज्यावस्था व श्रमणावस्था का विचार किया जाता है । राज्यावस्था का सुंदर चित्रण प्रस्तुत गाथा में किया गया है ।

अजितनाथ प्रभु श्रावस्ती के राजा थे । उनका संघयण, संस्थान, गति आदि श्रेष्ठ थे । उनका वर्ण तपे हुए सुवर्ण की भाँति अत्यंत ही कांतिमान् था । उनके देह में 1008 शुभ लक्षण थे उनका रूप अत्यंत ही अद्भुत था ।

वे आत्मा के अंतरंग शत्रु काम-क्रोध आदि के विजेता थे । उन्होंने समस्त प्रकार के भयों को जीत लिया था । वे भवपरंपरा के शत्रु थे । ऐसे अजितनाथ प्रभु को मैं भावपूर्वक प्रणाम करता हूँ । उनकी कृपा से मेरे समस्त अशुभ कर्मों का क्षय हो ।।9-10।।

कुरु-जणवय-हत्थिणाउर-नरीसरो-पढमं
तओ महा चक्कवट्टिभोए महप्पभावो,
जो बावत्तरि-पुरवर-सहस्स-वर-नगर-निगम-
जणवय-वई बत्तीसा रायवर-सहस्साणुयाय मग्गो !
चउदस-वर रयण-नव-महानिहि-चउसट्ठि-सहस्स-पवर जुवईण
सुंदरवई, चुलसी हय गय रह-सयसहस्स-सामी,
छन्नवइ-गाम कोडि सामि आसी जो भारहंमि भयवं ।।11।। वेड्ढओ ।।
तं संतिं संतिकरं, संतिण्णं सव्वभया ।
संतिं थुणामि जिणं, संतिं विहेउ मे ।।12।। रासानंदिययं

।। शब्दार्थ ।।

कुरु-जणवय=कुरु देश
हत्थिणाउर=हस्तिनापुर
नरीसरो=राजा
पढमं=प्रथम
तओ=बाद में
महाचक्कवट्टिभोए=महाचक्रवर्ती के भोगवाले
महप्पभावो=महाप्रभावी
जो=जो
बावत्तरि पुरवर सहस्स=72000 मुख्य शाहर
वरनगर=श्रेष्ठ नगर
निगम जणवयवइ=निगमवाले देश के अधिपति
बत्तीसा=बत्तीस
रायवर=श्रेष्ठ राजा

सहस्स=हजार
अणुयाय मग्गो=मार्ग का अनुसरण करते है
चउदस=चौदह
वर रयण=श्रेष्ठ पत्नी
नव महानिहि=9 महानिधि
चउसट्ठि सहस्स=64000
पवर=श्रेष्ठ
जुवइण सुंदर वई=सुंदर युवतियों के पति
चुलसी=84
हय-गय-रह=घोडे-हाथी-रथ
सयसहस्स सामी=लाख के स्वामी
छन्नवइ=96
गाम कोडि सामि=करोड़ गाँवों के स्वामी
आसी=थे
भारहंमि=भरत क्षेत्र में
भयवं=भगवान्
तं=उन
संतिं=शांतिनाथ को
संतिकरं=शांति को करनेवाले
संतिण्णं=अच्छी तरह तिरे हुए
सव्वभया=सभी भयो से
थुणामि=स्तुति करता हूँ
जिणं=जिनेश्वर की
विहेउ=देने के लिए
मे=मुझे

सामान्य अर्थ

जो प्रभु पहले भरतक्षेत्र में कुरुदेश में हस्तिनापुर के राजा थे और बाद में महाचक्रवर्ती के राज्य को भोगनेवाले महाप्रभावशाली हुए । 72000 मुख्य शहर, हजारों नगर तथा निगमवाले देश के अधिपति हुए । जिनका 32000 उत्तम राजा अनुसरण करते थे । तथा जो चौदह रत्न, नव महानिधि तथा 64000 स्त्रियों के स्वामी थे । तथा 84 लाख घोड़े, हाथी, रथ तथा 96 करोड़ गाँवों के अधिपति थे । जो मूर्तिमंत उपशम की तरह शांति करनेवाले, सर्व भयों से पार पाए हुए तथा राग आदि शत्रुओं के विजेता थे, शांति के लिए मैं ऐसे शांतिनाथ प्रभु की स्तवना करता हूँ ।

विशेष अर्थ

16वें शांतिनाथ प्रभु तीर्थंकर के साथ छह खंड के अधिपति चक्रवर्ती भी थे । इस गाथा में शांतिनाथ प्रभु के चक्रवर्तीपने की बाह्य ऋद्धि-सिद्धि व समृद्धि का वर्णन किया गया है । शांतिनाथ प्रभु छह खंड के मालिक थे । उसमें 72000 मुख्य शहर आदि थे । 32000 मुकुटबद्ध राजा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते थे । उनके अंत:पुर में देवांगना जैसी अद्भुत रूप

लावण्यवाली 64000 स्त्रियाँ थीं। उनका सैन्य भी विशाल था। उनके सैन्य में 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े व 84 लाख रथ थें। वे 96 करोड़ गाँवों के अधिपति थे। वे सर्वभयों से मुक्त होने के कारण शांति की प्राप्ति के लिए मैं उनकी स्तवना करता हूँ। उनके प्रभाव से मुझे भी शांति प्राप्त हो।

चक्रवर्ती के 14 रत्न

1) सेनापति रत्न :- चक्रवर्ती के विराट् सैन्य का नायक होता है। चक्रवर्ती की सहायता बिना भी जो अनेक देशों पर विजय प्राप्त करता है।

2) गृहपति रत्न :- चक्रवर्ती के सैन्य आदि में सभी प्रकार की भोजन सामग्री, फल-फूल आदि खाद्य-सामग्री की पूर्ति करनेवाला गृहपतिरत्न होता है।

3) पुरोहित रत्न :- शांतिकर्म और अन्य धार्मिक विधि विधानों को करनेवाला पुरोहितरत्न होता है।

4) अश्वरत्न :- लक्षणयुक्त सर्वश्रेष्ठ घोडा।

5) हस्तिरत्न :- लक्षणयुक्त सर्वश्रेष्ठ हाथी।

6) वर्धकी रत्न : मकान निर्माण, नदी के ऊपर पूल आदि बनानेवाला होशियार सुथार।

7) स्त्री रत्न :- चक्रवर्ती की पट्टरानी बनने योग्य स्त्री। ये सात रत्न पंचेन्द्रिय प्राणी रुप होते है।

8) चक्ररत्न :- सभी प्रकार के शस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ शस्त्र, जो शत्रुओं को अवश्य परास्त करता है।

9) छत्ररत्न :- चक्रवर्ती के मस्तक पर धारण करने योग्य छत्र !

10) चर्मरत्न :- चमडे से बना यह रत्न नदी, सरोवर आदि को पार करने के लिए खूब उपयोगी बनता है।

11) मणिरत्न :- दूर-सुदूर क्षेत्र तक प्रकाश फैलानेवाला तथा रोगों को दूर करनेवाला अद्भुत रत्न।

12) काकिणीरत्न :- पर्वत में भी निशानी करनेवाला।

13) खड्गरत्न :- सर्वश्रेष्ठ तलवार।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

14) दंडरत्न :- विषम भूमि को भी सम करनेवाला तथा शीघ्रता से जमीन खोदनेवाला विशिष्ट हथियार इन 14 रत्नों से चक्रवर्ती अपने राज्य का विस्तार और रक्षण करता है ।

चक्रवर्ती के नौ निधियाँ

चक्रवर्ती जब छ खंड को जीतने के लिए गंगा नदी के पश्चिम तट पर जाता हैं, तब ये नौ निधियाँ प्रगट होती है । उनमें अनेक प्रकार के कल्पों के साथ अपार संपत्ति रही होती है ।

1) नैसर्प निधि :- इस निधि के कल्प में ग्राम, नगर द्रोणमुख घर आदि की स्थापना की विधि बताई होती है ।

2) पांडुक निधि :- इस निधि के कल्प में गणित, गीत, चोबीस प्रकार के धान्य के बीज एवं उनकी उत्पत्ति के प्रकार बताए गए है ।

3) पिंगलक निधि :- इस निधि के कल्प में पुरुष, स्त्री, हाथी, घोडे आदि के आभूषण बनाने की विधि का वर्णन होता है ।

4) सर्वरत्न निधि :- इस निधि के कल्प में चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का विस्तार से वर्णन होता है ।

5) महा पद्म निधि :- इस निधि के कल्प में वस्त्र तथा रंगों की उत्पत्ति, उनके प्रकार, धोने की रीति तथा सात धातुओं का वर्णन होता है ।

6) कालनिधि :- इस कल्प में समग्रकाल का ज्ञान, ज्योतिष, तीर्थंकर आदि के वंश का कथन तथा सौ प्रकार के शिल्पों का वर्णन होता है ।

7) महाकाल निधि :- इस कल्प में लोहा, सोना, मोती, मणि, स्फटिक आदि के विविध भेद तथा उनकी उत्पत्ति का वर्णन होता है ।

8) माणवक निधि :- इस कल्प में योद्धाओं की उत्पत्ति, शस्त्र-सामग्री युद्ध नीति तथा दंड नीति आदि का वर्णन होता है ।

9) शंख निधि :- इस निधि के कल्प में गद्य, पद्य, नृत्य, नाटक आदि का विस्तृत वर्णन होता है ।

चक्रवर्ती के 64000 स्त्रियाँ :- चक्रवर्ती 32000 देशों पर विजय प्राप्त करता है, उस समय उस देश के राजा की पुत्री तथा उस देश के अग्रणी की

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

पुत्री के साथ पाणिग्रहण करता है । इस प्रकार चक्रवर्ती के कुल 64000 स्त्रियाँ (पत्नियाँ) होती है ।

इक्खाग ! विदेह ! नरीसर ! नरवसहा ! मुणिवसहा !
नव-सारय-ससि-सकलाणण ! विगयतमा ! विहूयरया !
अजि-उत्तम-तेअ ! गुणेहिं महामुणि ! अमियबला ! विउल कुला !
पणमामि ते भव भय-मूरण ! जग सरणा ! मम सरणं ।।13।। चित्तलेहा

।। शब्दार्थ ।।

इक्खाग=इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए
विदेह=विशिष्ट देहवाले
नरीसर=नरेश्वर
नर-वसहा !=हे नरवृषभ
मुणिवसहा=मुनिवृषभ
नवसारय-ससि=शरद्ऋतु का नवीन चन्द्र
सकलाणण=कलापूर्ण मुखवाले
विगयतमा=अज्ञान अंधकार रहित
विहुयरया=कर्म रज रहित
अजिउ=अजितनाथ
उत्तम-तेअ=उत्तम तेजवाले
गुणेहिं=गुणों द्वारा
महामुणि=मुनीश्वर
अमियबला=अपरिमित बल वाले
विउलकुला=विपुल कुलवाले
पणमामि=प्रणाम करता हूँ ।
ते=आपको
भवभयमूरण=भव के भय के नाशक
जगसरणा=जगत् के शरण्य
सरणं=शरण
मम=मेरे

सामान्य अर्थ

हे इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न ! हे विशिष्ट देहवाले ! हे नरेश्वर ! हे नरश्रेष्ठ ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे शरद् ऋतु के पूर्ण चंद्र की भाँति मुखवाले ! हे अज्ञानरहित ! हे उत्तम तेजवाले ! हे महामुने ! हे अपरिमित शक्तिशाली ! हे विशाल कुलवाले ! हे भवभय भंजक ! हे जगत् के शरण्य ! हे अजितनाथ प्रभो ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, क्योंकि आप ही मेरे शरण्य हो ।

विशेष अर्थ

इस गाथा में अजितनाथ प्रभु के 14 विशेषण बतलाकर उनकी

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

शरणागति को स्वीकार किया गया है ।

इन्द्र द्वारा ऋषभदेव प्रभु के वंश की स्थापना के समय प्रभु ने इक्षु लेने के लिए हाथ फैलाया था, इस कारण इन्द्र ने प्रभु के वंश का नाम इक्ष्वाकु रखा । अजितनाथ प्रभु भी उसी इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए ।

करोडों देव मिलकर भी प्रभु के रूप की तुलना नहीं कर सकते हैं, प्रभु का देह विशिष्ट कांतिमान् था । वे मनुष्यों के राजा व मनुष्यों में श्रेष्ठ थे ।

चारित्र के भार को वहन करने में वे मुनि वृषभ अर्थात् मुनियों में श्रेष्ठ थे ।

नवीन शरद् ऋतु का पूर्ण चंद्र जिस प्रकार अत्यंत ही आकर्षक होता है, उसी प्रकार अजितनाथ प्रभु का मुखमंडल भी पूर्णचंद्र की भाँति अत्यंत ही आकर्षक व मनमोहक था ।

ज्ञानावरणीय कर्म का संपूर्ण ध्वंस करने के कारण प्रभु अज्ञान रूपी अंधकार से सर्वथा रहित थे ।

असंख्य इन्द्रों से भी प्रभु की शक्ति अत्यधिक थी, अतः वे अतुल बली थे ।

अजितनाथ प्रभु का विशाल परिवार था । उनके 95 गणधर, 2200 केवली, 1450 मनःपर्यवज्ञानी, 9400 अवधिज्ञानी, 1 लाख साधु व 3,30,000 साध्वियाँ 298000 श्रावक तथा 5,45,000 श्राविकाओं का विशाल परिवार था ।

वे अपने शरणागत के भव के भय को चूर-चूर करनेवाले हैं । वे जगत् के जीवों के लिए परम शरण्य हैं ।

ऐसे अजितनाथ प्रभु की शरणागति स्वीकार कर मैं भी उन्हे भाव से प्रणाम करता हूँ ।

देव-दाणविंद-चंद सुर-वंद ! हट्ठ तुट्ठ-जिट्ठ-परम,
लट्ठ रूव-धंत-रुप्प-पट्ट-सेय-सुद्ध-निद्ध-धवल,
दंत-पंति ! संति ! सत्ति-कित्ति मुत्ति-जुत्ति-गुत्ति-पवर !
दित्ततेअ-वंद ! धेअ ! सव्वलोअ-भाविअप्पभाव !
णेय ? पइस मे समाहिं ।।14।। नारायओ

।। शब्दार्थ ।।

देव-दाणविंद=देवेन्द्र और दानवेन्द्र
चंद-सूर-वंद=चंद्र और सूर्य से वंदनीय
हट्ठ-तुट्ठ=हृष्ट-तुष्ट
जिट्ठ=ज्येष्ठ
परम-लट्ठ-रूव=श्रेष्ठ रूपवाले
धंत-रुप्प=तपे हुए चांदी
पट्टसेय=श्वेत पट्ट
सुद्ध-निद्ध=शुद्ध और स्निग्ध
धवल दंत-पंति=उज्ज्वल दाँतों की श्रेणी
संति=शांतिनाथ
सत्ति-कित्ति=शक्ति, कीर्ति
मुत्ति=मुक्ति
जुत्ति गुत्ति पवर=श्रेष्ठ युक्ति व गुप्तिवाले
दित्त-तेअ=दीप्त तेजवाले
वंद-धेय=वृंद से ध्यान करने योग्य
सव्वलोअ=समस्त लोक
भावियप्पभाव=प्रभाव डालने वाले
णेय=ज्ञेय
पइस=प्रदान करो
मे=मुझे
समाहिं=समाधि

सामान्य अर्थ

देवेन्द्र, दानवेन्द्र तथा सूर्य-चंद्र द्वारा वंदनीय ! हे आनंद स्वरूप ! हे प्रसन्नतापूर्ण ! हे अतिशय ज्येष्ठ ! हे परम सुंदर रूपवाले ! तपे हुए चांदी के पट्ट के समान उत्तम, निर्मल, स्निग्ध व श्वेत दंत पंक्तिवाले ! हे शक्तिशाली ! हे कीर्तिमान् ! हे श्रेष्ठ मुक्तिवाले ! हे श्रेष्ठ गुप्तिवाले ! हे योगीश्वर ! देववृंद के लिए ध्यान योग्य ! समस्त विश्व पर प्रभावशाली ! जानने योग्य हे शांतिनाथ ! आप मुझे समाधि प्रदान करो ।

विशेष अर्थ

अनेकविध विशेषणों के द्वारा इस गाथा में शांतिनाथ प्रभु को नमस्कार कर उनसे समाधि की याचना की गई है ।

हे शांतिनाथ प्रभो ! आप इस जगत् में देवेन्द्र-दानवेन्द्र तथा सूर्यचन्द्र के असंख्य देवों व इन्द्रों से भी वंदनीय हो । आपकी महिमा का कोई पार नहीं है । आप सदानंदी व संतुष्ट हो । इस जगत् में आपके साथ तुलना कर सके ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, अतः आप सबसे ज्येष्ठ हो । आपके अद्भुत रूप का वर्णन करने में कौन समर्थ है ? आपकी दंत-पंक्ति भी तपी हुई चांदी की भांति अत्यंत ही उज्ज्वल है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

हे प्रभो ! आप अनंत शक्ति के पुंज हो। मुक्तिमार्ग के सफल सुकानी हो। आपकी प्रतिपादन शैली अत्यंत ही अद्‌भुत है। देवसमूह के लिए भी आप ध्येय स्वरूप हो। इस जगत् में सर्वत्र आपका प्रभाव है। आप ही इस जगत् में ज्ञेय स्वरूप हो।

हे प्रभो ! आपके गुणों का वर्णन करने की मुझ में कोई शक्ति नहीं है। आप मुझे चित्त-समाधि प्रदान करो।

विमल-ससि-कलाइरेअ-सोमं,
वितिमिर सूर-कराइरेअ तेअं।
तिअसवइ-गणाइरेअ-रूवं,
धरणिधर-प्पवराइरेअ सारं ॥15॥ कुसुमलया
सत्ते अ सया अजियं, सारिरे अ बले अजियं।
तव संजमे अ अजियं, एस थुणामि जिणं अजियं ॥16॥ भुअगपरिरिंगियं

॥ शब्दार्थ ॥

विमल-ससिकला=निर्मल चंद्रकला	**सत्ते**=सत्त्व में
अइरेअ सोमं=अधिक सौम्य	**सारीरे**=शरीर के विषय में
वितिमिर-सूरकर=अंधकार रहित सूर्य किरण	**बले**=बल के विषय में
	अजियं=अजितनाथ की
अइरेअ-तेअं=अधिक तेज	**तव-संजमे**=तप और संयम में
तिअसवइ=इन्द्र	**एस**=ये
गणाइरेअ रूवं=गण से अधिक रूप	**थुणामि**=स्तुति करता हूँ।
धरणिधरप्पवर=श्रेष्ठ मेरु पर्वत	**जिणं**=जिन की
अइरेअ सारं=से अधिक दृढता	**सदा**=सदैव

सामान्य अर्थ

निर्मल चंद्र की कलाओं से भी अधिक सौम्य, सूर्य की तेजस्वी किरणों से भी अधिक तेजस्वी, इन्द्र समूह से भी अधिक रूपवान्, मेरुपर्वत से भी अधिक दृढ़तावाले, हमेशा आत्मबल में अजेय, शारीरिक व तप-बल में अजेय ऐसे अजितनाथ प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

विशेष अर्थ

तीर्थंकर परमात्मा में रहे सौम्यता आदि गुणों की किसी पदार्थ या व्यक्ति के साथ तुलना की जा सके, ऐसा कोई पदार्थ या व्यक्ति इस दुनिया में नहीं है । परमात्मा के सभी गुण अनुपमेय ही होते हैं, फिर भी लोक में उत्कृष्ट ऐसे पदार्थों को याद कर प्रभु के सौम्यता आदि गुणों की स्तुति की गई है । दुनिया में चंद्र की सौम्यता प्रसिद्ध है, परन्तु अजितनाथ प्रभु की सौम्यता चंद्र की सौम्यता से भी अधिक है । इसी प्रकार सूर्य का तेज, इन्द्र का रूप व मेरुपर्वत की अचलता प्रसिद्ध है, परन्तु प्रभु का तेज, रूप व स्थिरता तो सूर्य, इन्द्र व मेरुपर्वत से भी बढ़कर है ।

शारीरिक बल, आत्म बल व तप-संयम के बल में भी अजितनाथ प्रभु सबसे अजेय हैं ।

सोम गुणेहिं पावइ न तं नव सरय-ससी,
तेअ गुणेहिं पावइ न तं नव सरय-रवी ।
रूव-गुणेहिं पावइ न तं तिअस-गण वई,
सार गुणेहिं पावइ न तं धरणि-धर-वई ।।17।। खिज्जिअयं
तित्थयर-पवत्तयं तमरय-रहियं,
धीर-जण-थुयच्चियं चुय-कलि कलुसं ।
संति-सुहप्पवत्तयं तिगरण-पयओ,
संतिमहं महामुणि सरणमुवणमे ।।18।। ललिययं

।। शब्दार्थ ।।

सोमगुणेहिं=सौम्यतादि गुणों द्वारा
न पावइ=प्राप्त नहीं करते हैं ।
नव सरय ससी=शरद् ऋतु का नवीनचंद्र
तेअगुणेहिं=तेज आदि गुणों द्वारा
तं=उसे
नव सरय-रवी=शरद्ऋतु के सूर्य
रूव गुणेहिं=रूप आदि गुणों द्वारा
तिअसगणवई=इन्द्र
सार गुणेहिं=दृढ़ता आदि गुणों द्वारा
धरणिधरवई=मेरुपर्वत
तित्थ वर पवत्तयं=श्रेष्ठतीर्थ का प्रवर्तन करनेवाले
तम रय रहियं=अज्ञान व मोह से रहित
धीरजण=धीर पुरुष
थुयच्चिअं=स्तुति व पूजा कराए हुए

चुय=रहित	**संतिं=**शांतिनाथ को
कलि-कलुसं=कलह की श्यामलता	**महामुणिं=**महामुनि को
सुहप्पवत्तयं=शुभ/सुख को फैलानेवाले	**सरणं=**शरणागति
तिगरण=तीन करण	**उवणमे=**स्वीकार करता हूँ।
पयओ=प्रयत्नवाले	**अहं=**मैं

सामान्य अर्थ

शरद् ऋतु का पूर्ण चन्द्र भी जिनके आह्लादकतादि गुणों की तुलना नहीं कर सकता। शरद् ऋतु का पूर्ण किरणों से प्रकाशित सूर्य जिनके तेज आदि गुणों की बराबरी नहीं कर सकता, इन्द्र भी जिनके रूप आदि गुणों से तुलना नहीं कर सकता, मेरु पर्वत भी जिनके दृढ़ता आदि गुणों से तुलना नहीं कर सकता, श्रेष्ठ तीर्थ के प्रवर्तक, मोहनीय कर्म से रहित, प्राज्ञ पुरुषों द्वारा स्तवनीय व अर्चनीय, कलह-क्लेश से रहित ऐसे शांतिनाथ प्रभु की मन, वचन और काया की एकाग्रतापूर्वक शरण स्वीकार करता हूँ।

विशेष अर्थ

शांतिनाथ प्रभु में रही सौम्यता, तेज, अद्भुत रूप व दृढ़ता आदि जो-जो गुण हैं, उन गुणों की तुलना चंद्र, सूर्य, इन्द्र व मेरुपर्वत से नहीं हो सकती है, इसीलिए इस गाथा में कहा है कि शरद ऋतु का चंद्र, प्रभु में रहे सौम्य गुण की तुलना कदापि नहीं कर सकता है। इसी प्रकार सूर्य, इन्द्र, मेरु आदि भी प्रभु में रहे तेज आदि गुणों की तुलना नहीं कर सकते हैं।

शांतिनाथ प्रभु जगत् के जीवों के उद्धारक ऐसे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हैं। मोह व अज्ञान से मुक्त हो चुके है, वे कलह व क्लेश से सर्वथा रहित हैं, ऐसे प्रभु की मैं भावपूर्वक शरणागति स्वीकार करता हूँ।

विणओणय-सिर-रइ अंजलि-रिसि गण-संथुअं थिमियं,
विबुहाहिव-धणवइ-नरवइ-थुय-महिअच्चियं बहुसो।
अइरुग्गय-सरय-दिवायर-समहिय-सप्पभं तवसा,
गयणंगण-वियरण-समुइय-चारण-वंदियं सिरसा ॥19॥ किसलयमाला
असुर-गरुल-परिवंदियं, किन्नरोरग-नमंसियं।
देव-कोडि-सय-संथुअं, समण-संघ-परिवंदियं ॥20॥ सुमुहं

अभयं अणहं, अरयं अरुयं ।
अजिअं अजिअं, पयओ पणमे ।।21।। विज्जुविलसिअं

।। शब्दार्थ ।।

विणओणय=विनय से अवनत (झुके हुए)
सिर-रइ-अंजलि=मस्तक पर अंजलि कर
रिसिगण संथुअं=ऋषि समूह से स्तवना किए हुए
थिमियं=निश्चलता
विबुहाहिव=इन्द्र
धणवइ=कुबेर
नरवइ=राजा
थुय=स्तुति कराए हुए
महियच्चियं=वंदित व पूजित
बहुसो=अनेक बार
अइरुग्गय=तत्काल उदित
सरय-दिवायर=शरद का सूर्य
समहिय=उससे अधिक
सप्पभं=कांतिवाले
तवसा=तप द्वारा
गयणंगण=आकाश रूपी आंगन
वियरण=विचरते हुए
समुइय=एकत्र
चारण-वंदियं=चारण मुनि से वंदित
सिरसा=मस्तक द्वारा
असुर-गरुल=असुरकुमार,
परिवंदियं=प्रणाम कराए हुए
किन्नरोरग=किन्नर व नागकुमार
नमंसियं=नमस्कृत
देवकोडि-सय=100 करोड देवता
संथुयं=स्तुति कराए हुए
समण संघ=श्रमण संघ
परिवंदियं=वंदन कराए हुए
अभयं=भय रहित
अणहं=पाप रहित
अरयं=कर्म रज रहित
अरुयं=रोग रहित
अजियं=अजितनाथ का
अजियं=किसी से अपराभूत
पयओ=प्रणिधानपूर्वक
पणमे=प्रणाम करता हूँ

सामान्य अर्थ

विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए ऋषियों के समूह से वंदनीय, इन्द्र, कुबेर आदि देव तथा चक्रवर्ती आदि से स्तवनीय, वंदनीय और पूजनीय, तत्काल उदित शरद ऋतु के सूर्य से भी अधिक तप द्वारा कांतिवाले बने हुए, आकाश में विचरण करनेवाले, एकत्र हुए चारण मुनियों द्वारा वंदन कराए हुए,

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

असुरकुमार, सुवर्णकुमार आदि देवों द्वारा भाव से प्रणत, शतकोटि वैमानिक देवों द्वारा स्तुति कराए हुए, श्रमण प्रधान चतुर्विध संघ द्वारा वंदनीय, भय रहित, पाप रहित, कर्म रहित, रोग रहित और सभी से अजेय ऐसे अजितनाथ प्रभु को मैं प्रणिधानपूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

विशेष अर्थ

इस जगत् में जो भी ऋषि-मुनि चक्रवर्ती तथा देव-देवेन्द्र आदि आदरणीय-पूजनीय हैं, उनके लिए भी ये अजितनाथ प्रभु परम आदरपूर्वक नमस्करणीय, वंदनीय व पूजनीय हैं । यही बात प्रस्तुत गाथा में कही गई है । करोडों देवताओं से भी वंदनीय और पूजनीय ऐसे ये अजितनाथ प्रभु पाप, कर्म व रोग से सर्वथा मुक्त हैं । इस जगत् में अजितनाथ प्रभु सभी के लिए अजेय हैं, ऐसे अजितनाथ प्रभु को मन, वचन और काया की एकाग्रता पूर्वक मैं प्रणाम करता हूँ । भाव से उनकी शरणागति स्वीकार करता हूँ ।

जो मुनि तप के बल से प्राप्त चारण लब्धि द्वारा आकाश में गति कर सकते है, वे चारण मुनि कहलाते है ।

ये चारण मुनि दो प्रकार के होते है-जंघा चारण और विद्याचारण !

जंघाचारण और विद्याचारण मुनि सूर्य की किरणों का आलंबन लेकर अतिशय युक्त गति द्वारा जहां जाना चाहे, वहां जा सकते है ।

जंघाचारण मुनि एक कदम द्वारा रुचकवर द्वीप तक जा सकते है और एक ही कदम से वापस लौट सकते है । दूसरे कदम में नंदीश्वर द्वीप तक जा सकते है और तीसरे कदम में वापस अपने स्थान में आ सकते है ।

यदि जंघाचारण मुनि मेरुपर्वत पर जाना चाहे तो सिर्फ एक ही कदम में पांडुकवन में पहुँच सकते है और लौटते समय एक कदम में नंदनवन और दूसरे कदम में अपने स्थान में आ सकते है । उनका चारित्र अत्यंत प्रभावशाली होता है ।

विद्याचारण मुनि प्रथम कदम में मानुषोत्तर पर्वत पर और दूसरे कदम से नंदीश्वर द्वीप पर जाते है और वहां रहे चैत्यों को वंदनकर एक ही कदम से अपने स्थान में आ सकते हैं । उन्हें मेरुपर्वत पर जाना हो तो पहले कदम से नंदनवन, दूसरे कदम से अपने स्थान में आ जाते है ।

ऐसे चारण मुनियों से भी अजितनाथ प्रभु वंदनीय है ।

आगया-वर-विमाण-दिव्व-कणग
रह-तुरय-पहकर-सएहिं-हुलियं ।
ससंभमोअरण-खुभिअ-लुलिय-चल-
कुंडलंगय-तिरीड-सोहंत- मउलिमाला ।।22।। वेड्ढओ
जं सुर-संघा सासुर-संघा-वेर विउत्ता भत्ति-सुजुत्ता,
आयर-भूसिअ-संभम-पिंडिअ सुट्ठु सुविम्हिय सव्व बलोघा ।
उत्तम-कंचण-रयण-परूविय-भासूर-भूसण-भासुरिअंगा,
गाय-समोणय-भत्ति-वसागय-पंजलि-पेसिय-सीस-पणामा ।।23।।
रयणमाला

वंदिऊण थोऊण तो जिणं, तिगुणमेव य पुणो पयाहिणं ।
पणमिऊण य जिणं सुरासुरा, पमुइआ सभवणाइ तो गया ।।24।।
खित्तयं

तं महामुणि-महंपि पंजली, राग दोस भय मोहवज्जियं ।
देव दाणव-नरिंद वंदिअं, संतिमुत्तमं महातवं नमे ।।25।। खित्तयं

।। शब्दार्थ ।।

आगया=आए हुए
वर-विमाण=श्रेष्ठ विमान
दिव्व कणग रह=दिव्य सुवर्ण रथ
तुरय=घोडे
पहकर=समूह
सएहिं=सैकड़ों
हूलियं=शीघ्र
ससंभमोअरण=शीघ्र उतरने से
खुभिय=क्षुब्ध बने
लुलिय=डोलते हुए
चल कुंडलं=चंचल कुंडल
अंगय=भुजाबंध
तिरीड=मुकुट
सोहंत=सुशोभित
मउलि माला=मस्तक की माला
जं=जो
सुर-संघा=देवसमूह
सासुर-संघा=असुरों का समूह
वेर विउत्ता=वैर से रहित
भत्ति सुजुत्ता=भक्तियुक्त
आयर=आदर
भूसिय=विभूषित
संभम=संभ्रम
पिंडिय=पिंडीभूत

सुट्ठु=सुंदर
सुविम्हिय=विस्मित हुए
सव्व=समस्त
बलौघा=परिवार से युक्त
उत्तम कंचण=श्रेष्ट स्वर्ण
रयण=रत्न
परूविय=बना हुआ
भासुर भूसण=श्रेष्ठ आभूषण
भासुरियंगा=देदीप्यमान शरीरवाले
गाय=शरीर
समोणय=अर्धावनत मुद्रा से रहे
भत्तिवसागय=भक्ति के वश होकर आए
पंजलि=अंजलि
पेसिय=प्रेषित
सीस-पणामा=मस्तक से प्रणाम
वंदिऊण=वंदन करके
थोऊण=स्तुति करके
तो=बाद में
जिणं=जिन की
तिगुणमेव=तीन बार
पुणो=पुनः
पयाहिणं=प्रदक्षिणा देकर
पणमिऊण=प्रणाम करके
सुरासुरा=सुर और असुर
पमुइया=खुश हुए
सभवणाइं=अपने स्थान के प्रति
तो=बाद में
गया=गए
तं=उन
महामुणिं=महामुनि को
अहं पि=मैं भी
पंजली=हाथ जोड़कर
राग-दोस-भय=राग-द्वेष व भय
मोहवज्जियं=मोह से रहित
देव-दाणव=देव और दानव
नरिंद-वंदियं=नरेन्द्र से वंदित
संतिं=शांतिनाथ को
उत्तमं=श्रेष्ठ
महातवं=महातपस्वी को
नमे=नमस्कार करता हूँ ।

सामान्य अर्थ

उत्तम विमानों में बैठकर सुवर्ण के दिव्यरथों में आरूढ़ होकर तथा सैकड़ों घोड़ों पर सवार होकर जो शीघ्र आए हुए हैं और शीघ्रता से नीचे उतरने के कारण जिनके कान के कुंडल, भुजाबंध और मुकुट डोल रहे हैं- चंचल बने हुए हैं तथा मस्तक पर विशेष सुंदर मालाओं को धारण किए हुए हैं, जो परस्पर वैरवृत्ति से मुक्त व अत्यंत भक्तिवाले हैं, जो शीघ्रता से इकट्ठे हुए हैं और अत्यंत ही आश्चर्यचकित बने हुए हैं तथा सकल सैन्य परिवार से युक्त हैं । जिनके अंग उत्तम जाति के सुवर्ण व रत्नों से प्रकाशित अलंकारों

से देदीप्यमान हैं, जिनका शरीर भक्तिभाव से झुका हुआ है तथा जो हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं, ऐसे सुर व असुर देवताओं के समूह प्रभु को वंदन कर, स्तवना और तीन बार प्रदक्षिणा देकर पुनः अपने भवनों में लौटते हैं ऐसे राग-द्वेष-भय-मोह से रहित, देवेन्द्र-दानवेन्द्र और नरेन्द्रों से वंदित, श्रेष्ट महान् तपस्वी शांतिनाथ प्रभु को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ।

विशेष अर्थ

इन चार गाथाओं में श्री शांतिनाथ प्रभु के वंदन के लिए आ रहे देवताओं के स्वरुप का वर्णन किया है। ये देवतागण विमान में बैठकर प्रभु को वंदन के लिए आते है।

देवताओं के विमान तीन प्रकार के होते है :-

1) अवस्थित विमान :- जिन विमानों में देवतागण रहते हैं, वे शाश्वत विमान होने से उन्हें अवस्थित विमान कहते है।

2) विकुर्वित विमान :- अपनी क्रीडा के निमित्त से देवतागण अपनी वैक्रिय लब्धि से विमानों की रचना करते है, उन्हे विकुर्वित विमान कहते है।

3) पारियानिक विमान : ऊर्ध्वलोक से तिर्च्छालोक में आने के लिए इन्द्र आदि जिन पालक, पुष्पक आदि विमानों की रचना करते हैं, उन्हे पारियानिक विमान कहते है।

कुछ देवता उत्तम विमानों में बैठकर, कुछ देवता दिव्यरथों में आरुढ होकर और कुछ देवता घोडों पर सवार होकर जब अत्यंत ही तीव्र गति से आकाश मार्ग से नीचे उतरते हैं, तब उनके कान के कुंडल, बाजुबंध तथा मुकुट आदि डोलने लगते है।

देवता असुरों के साथ में आते है। प्रभु के सापीप्य के कारण उनकी वैर कृतियाँ भी शांत हो गई होती है, उनके रोम रोम में प्रभु के प्रति अद्‌भुत भक्तिभाव रहा होता है। उनके शरीर पर अत्यंत ही देदीप्यमान अलंकार होते है।

अंबरंतर-विआरणिआहिं,
ललिअ-हंस-बहु-गामिणिआहिं,
पीण-सोणि-थण-सालिणिआहिं,
सकल-कमल-दल-लोअणिआहिं ॥26॥ दीवयं

पीण-निरंतर-थणभर-विणमिअ-गाय लयाहिं,
मणि-कंचण-पसिढिल-मेहल-सोहिअ-सोणि-तडाहिं,
वर-खिंखिणि-नेउर-सतिलय-वलय-विभूसणिआहिं,
रइकर-चउर-मणोहर-सुंदर-दंसणिआहिं ॥27॥ चितक्खरा
देवसुंदरीहिं पायवंदिआहिं वंदिया य जस्स ते सुविक्कमा कमा ।
अप्पणो निडालएहिं मंडणोड्डणप्पगारएहिं केहिं केहिं वि ?
अवंग तिलय पत्तलेह-नामएहिं चिल्लएहिं संगयंगयाहिं,
भत्तिसन्निविट्ठ-वंदणागयाहिं हुंति ते वंदिआ पुणो पुणो ॥28॥ नारायओ
तमहं जिणचंदं अजिअं जिअमोहं ।
धुय सव्व-किलेसं, पयओ पणमामि ॥29॥ नंदिअयं

॥ शब्दार्थ ॥

अंबरंतर=आकाश के अंतर में
विआरणिआहिं=विचरण करनेवाली
ललिय-हंसबहु=मनोहर हंसी
गामिणिआहिं=गतिवाली
पीण=पुष्ट
सोणि=नितंब
थण=स्तन
सालिणिआहिं=सुशोभित
सकल=समस्त
कमलदल=कमलपत्र
लोअणिआहिं=लोचनवाली
पीण-निरंतर=पुष्ट और अंतर रहित
थणभर=स्तन का भार
विणमिय=झुके हुए
गाय लयाहिं=देहलता
मणि-कंचण=मणि व सुवर्ण
पसिढिल=शिथिल
मेहल=मेखला
सोहिय=सुशोभित
सोणितडाहिं=नितंब प्रदेशवाली
वर-खिंखिणि=श्रेष्ठ घुंघरिया
नेउर=नूपुर
सतिलय=तिलक सहित
वलय=कंकण
विभूसणिआहिं=अलंकृत
रइकर=प्रीति करनेवाली
चउर=चतुर
मणोहर=सुंदर
सुंदर दंसणिआहिं=सुंदर व दर्शनीय
देव सुंदरीहिं=देवांगनाओं द्वारा
पाय वंदियाहिं=चरण में वंदन करनेवाली
वंदिया=वंदन किया है
य=और

जस्स=जिसके
ते=वे
सुविक्कमा=अत्यंत पराक्रमवाले
कमा=चरण
अप्पणो=अपना
निलाडएहिं=मस्तक द्वारा
मंडणोड्डुण=बडा शणगार
पगारएहिं=प्रकार द्वारा
केहिं केहिं=कई
वि=विविध
अवंग तिलय=अपांग-तिलक
पत्तलेहनामएहिं=पत्रलेखात्मक
चिल्लएहिं=सुंदर
संगयंगयाहिं=प्रमाणोपेत अंगवाली
भत्ति=भक्ति
सन्निविट्ठ=भरा हुआ
वंदणागयाहिं=वंदनार्थ आई हुई
हुंति=होता है
ते=वे दोनों
वंदिया=वंदित
पुणो पुणो=पुनः पुनः
तं=उस
जिणचंदं=जिन चंद्र को
अजियं=अजितनाथ को
जियमोहं=मोह जीत लिया है
धूयसव्वकिलेसं=समस्त क्लेश नाशक
पयओ=प्रणिधानपूर्वक
पणमामि=प्रणाम करता हूँ।

सामान्य अर्थ

आकाश में विचरण करनेवाली, मनोहर हंसी के समान गतिवाली, पुष्ट नितंब और स्तनों से सुशोभित, खिले हुए कमल पत्र के समान नेत्रवाली, पुष्ट व अंतर रहित स्तनों के भार से विशेष झुके हुए शरीरवाली, रत्न व सुवर्ण की झुलती मेखलाओं से सुंदर नितंब प्रदेशवाली, उत्तम घूंघरु नूपुर, झांझर और कंकण-कड़े आदि विविध आभूषण धारण करनेवाली, प्रीति उत्पन्न करनेवाली, चतुर पुरुषों के मन को हरनेवाली, सुंदर दर्शनवाली, जिन चरणों में नमस्कार करने के लिए तत्पर बनी हुई, आँख में काजल, कपाल पर तिलक, स्तनमंडल पर पत्रलेखा इत्यादि विविध प्रकार के आभूषणों वाली, देदीप्यमान, प्रमाणोपेत अंगवाली, अथवा विविध नाट्य करने में तत्पर बनी हुई तथा भक्तिपूर्वक वंदन के लिए आई हुई देवांगनाओं ने अपने ललाट द्वारा जिनके पराक्रमी चरणों में वंदन किया है तथा जो मोह के विजेता सर्वक्लेशों के नाशक हैं, ऐसे श्री अजितनाथ प्रभु को मैं मन, वचन और काया के प्रणिधान पूर्वक नमस्कार करता हूँ। (26-27-28-29)

विशेष अर्थ

देवलोक में रहे देवता तो सद्भावपूर्वक आकर प्रभु को नमस्कार करते ही है, परंतु देवलोक में रही देवियाँ भी बहुमानपूर्वक आकर प्रभु को किस प्रकार वंदन करती हैं, उसका वर्णन इन चार गाथाओं में किया है ।

वे देवियाँ आकर अजितनाथ प्रभु को वंदन करती है । इन अजितनाथ प्रभु ने मोह को सर्वथा जीत लिया है अर्थात् आत्मा में मोह पैदा हो, ऐसे प्रबल निमित्त मिलने पर भी जिन्हें लेश भी मोह नहीं था । जिन्होंने राग-द्वेष के सभी द्वंद्वों को जीत लिया है, इस कारण वे क्लेश से सर्वथा मुक्त है ।

वे राग-द्वेष के विजेताओं (जिनों) में भी सर्वश्रेष्ठ है । उनके चरणों में आकर जो देवियाँ नमस्कार करती है ।

उन देवियों का शरीर अत्यंत ही देदीप्यमान है । उनके देह सौंदर्य का यहां वर्णन किया गया है । वे देवियाँ पुष्ट नितंबवाली हैं, भरावदार भारी स्तनोंवाली है । उनकी आंखें कमल की पंखुडी के समान है । उनके शरीर पर अत्यंत ही मनोहर वस्त्र है । कपाल पर तिलक हैं, आंखों में काजल हैं, भाल एवं स्तन प्रदेश में पत्र लेखाएं चित्रित हैं । हाथ में कंकण है, कमर पर कटि मेखला है, पांवों में घुंघरु हैं ।

हंसी की तरह उनकी चाल अत्यंत ही मनोहर है । ऐसी देवियाँ हंस गति से प्रभु के पास आती है ।

थुअ-वंदिअयस्सा, रिसि-गण-देव-गणेहिं,
तो देव वहुहिं, पयओ पणमिअस्सा
जस्स जगुत्तम सासण अस्सा
भत्ति वसागय-पिंडिअयाहिं,
देव-वरच्छरसा-बहुआहिं
सुर-वर रइगुण-पंडिअयाहिं ।।30।। भासूरयं
वंस-सद्द-तंति-ताल मेलिए, तिउक्खराभिराम
सद्‌द-मीसए कए अ, सुइ समाणणे अ
सुद्ध-सज्ज-गीय-पाय-जाल घंटिआहिं,
वलय-मेहला-कलाव-नेउराभिराम-सद्द-मीसए कए अ,

देव-नट्टिआहिं हाव-भाव-विब्भम-प्पगारएहिं
नच्चिऊण अंगारएहिं
वंदिया य जस्स ते सुविक्कमा कमा,
तयं तिलोय-सव्व सत्त संतिकारयं
पसंत सव्व-पाव-दोसमेसहं
नमामि संतिमुत्तमं जिणं ।।31।। नारायओ

।। शब्दार्थ ।।

थुअ वंदिअयस्सा=स्तुति और वंदन कराए हुए
रिसिगण=ऋषियों का समूह
देवगणेहिं=देवताओं के समूह द्वारा
तो=बाद में
देववहुहिं=देवियों द्वारा
पयओ=प्रणिधानपूर्वक
पणमियस्सा=प्रणाम कराए हुए
जस्स=मुक्तिप्रदान योग्य
जगुत्तम=विश्व में उत्तम
सासणअस्सा=शासनवाले
भत्ति=भक्ति
वसागय=वश से आई हुई
पंडिअयाहिं=कुशल
देववरच्छरसा=देवों की श्रेष्ठ अप्सराएँ
बहुआहिं=अनेक
सुर=देवता
वररइगुण=श्रेष्ठ प्रीति गुण
पिंडिअयाहिं=एकत्रित
वंस-सद्द=बांसुरी के शब्द
तंति-ताल मेलिए=वीणा व ताल की आवाज को जोडना

तिउक्खराभिराम-सद्द मीसए कए= आनद्ध वाद्य यंत्र की आवाज को मिश्र करती हुई
सुइ समाणणे अ=श्रुति को समान करती हुई
वंस-सद्द-तंति-ताल मेलिए=वंशी आदि के शब्द में वीणा और ताल आदि के स्वर को मिलाती हुई । वंस-वंशी । सद्द-शब्द । तंति-वीणा । मेलिअ-मिलाना ।
तिउक्खराभिराम सद्द-मीसए कए=आनद्ध वाद्यों के नाद का मिश्रण करती ।
तिउक्खर=मृदङ्ग, पणव और दर्दुरक नामके चमड़े के मढ़े हुए वाद्य ।
अभिराम=प्रिय ।
सद्द=शब्द । मीसअ-कअ-मिश्रण करना ।
सुइ-समाणणे अ=और श्रुतियों को समान करती हुई ।
सुइ=स्वर का सूक्ष्म भेद ।
समाणण=सम में लाने की क्रिया ।
सुद्ध-सज्ज-गीय-पाय-जाल-घंटिआहिं= दोष रहित प्रकृष्ट गुणवाले

गीत गाती तथा पायल की घूघरियाँ बजाती ।
सुद्ध-दोष-रहित । सज्ज-प्रकृष्ट गुणवाला । गीय-गीत ।
पायजाल=पादजाल, पाँवका एक प्रकार का आभूषण ।
घंटिआ=घूघरियाँ ।
वलय-मेहला-कलाव-नेउराभिराम-सद्द-मीसए कए=कङ्कण मेखला, कलाप और झाँझर के मनोहर शब्दों का मिश्रण करती ।
वलय=कङ्कण ।
मेहला=मेखला ।
कलाव=कलाप ।
नेउर=नूपुर, झाँझर ।
अभिराम=मनोहर ।
सद्द=शब्द ।
मीसए कए=मिश्रण करती ।
अ=शब्द
देव-नट्टिआहिं=देवनर्तिकाओं से । देवलोक में नृत्य-नाट्य आदि का कार्य करनेवाली देवनर्तिका कहलाती है ।
हाव-भाव-विब्भम-प्पगारएहिं=हाव, भाव और विभ्रम के प्रकारों से ।
हाव=मुख से की जानेवाली चेष्टा ।
भाव=मानसिक भावों से दिखायी जानेवाली चेष्टा ।
विब्भम=नेत्र के प्रान्तभाग से दिखाया जानेवाला विकार विशेष ।
नच्चिऊण अंगारएहिं=अंगहारों से नृत्य करके । नच्चिउण-नृत्य करके । अंगहारअ-अङ्गहार । शरीर के अङ्गोपाङ्गों से विविध अभिनय करने को अङ्गहार कहते हैं ।
वंदिया=वन्दित
य=और ।
जस्स=जिनके ।
ते=वे (दोनों) ।
सुविक्कमा कमा=उत्तम पराक्रमशाली चरण ।
तयं=उन ।
तिलोय-सव्व-(सत्त)-संतिकारयं=तीनों लोक के सर्व प्राणियों को शान्ति करनेवाले ।
पसंत-सव्व-पाव-दोसं=जो सर्व पाप और दोषों-रोगों से रहित हैं ।
पसंत=प्रशान्त, रहित ।
दोस=दोष, रोग ।
मेस हं=यह मैं ।
नमामि=नमन करता हूँ । नमस्कार करता हूँ ।
संतिं=श्री शान्तिनाथ को ।
उत्तमं=उत्तम !
जिणं=जिन भगवान् ।

सामान्य अर्थ

देवों को उत्तम प्रकार की प्रीति प्रदान करने में कुशल ऐसी स्वर्ग की अनेक सुंदरियाँ भक्ति से इकट्ठी होती हैं । उनमें से कुछ बांसुरी जैसे सुषिर वाद्य बजाती हैं, कुछ ताल आदि घन वाद्य बजाती हैं और कुछ नृत्य करती जाती हैं और पैर में रहे जालबंध घुंघरूओं के आवाज को कंकण, मेखला-कलाप और नूपुर की आवाज के साथ जोड़ती हैं । उस समय मुक्ति प्रदान करने में समर्थ और जगत् में उत्तम शासन करनेवाले प्रभु के चरणों में सर्व प्रथम ऋषिमुनि और देवतागण वंदन करते हैं, उसके बाद देवियाँ प्रणिधान पूर्वक प्रणाम करती हैं, उसके बाद हाव, भाव, विभ्रम और अंगहार करती हुई देव-नर्तकियाँ वंदन करती हैं ।

तीन लोक के समस्त जीवों को शांति प्रदान करनेवाले, सर्व पाप व दोषों से रहित, उत्तम जिन श्री शांतिनाथ प्रभु को मैं भी नमस्कार करता हूँ । (30-31)

विशेष अर्थ

इस कलापक में देवनर्तिकाओं के द्वारा श्री शांतिनाथ प्रभु की जो संगीतमय वंदना-पूजा हुई, उसका सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है ।

सर्व प्रथम उन देवनर्तिकाओं का स्वरुप बतलाया गया है । वे नर्तिकाएं देवताओं को उत्तम प्रीति पैदा कराने में कुशल है । स्वर्गलोक की ये श्रेष्ट सुंदरियाँ प्रभु के प्रति रही भक्ति के कारण एकत्रित हुई है । वे देव सुंदरियाँ प्रभु को वंदन करते समय अद्‌भुत संगीत व नृत्यकला प्रस्तुत करती है, उसका वर्णन करते हुए कहते है कि वे देवांगनाएं बांसुरी आदि शुषिर वाद्यों के आवाज को विविध ततवाद्यों के स्वर में मिश्र कर रही है और उन संयुक्त स्वरों को कांस्यताल के आवाज के साथ मिला रही है । मृदंग, पणव और दर्ददिका अवनद्ध वाद्य के त्रिविध मृदंग के नाद के साथ मिश्र कर रही है तथा स्वर श्रुतियों को सम कर रही है ।

शुद्ध और प्रगुण गीत गा रही हैं और उसके साथ पादजाल की घुंघरियों के आवाज को मिश्र कर रही है इतना ही नहीं उसमें कंकण, मेखला कलाय और नुपूर के मनोहर शब्दों का मिश्रण कर रही हैं ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

कई अप्सराएं अत्यंत मधुर स्वर से श्रुति, ग्राम, मूर्छना, लय, तान, राग आदि नियमों का पालन करती हुई शुद्ध गीत गाती हैं और बजे रहे वाद्य यंत्रों के साथ बराबर मेल Matching कर रही है।

कई अप्सराएं, जिनके पांव में घुंघरु, हाथ में कंकण, कटि पर कटि मेखला और पैरों में नुपूर पहनी हुई है, वे नृत्य कर रही हैं, उस नृत्य में हाव भाव और विविध प्रकार के अंगहार भी होते है। वे स्वस्तिक अभिनय, श्री वत्स अभिनय, नंद्यावर्त अभिनय आदि आठ मंगल के आकारवाले अभिनय और विविध नृत्य करती है।

ऐसे संगीतमय वातावरण में भोगियों के मन में भोग की भावना जागृत होती हैं, परंतु जो शांतिनाथ प्रभु वीतराग हैं, ऐसे प्रभु के मन पर उन संगीत व नृत्य का कुछ भी प्रभाव नहीं पडता है, ऐसे वीतराग प्रभु को मस्तक झुकाकर नमन करने का मन किसे नहीं होता है ?

उस समय वहां उपस्थित सभी ऋषि, देव-देवी आदि सभी वीतराग प्रभु को भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं। प्रणिधान पूर्वक स्तुति-स्तवना करते है और अंत में तीन प्रदक्षिणा देकर वंदन-विधि-समाप्त करती है।

इस अपूर्व दृश्य से चमत्कृत हुए श्री नंदिषेण मुनि कहते हैं कि त्रिलोक के सभी प्राणियों को शांति करनेवाले, सभी पाप और दोषों को शांत करनेवाले उत्तम जिन अर्थात् शांतिनाथ प्रभु को मैं वंदन करता हूँ।

छत्त-चामर पडाग जूअ-जव-मंडिआ,
झयवर-मगर-तुरय-सिरिवच्छ-सुलंछणा ।
दीव-समुद्द मंदर-दिसागय-सोहिआ,
सत्थिअ-वसह-सीह-रह चक्क-वरंकिया ।।32।। ललिअयं
सहाव-लट्ठा सम-प्पइट्ठा, अदोस-दुट्ठा गुणेहिं जिट्ठा ।
पसाय-सिट्ठा तवेण पुट्ठा, सिरिहिं इट्ठा रिसीहिं जुट्ठा ।।33।।

वाणवासिआ

ते तवेण धुअ सव्व पावया, सव्वलोअ-हिअ-मूल-पावया ।
संथुआ अजिअ संति-पायया, हुन्तु मे सिव-सुहाण दायया ।।34।।

अपरांतिका

।। शब्दार्थ ।।

छत्त चामर-पडाग=छत्र, चामर, पताका
जूअ=स्तंभ
जव=यव
मंडिआ=अलंकृत
झयवर=श्रेष्ठ ध्वज
मगर=मगरमच्छ
तुरय=घोड़ा
सिरिवच्छ=श्रीवत्स
सुलंछणा=सुंदर लांछनवाले
दीव-समुद्द=द्वीप समुद्र
मंदर=मंदर पर्वत
दिसागय=दिग्गज
सोहिआ=सुशोभित
सत्थिअ=स्वस्तिक
वसह=वृषभ
सीहरह=सिंहरथ
चक्कवर=श्रेष्ठ चक्र
अंकिया=चिह्नवाला
सहाव-लट्ठा=स्वभाव से सुंदर
समप्पइट्ठा=समभाव में स्थिर
अदोस-दुट्ठा=दोष रहित
गुणेहिं जिट्ठा=गुणों से ज्येष्ठ
पसाय सिट्ठा=कृपा करने में श्रेष्ठ
तवेण पुट्ठा=तप से पुष्ट
सिरीहिं इट्ठा=लक्ष्मी से पूजित
रिसीहिं जुट्ठा=ऋषियों से सेवित
ते=उन्होंने
तवेण=तप द्वारा
धूय सव्व पावया=सभी पाप नष्ट कर दिए
सव्वलोअ=समस्त लोक
हियमूल=हित का मूल
पावया=प्राप्त करानेवाले
संथुया=अच्छी तरह से स्तुति किए हुए
अजिय-संति=अजितनाथ, शांतिनाथ
पायया=पूज्य
हुंतु=हो
मे=मुझे
सिव सुहाण=मोक्षसुख के
दायया=दाता

जो छत्र, चामर, पताका, स्तंभ, जौ, श्रेष्ठ ध्वज, मगरमच्छ, अश्व, श्रीवत्स, द्वीप, समुद्र, मंदर पर्वत और ऐरावण हाथी आदि शुभ लक्षणों से सुशोभित हैं ।।32।।

जो स्वरूप से सुंदर, समभाव में स्थिर, दोष रहित, गुण-श्रेष्ठ तप से पुष्ट, लक्ष्मी से पूजित, ऋषियों से सुसेवित है ।।33।।

जिन्होंने तप द्वारा समस्त पाप कर्मों का नाश किया है, समस्त जीव मात्र को हित का मार्ग बतलाने वाले हैं। जो सुंदर ढंग से स्तवनीय हैं, ऐसे पूज्य श्री अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु मुझे मोक्ष-सुख प्रदान करें ।।34।।

विशेष अर्थ

इन तीन गाथाओं में अजितनाथ व शांतिप्रभु की संयुक्त स्तुति की गई है। तीर्थंकर परमात्माओं का देह-सौंदर्य सर्वोत्कृष्ट होता है। उनके रूप-बल आदि की तुलना कर सके, ऐसा कोई व्यक्ति जगत् में नहीं होता है। उनके हाथ-पैर आदि में छत्र, चामर आदि श्रेष्ठ लक्षण होते हैं।

उनका स्वभाव अत्यंत ही सौम्य, मृदु व शांत होता है। वे सम-भाव में स्थिर होते हैं। सर्व दोषों से रहित होने के कारण वे निर्दोष व सर्वगुण संपन्न होते हैं। जगत् के जीवों पर उनकी करुणा-कृपा अपरंपार होती है।

उनकी आत्मा तप से पुष्ट है, वे ज्ञानादि लक्ष्मी से पूजित हैं तथा अनेक ऋषि-मुनि भी उनकी उपासना करते हैं।

अपने उत्कृष्ट कोटि के तप द्वारा उन्होंने पाप कर्मों को समूल नष्ट कर दिया है और जगत् के जीवों के कल्याण के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना कर वे सभी जीवों को मोक्षमार्ग बतलाते हैं। ऐसे परम वंदनीय, नमस्करणीय अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु मुझ पर अनुग्रह करें और मुझे शाश्वत मोक्ष सुख प्रदान करें।

एवं तव बल विउलं, थुअं मए अजिअ-संतिजिण जुअलं ।
ववगय-कम्म रयमलं, गइं गयं सासयं विउलं ।।35।। गाहा
तं बहुगुणप्पसायं, मुक्ख सुहेण परमेण अविसायं ।
नासेउ मे विसायं, कुणउ अपरिसाविअप्पसायं ।।36।। गाहा
तं मोएउ अ नंदिं, पावेउ अ नंदिसेणमभिनंदिं ।
परिसा वि अ सुह-नंदिं, मम य दिसउ संजमे नंदिं ।।37।। गाहा

।। शब्दार्थ ।।

एवं=इस प्रकार
तवबल विउलं=तपबल से महान्
थुयं=स्तवना किए गए
मए=मेरे द्वारा
अजिय-संति=अजितनाथ-शांतिनाथ
जिण-जुअलं=जिनयुगल

ववगय=दूर हुई है
कम्मरयमलं=कर्म रज व मैल
गइं गयं=गति को प्राप्त
सासयं=शाश्वत
विउलं=विपुल
तं=वे
बहु गुणप्पसायं=अनेक गुणों के प्रसाद वाला
मुक्ख सुहेण=मोक्षसुख द्वारा
परमेण=परम
अविसायं=क्लेश रहित
नासेउ=नाश हो
मे=मेरा
विसायं=विषाद
कुणउ=करो
अपरिसाविअ=आस्त्रव रहित
पसायं=कृपा
तं=वे
मोएउ=खुश करे
अ=और
नंदिं=गायक को
पावेउ=प्राप्त करे
नंदिसेणं=नंदिषेण को
अभिनंदिं=वृद्धि
परिसा वि=पर्षदा भी
अ=और
सुहनंदिं=सुख और समृद्धि
मम=मुझे
य=और
दिसउ=प्रदान करे
संजमे=संयम में
नंदिं=अति आनंद

सामान्य अर्थ

तप से महान्, कर्म रूपी रज व मल से रहित, शाश्वत व पवित्र धाम को प्राप्त हुए अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु की मैंने स्तवना की ।।35।।

अनेक गुणों से युक्त तथा श्रेष्ठ मोक्षसुख के कारण समस्त क्लेशों से रहित ऐसे अजितनाथ व शांतिनाथ प्रभु मेरे विषाद का नाश करें ।।36।।

उन दोनों प्रभु के प्रभाव से स्तवन को गानेवाले और स्तवन रचयिता को हर्ष प्राप्त हो तथा स्तवन को सुनने वाले सभी को सुख व समृद्धि मिले । मेरी अंतिम अभिलाषा यही है कि मेरे संयम में वृद्धि हो ।।37।।

विशेष अर्थ

उपर्युक्त गाथाओं में अजितनाथ व शांतिनाथ उभय तीर्थंकर की संयुक्त स्तवना करके स्तवन रचयिता ने अपने नाम का उल्लेख कर प्रभु के पास प्रार्थना की है कि इस स्तवन को गाने व सुनने वाले सभी को आनंद-सुख की प्राप्ति हो और मेरे संयम में वृद्धि हो अर्थात् मैं निर्मल संयम धर्म का पालन

कर सकूं', ऐसी शक्ति मुझे प्राप्त हो। संयम संबंधी मेरे अध्यवसाय निर्मल बनते जाय, यही एक मेरी हार्दिक-अभिलाषा है।

पक्खिअ-चाउम्मासिअ संवच्छरिए अवस्स भणिअव्वो।
सोअव्वो सव्वेहिं, उवसग्ग-निवारणो एसो ॥38॥
जो पढइ जो अ निसुणइ, उभओ कालं पि अजिअ संति-थयं।
न हु हुंति तस्स रोगा, पुव्वुप्पन्ना वि नासंति ॥39॥
जइ इच्छह परम पयं, अहवा कित्तिं सुवित्थडं भुवणे।
ता तेलुक्कुद्धरणे जिण वयणे आयरं कुणह ॥40॥

॥ शब्दार्थ ॥

पक्खिअ=पाक्षिक
चाउम्मासिअ=चातुर्मासिक
संवच्छरिए=सांवत्सरिक
अवस्स=अवश्य
भणियव्वो=बोलना चाहिए
सोअव्वो=सुनना चाहिए
सव्वेहिं=सभी के द्वारा
उवसग्ग निवारणो=उपसर्ग निवारक
एसो=यह स्तव
जो=जो व्यक्ति
पढइ=पढ़ता है
निसुणइ=नित्य सुनता है
उभओ कालं पि=सुबह व शाम
अजिय-संति-थयं=अजितशांति स्तवन
न हु हुंति=नहीं होते हैं
तस्स=उसके
रोगा=रोग
पुव्वुप्पन्ना=पूर्वोत्पन्न
वि=भी
नासंति=नष्ट होते हैं
जइ=यदि
इच्छह=चाहते हो
परमपयं=परमपद-मोक्ष
अहवा=अथवा
कित्तिं=कीर्ति
सुवित्थडं=सुविस्तृत
भुवणे=जगत् में
ता=तो
तेलुक्कुद्धरणे=तीन लोक का उद्धार करनेवाले
जिणवयणे=जिन वचन में
आयरं=आदर
कुणह=करो

सामान्य अर्थ

पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरी प्रतिक्रमण में यह स्तवन अवश्य पढ़ना चाहिए और अन्य सभी को सुनना चाहिए। यह स्तवन उपसर्गों का निवारण करनेवाला है ॥38॥

जो व्यक्ति इस अजित-शांति स्तवन को प्रतिदिन सुबह शाम अवश्य पढ़ता है, उसे रोग उत्पन्न नहीं होते हैं और पूर्वोत्पन्न रोग भी नष्ट हो जाते हैं ।।39।।

यदि तुम परमपद अथवा संपूर्ण जगत् में विशाल यश पाना चाहते हो तो तीन लोक का उद्धार करने वाले जिनवचन में आदर करो ।।40।।

विशेष अर्थ

उपर्युक्त गाथाओं द्वारा अजित-शांति स्तवन की महिमा बतलाई गई है । यह स्तवन सभी प्रकार के रोगों का नाश करनेवाला है । इस स्तवन को पढ़ने से पहले उत्पन्न हुए रोग भी नष्ट हो जाते हैं । स्तवन की अंतिम गाथा में जिनवचन की महत्ता बतलाते हुए कहा है कि यदि तुम्हें मोक्ष या उज्ज्वल कीर्ति पाने की इच्छा है तो जिनेश्वर के वचनों (आज्ञाओं में) में आदर करनेवाले बनो ।

स्तुति क्रम को ध्यान में लेने पर यह अजित-शांति स्तवन 16 खंडों में विभक्त हैं :–

खंड	विषय	गाथाएं	विशिष्ट संज्ञा
1	मंगल आदि	1-2-3	मुक्तक
2	अजितनाथ-शांतिनाथ संयुक्त स्तुति	4-5-6	विशेषक
3	अजितनाथ स्तुति	7	मुक्तक
4	शांतिनाथ स्तुति	8	मुक्तक
5	अजितनाथ स्तुति	9-10	संदानितक
6	शांतिनाथ स्तुति	11-12	संदानितक
7	अजितनाथ स्तुति	13	मुक्तक
8	शांतिनाथ स्तुति	14	मुक्तक
9	अजितनाथ स्तुति	15-16	संदानितक
10	शांतिनाथ स्तुति	17-18	संदानितक
11	अजितनाथ स्तुति	19-20-21	विशेषक
12	शांतिनाथ स्तुति	22-23-24-25	कलापक
13	अजितनाथ स्तुति	26-27-28-29	कलापक
14	शांतिनाथ स्तुति	30-31	संदानिता
15	अजितनाथ शांतिनाथ संयुक्त स्तुति	32-33-34	विशेषक
16	उपसंहार-अंतिम मंगल	35-36-37	मुक्तक
	स्तव महिमा	38-39-40	अन्यकर्तृक

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

इस स्तव में कुल 28 छंद हैं :–

क्रम	छंद नाम	काव्य क्रमांक
1	गाहा (गाथा-आर्या)	1 ,2 ,36 ,37 ,38 ,39 ,40
2	सिलोगो (श्लोक)	3
3	मागहिआ (मार्गाधक)	4 , 6
4	आलिंगणयं (आलिंगनकम्)	5
5	संगययं (संगतक)	7
6	सोवाणयं (सोपानकम्)	8
7	वेड्ढओ (वेष्टकः)	9 , 22
8	रासालुद्धओ (रासालुब्धकः)	10 , 11
9	रासाणंदिअयं (रासानंदित्यकं)	12
10	चित्तलेहा (चित्रलेखा)	13
11	नारायओ (नाराचकः)	14 , 28 , 31
12	कुसुमलया (कुसुमलता)	15
13	भुअगपरिरिंगियं (भुजंगपरिरिंगितम्)	16
14	खिज्जिययं (खिद्यतकं)	17
15	ललिययं (ललितकं)	18
16	किसलयामाला (किसलयमाला)	19
17	सुमुहं (सुमुखं)	20
18	विज्जुविलसियं (विद्युत् विलसितं)	21
19	रयणमाला (रत्नमाला)	23
20	खित्तयं (क्षिप्तकं)	24 , 25
21	दीवयं (दीपकं)	26
22	चित्तक्खरा (चित्राक्षरा)	27
23	नंदिययं (नंदितकं)	29
24	मांगलिका (मांगलिका)	30
25	भासुरयं (भासुरकं)	30
26	ललिययं (ललितक)	32
27	वाणवासिया (वान वासिका)	34
28	अपरांतिका (अपरांतिका)	35

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

रचनाकार

विक्रम की चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में विद्यमान श्री धर्मघोषसूरिजी म. ने **'शत्रुंजय कल्प'** में लिखा है कि

'नेमि वयणेण जत्ता गएण जहिं नंदिसेण वइणा ।
विहिओ अजिअ संति थओ, जयउ तयं पुंडरीयं तित्थं ।।

'श्री नेमिनाथ प्रभु के वचन से यात्रा के लिए गए हुए श्री नंदिषेण गणधर ने जहां अजित-शांति स्तवन की रचना की, वह पुंडरीक तीर्थ जय पाए ।'

इसका तात्पर्य है कि श्री नेमिनाथ प्रभु के कथन से उनके नंदिषेण नाम के गणधर श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा के लिए गए थे । उन्होंने वहां वर्षाकाल रहकर इस स्तव की रचना की थी ।

14 वीं सदी के उत्तरार्थ में विद्यमान श्री जिनप्रभसूरिजी म. ने **'श्री शत्रुंजय तीर्थ कल्प'** में कहा है कि–

'श्री नेमिवचनात् यात्रागतः सर्वरुजापहं ।
नंदिषेण गणेशोऽत्राजित-शान्ति स्तवं व्यधात् ।।'

श्री नेमिनाथ के वचन से यात्रा के लिए गए हुए श्री नंदिषेण गणधर ने सभी प्रकार के रोगों को दूर करनेवाला अजित-शांति स्तव यहां (शत्रुंजय में) रहकर बनाया था ।

इस स्तव की उपयोगिता बताते हुए श्री संघदास गणि क्षमाश्रमण ने बृहत् कल्प सूत्र के लघु भाष्य में कहा हैं कि-

'अविधि परिट्ठवणाए, काउसग्गो गुरु समीवम्मि ।
मंगल संति निमित्ते, थओ तओ अजित-संतीणं ।।'

श्रमण देह की परठवने में कोई अविधि हो गई हो तो गुरु समीप में कायोत्सर्ग करना चाहिये और मंगल तथा शांति के निमित्त **'अजितशांति स्तव'** बोलना चाहिये ।

इस स्तव की 37 गाथाएं नंदिषेण मुनिने रची है, जबकि शेष गाथाएं अन्यकर्तृक है ।

बृहच्छान्तिः

55

卐मूल-सूत्र卐

(मंदाक्रान्ता)

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादिप्रभावा–
दारोग्यश्री धृति-मति-करी क्लेश-विध्वंसहेतुः ॥1॥

॥ शब्दार्थ ॥

भो=हे
भव्याः=भव्य प्राणी
शृणुत=सुनो
वचनं=वचन को
प्रस्तुतं=प्रासंगिक
सर्वमेतद्=यह सब
ये=जो
यात्रायां=यात्रा में
त्रिभुवनगुरोः=जिनेश्वर की
आर्हता=श्रावक
भक्तिभाजः=भक्ति करनेवाले
तेषां=उनकी
शान्तिर्भवतु=शांति हो
भवतां=आपको
अर्हदादिप्रभावाद्=अरिहंतादि के प्रभाव से
आरोग्य-श्री-धृति मतिकरी=आरोग्य, लक्ष्मी, धृति व बुद्धि को करनेवाली
क्लेश विध्वंस हेतु=क्लेश के विनाश के लिए

सामान्य अर्थ

हे भव्यो ! आप मेरे इस प्रस्तुत वचन को सुनो ! जो श्रावक जिनेश्वर की यात्रा (रथयात्री) में भक्तिवाले हैं ऐसे आपको अरिहंत आदि के प्रभाव से आरोग्य, लक्ष्मी, चित्त प्रसन्नता, बुद्धि देनेवाली और समस्त क्लेशों के उपशमन में कारणभूत, ऐसी शांति हो ।

विशेष अर्थ

मोक्ष में जाने की योग्यता जिनमें होती हैं, उन आत्माओं को भव्यात्मा कहा जाता है । भव्यत्व यह आत्मा का अनादिकालीन पारिणामिक भाव है ।

प्रतिक्रमण की वर्तमान सामाचारी में तीन प्रकार की शांति आती है ।

1) लघु शांति :- दैवसिक प्रतिक्रमण में हमेशा बोली जाती है । इसके रचयिता **मानदेवसूरिजी म.** है ।

2) अजित शांति :- पक्खी, चौमासी व संवत्सरी प्रतिक्रमण में स्तवन के स्थान पर यह शांति बोली जाती है । इसके रचयिता **श्री नंदिषेण मुनि** है ।

3) बृहच्छांति :- इसे बडी शांति भी कहते है, **वादिवेताल श्री शांतिसूरिजी म.** ने इस शांति की रचना की है । यह शांति मंगल के लिए पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरी प्रतिक्रमण के अंत में बोली जाती है ।

अजित शांति की रचना प्राकृत भाषा में हैं, जब कि लघुशांति व बृहच्छांति की रचना संस्कृत भाषा में है ।

इस शांति के प्रारंभ में सर्व प्रथम आशीर्वादात्मक मंगलाचरण किया गया हैं ।

त्रिभुवन गुरु की यात्रा में उपस्थित हुए भाग्यशाली आर्हतों ! तुम सब इस प्रस्तुत वचन को सुनो ।' उसके बाद कहते हैं- अरिहंत देव आदि के प्रभाव से आप सभी को आरोग्य लक्ष्मी, धैर्य और बुद्धि प्रदान करने वाली तथा सभी क्लेशों का नाश करनेवाली शांति है ।

भो भो भव्यलोकाः ! इह हि भरतैरावत-विदेह-सम्भवानां समस्त-तीर्थकृतां जन्मन्यासन-प्रकम्पानन्तरमवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपतिः सुघोषा-घण्टाचालना-नन्तरं, सकल-सुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य सविनयमर्हद्-भट्टारकं गृहीत्वा, गत्वा कनकाद्रि-शृङ्गे विहित-जन्माभिषेकः शान्तिमुद्घोषयति यथा ततोऽहं कृतानुकारमिति कृत्वा 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इति भव्यजनैः सह समेत्य, स्नात्रपीठे स्नात्रं विधाय शान्तिमुद्घोषयति, तत्पूजायात्रा-स्नात्रादि महोत्सवानन्तरमिति कृत्वा कर्णं दत्त्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ।।2।।

।। शब्दार्थ ।।

भो भो भव्यलोकाः=हे भव्य प्राणियो !
इह हि=इसी जगत् में
भरतैरावतविदेह=भरतक्षेत्र, ऐरवत क्षेत्र, महाविदेह क्षेत्र
सम्भवानां=उत्पन्न हुए
समस्त तीर्थकृतां=सभी तीर्थंकरों के
जन्मनि=जन्म समय
आसन-प्रकम्पानन्तरं=आसन कंपन

के बाद
अवधिना विज्ञाय=अवधिज्ञान से जान कर
सौधर्माधिपति:=सौधर्म इन्द्र
सुघोषा-घण्टा=सुघोष घंट
चालनानन्तरं=बजाने के बाद
सकल सुरासुरेन्द्रै:=समस्त सुर असुरेन्द्रों के साथ
सह समागत्य=साथ में आकर
सविनयं=विनयसहित
अर्हद् भट्टारकं=पूज्य अरिहंत के
गृहीत्वा=ग्रहण करके
गत्वा=जाकर
कनकाद्रिशृङ्गे=मेरु शिखर पर
विहित जन्माभिषेक:=जिसने जन्माभिषेक किया है
शान्तिमुद्घोषयति=शांति की घोषणा करता है ।
यथा=जिस प्रकार
ततोऽहं=उसके बाद में
कृतानुकारं=किए हुए का अनुकरण
कृत्वा=करके
महाजनो येन गत:=जिस मार्ग से श्रेष्ठ पुरुष गए
स पन्था:=वह मार्ग है
भव्यजनै: सह=भव्यजनों के साथ
समेत्य=आकर
स्नात्र-पीठे=स्नात्र पीठ पर
स्नात्रं विधाय=स्नात्र क्रिया करके
शान्तिमुद्घोषयामि=शांति की घोषणा करता हूँ ।
तत:=उस कारण से
पूजा-यात्रा-स्नात्रादि=पूजा, यात्रा स्नात्र आदि
महोत्सवानन्तरं=महोत्सव के बाद
इति कृत्वा=ऐसा करके
कर्णं दत्वा=कान देकर
निशम्यतां=सुनो

सामान्य अर्थ

हे भव्यजनो ! (इस ढाई द्वीप में) यहाँ भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न समस्त तीर्थंकरों के जन्म समय में, अपने आसन-कंपन के बाद सौधर्म इन्द्र अवधिज्ञान के द्वारा (प्रभु के जन्म को जानकर) सुघोषा घंट बजवाकर विनयपूर्वक श्री अरिहंत प्रभु को ग्रहण कर समस्त सुरेन्द्रों और असुरेन्द्रों के साथ मेरु पर्वत पर जाकर प्रभु का जन्माभिषेक करते है और उसके बाद शांति की घोषणा करते है। **'श्रेष्ठ लोग जिस मार्ग से जाते हैं, वह मार्ग कहलाता है'** इस नियमानुसार मैं भी किए हुए का अनुकरण करता हुआ भव्यजनों के साथ स्नात्रपीठ पर स्नात्र करके शांति की उद्घोषणा करता हूँ। अत: आप सभी पूजा, यात्रा, स्नात्रादि महोत्सव के बाद ध्यानपूर्वक सुनो !

विशेष अर्थ

जहाँ असि-मसि और कृषि का व्यापार होता है, जहाँ धर्म-कर्म की व्यवस्था है, उसे कर्मभूमि कहते हैं। मध्यलोक में असंख्य द्वीप-समुद्र आए हुए हैं, उनमें से ढाई द्वीप की पंद्रह कर्मभूमियों में ही तीर्थंकर पैदा होते हैं। पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह ये 15 कर्मभूमियाँ हैं। तीर्थंकर परमात्मा के जन्म समय मेरुपर्वत पर प्रभु का जन्माभिषेक होता है। प्रभु के जन्माभिषेक प्रसंग पर असंख्य देवता व 64 इन्द्र आते हैं।

64 इंद्रों की संख्या 12 वैमानिक देवलोक के 10 इन्द्र
भवनपति के 20 इन्द्र
व्यंतर के 32 इन्द्र
ज्योतिष के 2 इन्द्र

मेरु पर्वत पर सौधर्म आदि इन्द्र प्रभु का जिस प्रकार जन्माभिषेक महोत्सव करते हैं, उसके अनुरूप ही प्रभु के भक्तजन स्नात्रपूजा पढ़ाकर प्रभु का जन्माभिषेक महोत्सव मनाते हैं। उसके बाद शांति की उद्घोषणा की जाती है।

तीर्थंकर परमात्मा का जब जन्म होता है, तब इन्द्र महाराजा का सिंहासन कंपित होता है। कंपित हुए अपने सिंहासन को देख इन्द्र महाराजा अपने अवधिज्ञान का उपयोग लगाते है, उस उपयोग से जब उन्हें पता चलता हैं। उसके बाद इन्द्र महाराजा की आज्ञा से हरिणगमेषी देव तीन बार सुघोषा घंट बजाता हैं, सुघोषा घंट की आवाज के साथ अन्य विमानों में रहे घंट भी बजने लगते है।

उसके बाद सुर और असुरों के साथ सौधर्म इन्द्र प्रभु के जन्म स्थान में आकर, अपने दोनों हाथों से प्रभु को ग्रहणकर प्रभु को मेरुपर्वत पर ले जाते है। वहां पर प्रभु का जन्माभिषेक कर शांति की उद्घोषणा करते है।

'बडे व्यक्ति जिस मार्ग से जाते है, वह दूसरों के लिए मार्ग रुप हो जाता है।' अतः मै भी भव्यजनों के साथ में आकर स्नात्रपीठ पर स्नात्र करके शांति की उद्घोषणा करता हूँ।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां, भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस् त्रिलोकनाथास्। त्रिलोकमहितास् त्रिलोकपूज्यास्

त्रिलोकेश्वरास् त्रिलोकोद्योतकराः ।।3।।

ॐ ऋषभ-अजित-सम्भव-अभिनन्दन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-सुविधि-शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्य-विमल-अनन्त-धर्म-शान्ति-कुन्थु-अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वर्धमानान्ताः जिनाः शान्ताः शान्तिकराः भवन्तु स्वाहा ।।4।।

।। शब्दार्थ ।।

ॐ=प्रणव बीज
पुण्याहं=पवित्र दिन
प्रीयन्तां=प्रसन्न हो
भगवन्त=भगवान्
अर्हन्त=अरिहंत
सर्वज्ञाः=सर्वज्ञ
सर्वदर्शिनः=सर्वदर्शी
त्रिलोकनाथाः=तीन लोक के नाथ
त्रिलोकमहितास्=तीन लोक से पूजित प्रकाशित करनेवाले
त्रिलोकपूज्याः=तीन लोक में पूज्य
त्रिलोकेश्वराः=तीन लोक के ईश्वर
त्रिलोकोद्योतकराः=तीन लोक को उद्योत करनेवाले
वर्धमानान्ताः=वर्धमान तक
जिनाः=जिन
शान्ताः=शांत
शान्तिकराः=शांति करनेवाले
भवन्तु=हों

सामान्य अर्थ

आज का दिन पवित्र है-मांगलिक है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकनाथ, तीनलोक से अर्चित, तीन लोक से पूजित, तीन लोक के ईश्वर, तीन लोक का उद्योत करनेवाले अरिहंत परमात्मा प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। श्री ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदनस्वामी, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतस्वामी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान स्वामी ये 24 तीर्थंकर शांत हैं और वे हमें शांति करनेवाले हों ।

ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपु-विजय-दुर्भिक्ष-कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ।।5।।

ॐ ह्रीं श्रीं धृति-मति-कीर्ति-कान्ति-बुद्धि-लक्ष्मी-मेधा-विद्या साधन

प्रवेश-निवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्राः ।।6।।

ॐ रोहिणी प्रज्ञप्ति-वज्रशृङ्खला वज्राङ्कुशी-अप्रतिचक्रा-पुरुषदत्ता-काली-महाकाली-गौरी-गान्धारी-सर्वास्त्रामहाज्वाला-मानवी-वैरोट्याअच्छुप्ता-मानसी-महामानसी षोडश-विद्यादेव्यो रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ।।7।।

।। शब्दार्थ ।।

ॐ=प्रणव बीज
मुनिप्रवराः=श्रेष्ठ मुनि
रिपु-विजय=शत्रु का विजय
दुर्भिक्ष=दुष्काल
कान्तारेषु=जंगल में
दुर्गमार्गेषु=विकट मार्ग में
रक्षन्तु=रक्षण करो
वः=आपका
विद्यासाधनं=सरस्वती की साधना में
प्रवेश-निवेशनेषु=योग के प्रवेश व मंत्र जाप के निवेशन में
सुगृहीतनामानो=अच्छी तरह से जिनका नाम लिया गया है
जयन्तु=जय पाएँ
ते जिनेन्द्राः=वे जिनेश्वर
षोडश=सोलह
रक्षन्तु=रक्षण करें
विद्यादेव्यः=विद्यादेवियाँ
वो=आपका
नित्यं=हमेशा

सामान्य अर्थ

शत्रु के विजय प्रसंग में, दुष्काल, भयंकर जंगल, विकट-मार्ग आदि प्रसंगों में वे श्रेष्ठ महामुनि आपका रक्षण करें ।

ह्री, श्री, धृति, मति, कीर्ति, कांति, बुद्धि, लक्ष्मी और मेधा ये नौ स्वरूप वाली, सरस्वती की साधना में, योग के प्रवेश व मंत्र-जप के निवेशन में, आदरपूर्वक जिनके नाम का उच्चारण किया जाता है, वे जिनेश्वर जय प्राप्त करें ।

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशी, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गांधारी, सर्वास्त्रा महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी ये 16 विद्यादेवियाँ तुम्हारा नित्य रक्षण करें ।

विशेष अर्थ

श्री, ह्री, धृति, मति आदि सरस्वती की 9 शक्तियाँ हैं ।

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि व लक्ष्मी ये छह वर्षधर देवियाँ गिनी जाती हैं और पौष्टिक कर्म में उनकी स्थापना होती है।

रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि 16 विद्या देवियाँ कहलाती है।

सोलह विद्या देवियाँ

ये विद्यादेवियां मंत्र रुप विद्या की अधिष्ठायिका है। सिद्धचक्र में अ आदि सोलह स्वरों की स्थापना होती है। वे स्वर इन विद्यादेवियों के वाचक है।

1) रोहिणी :- पुण्य बीज को पैदा करती है। इस देवी के चार हाथ है। दाए हाथ में जपमाला और बाण हैं तथा बाएं हाथ में शंख और धनुष है। उसका वर्ण श्वेत है और वाहन गाय है।

2) प्रज्ञप्ति :- जिसे प्रकृष्ट ज्ञान है। इस देवी के चार हाथ है दाएं हाथ में शक्ति और वरद की मुद्रा है। बाएं हाथ में बीजोरा और शक्ति है। उसका वर्ण श्वेत और वाहन मयूर है।

3) वज्रशृंखला :- दुष्ट का दमन करने के लिए जिसके हाथ में वज्र की शृंखला है। इसके चार हाथ है। दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और शृंखला है तथा बाएं हाथ में कमल और शृंखला है। इसका वर्ण शंख की तरह श्वेत और वाहन पद्म है।

4) वज्रांकुशी :- इसके हाथ में वज्र और अंकुश होने से वज्रांकुशी कहलाती है। इसके दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और वज्र है तथा बाएं हाथ में बीजोरा और अंकुश है। इसके चार हाथ है। इसका वर्ण पीला और वाहन हाथी है।

5) अप्रतिचक्रा :- जिसके चक्र की कोई तुलना नहीं कर सकता, अतः अप्रतिचक्रा कहलाती है। इसके चारों हाथों में चक्र है। इसका वर्ण बीजली जैसा और वाहन गरुड है।

6) पुरुषदत्ता : पुरुष को वरदान देनेवाली होने से पुरुषदत्ता कहलाती है। इसके चार हाथ है। दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और तलवार हैं तथा बाएं हाथ में बीजोरा और ढाल है। उसका वर्ण पीला और वाहन भैंस है।

7) काली : दुश्मनों के लिए जो काल समान है। इस देवी के चार हाथ है। दाहिने हाथ में जपमाला और गदा है तथा बाएं हाथ में वज्र और

अभय मुद्रा है । इसका वर्ण श्याम और वाहन पद्म है ।

8) महाकाली :- दुश्मनों के लिए जो महाकाल जैसी है । इसके चार हाथ है । दाहिने हाथ में अक्ष सूत्र और वज्र है तथा बाएं हाथ में अभय मुद्रा और घंटा है । उसका वर्ण अत्यंत श्याम और वाहन पुरुष है ।

9) गौरी : जो अत्यंत ही गौर वर्णवाली है, इसके चार हाथ है । दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और मुशल है तथा बाएं हाथ में जपमाला और कमल है । उसका वर्ण गौर तथा वाहन गौधा है ।

10) गांधारी : जिससे गंध पैदा होती है । इसके चार हाथ है । दाए हाथ में वरद मुद्रा और मुशल माला है तथा बाए हाथ में अभय मुद्रा और वज्र है । उसका वर्ण नील है और वाहन कमल है ।

11) सर्वास्त्र महाज्वाला :- जिसके सभी अस्त्रों में से ज्वालाएं निकलती है । इसके दो हाथ हैं और उसमें अनेक शस्त्र है । उसका वर्ण श्वेत और वाहन वराह है ।

12) मानवी :- मनुष्य की माता तुल्य है । इसके चार हाथ है । दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और पाश है तथा बाए हाथ में जपमाला और वृक्ष की डाल है । इसका वर्ण श्याम और वाहन कमल है ।

13) वैरोट्या :- परस्पर के वैर की शांति के लिए जिसका आगमन होता है । इसके चार हाथ है । दाहिने हाथ में खड्ग और सर्प है तथा बाएं हाथ में ढाल और सांप हैं । वर्ण श्याम और वाहन अजगर है ।

14) अच्छुत्ता : जिसे पाप का स्पर्श नहीं, वह अच्छुप्ता ! इस देवी के चार हाथ है । दाए हाथ में खड्ग और बाण है तथा बाएं हाथ में ढाल और धनुष्य है । उसका वर्ण बिजली जैसा है और वाहन अश्व है ।

15) मानसी :- ध्यान करनेवाले के मन का सान्निध्य करती है । इस देवी के चार हाथ है । दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और वज्र है तथा बाएं हाथ में जपमाला और वज्र है । उसका वर्ण सफेद और वाहन हंस है ।

16) महामानसी : ध्यानस्थ व्यक्ति के मन का जो विशेष सान्निध्य करती है । इसके चार हाथ है । दाएं हाथ में वरद मुद्रा और खड्ग है तथा बाए हाथ में कुंडिका और ढाल है । उसका वर्ण सफेद है और वाहन हंस है ।

ॐ आचार्योपाध्याय प्रभृति चातुर्वर्णस्य श्री श्रमण सङ्घस्य शान्ति-र्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु ॥8॥

ॐ ग्रहाश्चन्द्र-सूर्याङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनैश्चर -राहु-केतु सहिताः सलोकपालाः सोम-यम-वरुण-कुबेर-वासवादित्य-स्कन्द विनायकोपेता ये चान्येपि ग्राम-नगर-क्षेत्र-देवतादयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्तां, अक्षीण-कोश-कोष्टागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ॥9॥

॥ शब्दार्थ ॥

ॐ=प्रणव बीज

आचार्योपाध्याय=आचार्य-उपाध्याय

भवन्तु=हों

चातुर्वर्णस्य=चार वर्णवाले

श्री श्रमण सङ्घस्य=श्री श्रमण संघ की

शान्तिर्भवतु=शांति हो

तुष्टिर्भवतु=तुष्टि हो

पुष्टिर्भवतु=पुष्टि हो

ग्रहाः=ग्रह

चन्द्र-सूर्याङ्गारकः=चंद्र, सूर्य, मंगल

सहिताः=सहित

सलोकपालाः=लोकपाल सहित

वासव=इन्द्र

आदित्य=सूर्य

स्कन्द=कार्तिकेय

विनायकोपेता=गणेश सहित

ते=वे

अन्येपि=दूसरे भी

ये=जो

क्षेत्रदेवतादयः=क्षेत्रदेवता आदि

सर्वे=सभी

प्रीयन्तां=खुश हों

अक्षीणकोश=अक्षय भंडार

कोष्टागारा=कोठारवाले

नरपतयः=राजा

भवन्तु=हो

सामान्य अर्थ

आचार्य, उपाध्याय आदि चार प्रकार के श्रमण संघ की शांति हो, तुष्टि हो, पुष्टि हो। पुण्यशाली आत्मा शांतिनाथ प्रभु का नाम स्मरण करती है, उनकी पूजा-भक्ति करती है, उसके जीवन में, उसके घर में सदैव शांति का वास होता है।

उन्मृष्ट-रिष्ट-दुष्ट-ग्रह-गति-दुःस्वप्न-दुर्निमित्तादि।
सम्पादितहित-सम्पन्नाम-ग्रहणं जयति शान्तेः ॥10॥

श्रीसङ्घजगज्जन पद-राजाधिप-राज-सन्निवेशानां,
गोष्ठीकपूर-मुख्यानां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् ॥11॥

।। शब्दार्थ ।।

उन्मृष्ट=नाश किया है
रिष्ट=अशुभ
दुष्टग्रहगति=दुष्ट ग्रह की गति
दुःस्वप्न=खराब स्वप्न
दुर्निमित्तादि=अशुभ निमित्त
सम्पादित=प्राप्त कराई है
हित=हित
सम्पत्=संपत्ति
नामग्रहणं=नाम का उच्चारण
जयति=जय पाता है
शान्तेः=शांतिनाथ का
जगज्जनपद=जगत् के जनपद
राजाधिप=महाराजा
राजसन्निवेशानां=राजाओं के निवास स्थान
व्याहरणैः=नामोच्चार द्वारा
व्याहरेत्=कहना चाहिए
शान्तिं=शांति

सामान्य अर्थ

उपद्रव, ग्रहों की दुष्टगति, दुःस्वप्न, अशुभ निमित्त का नाश करनेवाले तथा आत्महित व संपत्ति प्राप्त कराने वाले श्री शांतिनाथ प्रभु के नाम का उच्चारण जगत् में जय पाता है । श्री संघ, जगत् के जनपद, महाराजा, राजाओं के निवास स्थान, विद्वद् मंडली के सभ्य तथा अग्रणी नागरिकों के नाम लेकर शांति बोलनी चाहिए ।

विशेष अर्थ

इस गाथा में श्री शांतिनाथ प्रभु के नाम की महिमा का गान किया गया है । शांतिनाथ प्रभु की पूजा-भक्ति तो लाभ करती ही हैं, परंतु प्रभु का नाम स्मरण भी महामंगल को पैदा करता है और सभी प्रकार के उपद्रवों को नष्ट कर देता है ।

शांतिनाथ प्रभु के नाम स्मरण से ग्रहों की दुष्टगति भी शुभ फलदायी बन जाती है । रात्रि में आया खराब स्वप्न भी लाभदायी हो जाता है । अपशकुन भी नुकशान के बदले लाभ के कारण बन जाते है । ऐसे शांतिनाथ प्रभु के नाम का उच्चारण भी जगत् में जय पाता है ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

श्री श्रमण-सङ्घस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री जनपदानां शान्तिर्भवतु ।
श्री राजाधिपानां शान्तिर्भवतु ।
श्री राजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु ।
श्री गोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु ।
श्री पौरमुख्यानां शान्तिर्भवतु ।
श्री पौरजनस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु ।
ॐ स्वाहा ॐ स्वाहा ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा ।
एषा शान्तिः प्रतिष्ठा यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु ।
शान्तिकलशं गृहीत्वा कुङ्कुम-चन्दन-कर्पूरागरु-धूप-वास-कुसुमांजलिसमेतः स्नात्र-चतुष्किकायां-श्री संघ-समेतः शुचि-शुचिवपुः पुष्प-वस्त्र-चन्दनाभरणालङ्कृतः पुष्पमालां कण्ठे कृत्वा शान्तिमुद्घोषयित्वा शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ।।12।।

।। शब्दार्थ ।।

श्रीश्रमणसंघस्य=श्रीश्रमणसंघ की
शान्तिर्भवतु=शांति हो
श्रीजनपदानां=जनपद की
राजाधिपानां=राजाओं की
श्रीराजसन्निवेशानां=राजाओं के निवास स्थान में
श्रीगोष्ठिकानां=विद्वद्‌मंडली को
श्री पौरमुख्यानां=नगर के अग्रणी को
श्री पौरजनस्य=नगरवासियों को
श्री ब्रह्मलोकस्य=श्री ब्रह्मलोक की
शान्तिः=शांतिपाठ
एषा=यह
प्रतिष्ठा-यात्रा-स्नात्राद्यवसानेषु=प्रतिष्ठा यात्रा, स्नात्र के अंत में
शान्तिकलशं=शांतिकलश
गृहीत्वा=ग्रहण करके
कुंकुम=केसर
कर्पूरागरु=कपूर व अगरु धूप
कुसुमांजलिसमेतः=कुसुमांजलि वे साथ
स्नात्र-चतुष्किकायां=स्नात्र मंडप में
श्री संघ समेतः=श्री संघ के साथ
शुचिशुचिवपुः=पवित्र शरीरवाले
आभरणालंकृतः=आभरणों से अलंकृत
पुष्पमालां=पुष्पमाला को
कण्ठे कृत्वा=कंठ में धारण कर
शान्तिपानीयं=शांतिजल को
मस्तके=मस्तक पर
दातव्यं=देना चाहिए

सामान्य अर्थ

श्री श्रमण संघ की शांति हो, श्री जनपद (देशों की) शांति हो, श्री महाराजाओं की शांति हो, राजाओं के निवास-स्थान में शांति हो । श्री विद्वद्मंडली में शांति हो । अग्रणी नागरिकों को शांति हो । नगरजनों को शांति हो । ब्रह्मलोक में शांति हो ।

यह शांतिपाठ प्रभु की प्रतिष्ठा, रथ-यात्रा तथा स्नात्र आदि महोत्सव के अंत में बोलना चाहिए ।

(उसकी विधि बतलाते हैं) केसर, चंदन, अगरु-धूप, वास तथा अजंलि में विविध पुष्प लेकर, शांतिकलश ग्रहण कर श्रीसंघ के साथ स्नात्र-मंडप में खड़ा रहे । उसका देह पवित्र होना चाहिए तथा श्वेतवस्त्र, चंदन आदि आभरणों से अलंकृत होना चाहिए । पुष्पहार को कंठ में धारण कर शांति की उद्घोषणा करे और उद्घोषणा करने के बाद शांतिकलश का पानी प्रदान करे । वह पानी सभी अपने मस्तक पर लगाएँ ।

विशेष अर्थ

चंद्र, सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि ग्रह, सोम, यम, कुबेर और वरुण ये चार लोकपाल, इन्द्र, सूर्य, कार्तिकेय, गणपति आदि देव तथा ग्रामदेवता, नगर-देवता, क्षेत्र-देवता आदि दूसरे जो भी देव हों, वे सब प्रसन्न हों, प्रसन्न हों और राजा भी अक्षय भंडार व अनाजवाले हों ।

ॐ पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन-सम्बन्धि-बन्धुवर्ग सहिता नित्यं चामोद-प्रमोद कारिणः ।

अस्मिंश्च भूमण्डल आयतन-निवासि-साधु-साध्वी- श्रावक-श्राविकाणां रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-दुर्भिक्ष-दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ।।13।।

ॐ तुष्टि पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-माङ्गल्योत्सवाः सदा प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु दुरितानि शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ।।15।।

।। शब्दार्थ ।।

ॐ=प्रणव बीज
पुत्र-मित्र=पुत्र और मित्र
भ्रातृ=भाई
कलत्र=स्त्री
सुहृत्=मित्र
बन्धुवर्गसहिताः=बंधुवर्ग सहित
नित्यं=हमेशा
आमोद-प्रमोद कारिणः=आमोद प्रमोद करनेवाले
भूमंडलआयतनः=पृथ्वी मंडल में
रोगोपसर्ग=रोग-उपसर्ग
दुर्भिक्ष=अकाल
दौर्मनस्य=विषाद
उपशमनाय=शांति के लिए
माङ्गल्योत्सवाः=मांगल्य और उत्सव
सदा=हमेशा
प्रादुर्भूतानि=उत्पन्न हुए
पापानि=पाप कर्म
शाम्यन्तु=शांत हों
दुरितानि=भय
शत्रवः=शत्रु
पराङ्मुखाः=विमुख
भवन्तु=हों
अस्मिन्=इस

सामान्य अर्थ

पुत्र, मित्र, भाई, स्त्री, हितैषी, ज्ञातिजन, स्नेहीजन तथा स्वजन सहित आनंद करनेवाले हों ।

इस पृथ्वी मंडल में अपने स्थान में रहे हुए साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल व विषाद के उपशमन के लिए हो ।

आपको सदैव तुष्टि हो, पुष्टि हो, ऋद्धि हो, वृद्धि हो, मांगल्य की प्राप्ति हो, आपका निरंतर अभ्युदय हो, आप में उत्पन्न हुए सभी पाप नष्ट हों, भय शांत हों तथा शत्रु भी विमुख हों ।

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश-मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ।।1।।
शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्तिं दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ।।2।।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

।। शब्दार्थ ।।

श्रीमते=श्रीमान्	**शान्तिकर:=**शांति करनेवाले
शान्तिनाथाय=शांतिनाथ को	**शान्तिं=**शांति को
नम:=नमस्कार हो	**दिशतु=**प्रदान करें
शान्तिविधायिने=शांति करनेवाले	**मे=**मुझे
त्रैलोक्यस्य=तीन लोक के	**सदा=**हमेशा
अमराधीश=देवेन्द्र	**तेषां=**उनको
मुकुटाभ्यर्चित=मुकुट से पूजित	**येषां=**जिनके
अङ्घ्रये=चरण	**शान्ति:=**शांति
शान्ति:=शांतिनाथ	**गृहे=**घर में

सामान्य अर्थ

तीन लोक के प्राणियों को शांति करनेवाले और देवेन्द्रों के मुकुट द्वारा जिनके चरण पूजे गए हैं, ऐसे शान्तिनाथ प्रभु को नमस्कार हो ।

शांतिनाथ प्रभु जगत् में शांति करने वाले हैं, ऐसे जगद्गुरु मुझे शांति प्रदान करें । जिनके घर घर में शांतिनाथ पूजे जाते हैं, उनके घर घर में शांति होती है ।

विशेष अर्थ

शान्तिनाथ प्रभु अपने नाम के अनुरूप ही शांति करनेवाले हैं । जो पुण्यशाली आत्मा शांतिनाथ प्रभु का नाम स्मरण करती है, उनकी पूजा-भक्ति करती है, उसके जीवन में, उसके घर में सदैव शांति का वास होता है ।

नृत्यन्ति नृत्यं मणिपुष्पवर्षं,
सृजन्ति गायन्ति च मङ्गलानि ।
स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मंत्रान्
कल्याणभाजो हि जिनाभिषेके ।।1।।

।। शब्दार्थ ।।

नृत्यन्ति नृत्यं=नृत्य करते हैं	**मङ्गलानि=**मंगल (अष्ट मंगल)
मणि-पुष्पवर्षं=रत्न व पुष्पों की वृष्टि	**स्तोत्राणि=**स्तोत्र
सृजन्ति=करते हैं	**गोत्राणि=**गोत्र (तीर्थंकर के)
गायन्ति=गाते हैं	**पठन्ति=**बोलते हैं

मंत्रान्=मंत्रों को
कल्याणभाजो=पुण्यशाली
जिनाभिषेके=जिनेश्वर के अभिषेक में

सामान्य अर्थ

जिनेश्वर परमात्मा के अभिषेक प्रसंग पर पुण्यशाली नृत्य करते हैं, रत्नों व पुष्पों की वृष्टि करते हैं, अष्ट मंगल का आलेखन करते हैं, मांगलिक स्तोत्र पढ़ते हैं और तीर्थंकर के गोत्र-मंत्र बोलते हैं ।

विशेष अर्थ

मंगल पीठिका, शांतिपाठ और उसकी विधि पूरी होने के बाद आनंद के निमित्त कुछ प्रास्ताविक पद्य बोले जाते है । उनमें से पहले पद्य में कहा हैं–

`जिनेश्वर प्रभु के जन्माभिषेक के पावन प्रसंग पर अनेक भाग्यशाली आत्माएं खुशी के कारण झुम उठती है और भावपूर्वक नृत्य करती हैं, कुछ आत्माएं रत्न और पुष्पों की वृष्टि करती है । कुछ आत्माएं 1) स्वस्तिक 2) श्रीवत्स 3) नंद्यावर्त 4) वर्धमान 5) भद्रासन 6) कलश 7) मत्स्य युगल और 8) दर्पण रुप अष्ट मंगल का आलेखन करती है । मंत्रमय कई चमत्कारिक स्तोत्र बोलती है और तीर्थंकरों के माता-पिता के नाम निर्देश पूर्वक उनकी स्तुति करती हैं तथा `पुण्याहं पुण्याहं' आदि मंत्र पढती है ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।2।।

।। शब्दार्थ ।।

शिवं=कल्याण
अस्तु=हो
सर्वजगतः=समस्त जगत् का
परहितनिरताः=परोपकार में मग्न
भवन्तु=हो
भूतगणाः=प्राणियों का समूह
दोषाः=दोष
प्रयान्तु=हों
नाशं=नाश
सर्वत्र=सभी जगह
सुखी भवतु=सुखी हो
लोकः=लोक

सामान्य अर्थ

समस्त विश्व का कल्याण हो, सभी प्राणी परोपकार में मग्न हों, सभी प्राणियों के दोष दूर हों और सभी प्राणी सुखी हों ।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

विशेष अर्थ

यह एक पवित्र भावना है। इस पवित्र भावना से विशिष्ट पुण्य का बंध और कर्मों की अपूर्व निर्जरा होती है।

अहं तित्थयरमाया, शिवादेवी तुम्ह नयर निवासिनी।
अम्ह शिवं तुम्ह शिवं, अशिवोवसमं सिवं भवतु स्वाहा ॥3॥

॥ शब्दार्थ ॥

अहं=मैं	**अम्ह=**हमारा
तित्थयर माया=तीर्थंकर की माता	**शिवं=**कल्याण
शिवादेवी=शिवादेवी	**तुम्ह=**तुम्हारा
तुम्ह=तुम्हारे	**असिवोवसमं=**अशिव का उपशमन हो
नयरनिवासिनी=नगर में रहनेवाली	**सिवं भवतु=**कल्याण हो

सामन्य अर्थ

नेमिनाथ प्रभु की माता मैं आपके नगर में रहती हूँ, हमारा कल्याण हो, तुम्हारा कल्याण हो, अशिव का उपशमन हो और सबका कल्याण हो।

विशेष अर्थ

समस्त बृहच्छांति स्तोत्र संस्कृत भाषा में हैं परंतु यह एक गाथा प्राकृत भाषा में है। शायद यह गाथा प्रक्षेप भी हो सकती है।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥
सर्व मङ्गल माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारणं,
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥

शब्दार्थ

(ये दोनों गाथाएँ लघु-शांति में आई हुई हैं, शब्दार्थ वहाँ से देख लें)

सामान्य अर्थ

जिनेश्वर भगवंत की पूजा करने से उपसर्गों का नाश होता है, विघ्न लताएँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और मन प्रसन्नता से भर जाता है।

सर्व मंगलों में मंगलभूत, समस्त कल्याण का कारण व सभी धर्मों में प्रधान ऐसा जैन शासन जयवन्त वर्तता है।

पाक्षिक अतिचार

56

(हिन्दी)

नाणंमि दंसणंमि अ, चरणंमि तवंमि तह य वीरियंमि ।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ।।1।।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार इन पँच-विध आचारों में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष[1] दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।1।।

तत्र ज्ञानाचार के आठ अतिचार,

काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वंजण अत्थ तदुभए, अट्ठविहो नाणमायारो ।।2।।

ज्ञान काल वक्त में पढ़ा-गुणा[2] नहीं, अकाल वक्त में पढ़ा, विनयरहित, बहुमानरहित, योग-उपधान रहित पढ़ा । ज्ञान जिनसे पढ़ा उनसे अतिरिक्त को गुरु कहा । देववंदन, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय करते, पढ़ते, गुणते गलत अक्षर कहा, काना-मात्रा न्युनाधिक कही । सूत्र गलत कहे, अर्थ गलत कहा, दोनों गलत कहे, पढ़कर भूले । साधुधर्म संबंधी काजा न लेने पर, डंडे का अणपड़िलेहण रहने पर, वसति[3] की शुद्धि किये बिना, योग में प्रवेश किये बिना, असज्झाय-अनध्याय में श्री दशवैकालिक प्रमुख सिद्धांत पढ़ा-गुणा । श्रावक धर्म संबंधी स्थविरावली, प्रतिक्रमण, उपदेशमाला आदि सिद्धांत पढ़े, गुणे । काल समय का काजा लिये बिना पढ़ा । ज्ञान के उपकरणः तख्ती, पोथी, स्थापनिका, कवली, [4]नवकारवाली, सापड़ा, सापड़ी, दस्तरी[5], बही, ओलिया[6] आदि को पैर लगा, थूंक लगा, थूंक से अक्षर मिटाया, तकिया बनाया, पास में होते हुए आहार-निहार किया ।

ज्ञान द्रव्य भक्षण करने पर उपेक्षा की, प्रज्ञापराध होने पर विनाश किया, विनाश होते हुए उपेक्षा की, शक्ति होने पर भी देखरेख न की । ज्ञानी के प्रति द्वेष, मात्सर्य किया, अवज्ञा-आशातना की । किसी के पढ़ने, गुणने में विघ्न डाला । अपनी जानकारी का अभिमान किया । मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

1. चौमासी प्रतिक्रमण हो तो पक्ष के बदले चौमासी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण हो तो संवत्सरी बोले । 2. पुनरावर्तन 3. उपाश्रय 4. पन्नेकी सुरक्षा का साधन 5. छुटे कागज रखने के लिए पुट्ठे का साधन 6. रेखा खींचने की पट्टी ।

अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान इन पाँच ज्ञान की अश्रद्धा की। किसी तोतले, गूँगे की हँसी की, वितर्क किया, शास्त्र विरुद्ध प्ररुपणा की।

ज्ञानाचार संबंधी अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं।।2।।

दर्शनाचार के आठ अतिचार,

निस्संकिअ निक्कंखिअ, निव्वितिगिच्छा अमूढ़दिट्ठी अ।
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-प्पभावणे अट्ठ।।3।।

देव-गुरु-धर्म के विषय में निःशंकता न की तथा एकांत निश्चय न किया। धर्म संबंधी फल के विषय में निःसंदेह बुद्धि न की। साधु-साध्वी के मलमलिन शरीर देखकर जुगुप्सा की। कुचारित्री को देखकर चारित्रवान पर अभाव हुआ। मिथ्यात्वियों की पूजा प्रभावना देखकर मूढ़ दृष्टिपना किया तथा संघ में गुणवान की अनुपबृंहणा[1] की, अस्थिरीकरण[2], अवात्सल्य, अप्रीति, अभक्ति की, अब-हुमान किया। तथा देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य का भक्षण किया हो, उपेक्षा की हो, बुद्धि भ्रष्ट होने पर विनाश किया हो, हानि होते हुए उपेक्षा की हो या शक्ति होते हुए सार-संभाल न की तथा साधर्मिक से कलह करके कर्मबंधन किया। अधोती[3], आठ पड़वाले मुखकोश बांधे बिना भगवान की पूजा की। वासकूंपी, धूपदानी, कलश से प्रतिमाजी को ठपका लगा हो। जिनबिंब हाथ से गिरा हो, श्वासोच्छ्वास लगा। मंदिर उपाश्रय में मल, श्लेश्मादिक लगाया। मंदिर में हास्य, खेल, क्रीड़ा, कुतूहल, आहार-निहार किया, पान-सुपारी, नैवेद्य खायें। स्थापनाचार्यजी हाथ से गिरे या उनका पड़िलेहण विस्मृत हुआ हो। जिनमंदिर संबंधी चौरासी आशातना और गुरु-गुरुणी संबंधी तैंतीस आशातना की हो। गुरु के वचन को तहत्ति करके स्वीकार न किया हो।

दर्शनाचार विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं।।3।।

चारित्राचार के आठ अतिचार,

पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो इ नायव्वो।।4।।

---

1. गुण की प्रशंसा न की। 2. सम्यक्त्व सेच्युत होनेवाले को सम्यक्त्व में स्थिर नहीं किया। 3. धोती बिना, सिले हुए वस्त्रों से पूजा की।

ईर्यासमिति-बिना देखे चले । **भाषासमिति**-सावद्य वचन बोले । **एषणासमिति**-तृण, डगल[1], अन्न-पानी अशुद्ध ग्रहण किया हो । **आदानभंडमत्तनिक्खेवणा-समिति**-आसन, शयन, उपकरण, मात्रु आदि बिना पूंजे जीवाकुल[2] भूमि पर रखा, लिया हो । **पारिष्ठापनिकासमिति**-मल-मूत्र, श्लेष्मादिक बिना पूंजे जीवाकुल भूमि पर परठा हो ।

मनोगुप्ति-मन में आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान ध्याये । **वचनगुप्ति**-सावद्य[3] वचन बोले । **कायगुप्ति**-शरीर को पड़िलेहण किये बिना हिलाया, बिना पूंजे बैठे ।

ये अष्ट प्रवचनमाता साधुधर्म में सदैव तथा श्रावक धर्म में सामायिक पौषध लेकर अच्छी तरह से पाली नहीं, खंडना विराधना की हो ।

चारित्राचार विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा, मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं।।4।।

विशेषतः श्रावक धर्म संबंधी श्री सम्यक्त्व मूल बारह व्रत, सम्यक्त्व के पाँच अतिचार

।। संकाकंखविगिच्छा ।।

शंका श्री अरिहंत प्रभु के बल, अतिशय, ज्ञान, लक्ष्मी, गांभीर्यादिक गुण, शाश्वती प्रतिमा, चारित्रवान के चारित्र एवं श्री जिनवचन में संदेह किया ।

आकांक्षा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्षेत्रपाल, गूगा, [4]दिकपाल, पादरदे-वता[5], गोत्रदेवता, ग्रहपूजा, गणेश, हनुमान, सुग्रीव, वाली, नाह इत्यादि देश, नगर, ग्राम, गोत्र, नगरी के भिन्न-भिन्न देव-मंदिरों का प्रभाव देखकर, रोग, आतंक, कष्ट के आने पर इस लोक-परलोक के लिए उनको पूजे-माने । सिद्ध-विनायक, जीराउला[6] को माना, इच्छा की । बौद्ध, सांख्यादिक, संन्यासी, भरड़ा[7] भगत, लिंगिये[8] जोगिया, योगी, फकीर, अन्यदर्शनियों के कष्ट, मंत्र, चमत्कार को देखकर परमार्थ जाने बिना भूले, भ्रमित किए । कुशास्त्र सिखे, सुने । श्राद्ध, संवत्सरी[9] होली, राखड़ी पूनम, माहीपूनम[10] अजाएकम[11] प्रेतदूज[12] गौरीतीज[13] गणेशचोथ[14] नागपंचमी[15] झीलणाछट्ठी[16] शीलसप्तमी[17] ध्रुवअष्टमी[18] नौलीनवमी, अहवादशमी, व्रतएकादशी, वत्सद्वादशी[19] धनते-रस, अनंतचौदश[20] अमावास्या, आदित्यवार, उत्तरायण[21] नैवेद्य किया । नवोदक[22] याग[23] भोग[24] उतारणे किये, कराये, करते हुए का अनुमोदन सार-

1. अचित्त मिट्टी का पिंड 2. अनेक जीवों से व्याप्त 3. हिंसक 4. नागदेव 5. गांव की देवी ।

अनुसंधान पृष्ट 194 पर

किया। पिपल में पानी डाला, डलवाया। घर-बाहर, खेत-खलियान, कुआँ, तालाब, नदी, द्रह, बावड़ी, समुद्र, कुण्ड में पुण्य निमित्त स्नान किया, करवाया, अनुमोदन किया, दान दिया। ग्रहण, शनिश्चर, माघमास तथा नवरात्रि में स्नान किया। अनजान मनुष्यों द्वारा स्थापित अन्य अन्य व्रतादि किये, करवाये।

वितिगिच्छा-धर्म संबंधी फल में संदेह किया। जिन, अरिहंत, धर्म के आगार[1], विश्वोपकार सागर, मोक्षमार्ग के दातार इत्यादि गुणयुक्त माना नहीं, पूजा नहीं की। महासती, महात्मा की इहलोक-परलोक संबंधी भोगवांछित पूजा की। रोग, आतंक, कष्ट के आने पर क्षीणवचन बोला, भोग धरे, मानता मानी। महात्मा के आहार-पानी, मल, शोभा की निंदा की। कुचारित्री को देखकर चारित्रवान् पर अभाव हुआ। मिथ्यादृष्टि की पूजा प्रभावना देखकर प्रशंसा की, प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना, किया।

श्री सम्यक्त्व व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।5।।

पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पाँच अतिचार-

।। वहबंध छविच्छेए0 ।।

द्विपद, चतुष्पद जीव के प्रति क्रोधवश गहरा घाव लगाया, जकड़कर बांधा, अधिक बोझ डाला, निर्लांछनकर्म किया, घास-पानी की समय पर

अनुसंधान पृष्ट 193 से

6. अन्य मत के देव विशेष 7. ब्राह्मण 8.वेशधारी साधु 9. मृत व्यक्ति की वार्षिक तिथि के दिन ब्राह्मण आदि को भोजन करना अथवा ज्ञाति भोजन 10. माघ मास की पूर्णिमा 11. आसो सुदी एकम्-जिस दिन माता मह का श्राद्ध किया जाता है 12. कार्तिक शुक्ला द्वितीया जिसे पम द्वितीय भी कहते है 13. चैत्र शुक्ला तृतीया-पुत्र की इच्छा से स्त्रियाँ गौरीव्रत करती है 14. भादो शुक्ला चतुर्थी को गणेश की पूजा करते है 15. श्रावण शुक्ला पंचमी को सांप की पूजा करते है 16. श्रावण कृष्णा छट्ठ जिसे रांधन छट्ठ भी कहते है 17. श्रावण शुक्ला सप्तमी, जिस दिन ठंडा-बासी भोजन करते है। शीतला देवी की पूजा करते हैं 18. भादो शुक्ला अष्टमी को स्त्रियाँ गाय की पूजा करती हैं 19. आसो कृष्णा द्वादशी 20. भादो शुक्ला चतुर्दशी गणपति का विसर्जन 21. मकर संक्रांति का दिन 22. वर्षा का नया पानी पाने की खुशी में मनाया पर्व यज्ञ कराना 23. ठाकुरजी को भोग-नैवेद्य रखना। 24. खान

संभाल न की, लेन-देन में किसी का उल्लंघन किया हो, उसे भूखा रखकर स्वयं खाया, पास में रहकर मरवाया, कैद करवाया। सड़े हुए अनाज को धूप में सुखाया, पीसवाया, दलाया, शोधे बिना काम में लिया। इंधन, उपले बिना शोधे जलाये। उसमें सर्प, बिच्छु, कानखजूरा, सरवला[1], खटमल, जुआ, गींगोड़ा[2] आदि जीवों का पकड़ते हुए नाश हुआ, उनको दुःखी किया, उनको अच्छी जगह पर न रखा। चींटी, मकोड़ी के अंडे का वियोग किया, लीख मारी, दीमक, चींटी, मकोड़ी, घीमेल, लिढ़े, चूड़ेल, पतंगा, मेंढक, केंचुआ, लट, कुंतूए, मच्छर, मसा, बगतरा, मक्खी, टीड्डी इत्यादि जीवों का विनाश किया। घोंसले को हिलाते-डुलाते, पक्षी, चिड़ियाँ, कौए के अंडे फोड़े और भी एकेन्द्रिय आदि जीवों का विनाश किया, दबाया, दुःखी किया हो। कुछ हिलाते डुलाते, पानी छांटते, अन्य कामकाज करते निर्दयता की। भली प्रकार से जीवरक्षा न की। संखारे[3] को सुखाया। अच्छी तरह से गरणा न रखा। बिना छाना हुआ पानी काम में लिया। अच्छी तरह से जयणा न की। बिना छाने पानी से स्नान किया, कपड़े धोये। चारपाई धूप में रखी, डंडे आदि से झटकायी। जीव संसक्त जमीन को लीपा। बासी गोबर रखा। दलते-कूटते, लिंपते, भली प्रकार से यतना न की। अष्टमी-चतुर्दशी के नियम तोड़े। धूनी करवाई।

पहले स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।1।।

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पाँच अतिचार

।। सहसा रहस्सदारे0 ।।

सहसात्कारे -[4] किसी पर अयोग्य कलंक लगाया। स्वस्त्री संबंधी गुप्त बात प्रगट की, अन्य किसी का मंत्र, आलोच[5] मर्म [6]प्रगट किया। किसी का बुरा करने के लिए झूठी सलाह दी, झूठा लेख लिखा, [7]झूठी साक्षी दी। किसी

---

1. जंतु विशेष 2. जंतु विशेष 3. कुएँ, तालाब आदि के पानी का उपयोग करने से पहले उस पानी को मोटे वस्त्र से छानना चाहिये। छानने के बाद जो शेष रहता है, उसे संखारा कहते है। पानी छानने के बाद उस संखारे को उसी तालाब आदि में डालना चाहिये। न डाले तो अतिचार लगता है। 4. बिना विचार किए 5. गुप्त विचारणा 6. गुप्त घटना 7. किसी की धरोहर वस्तु वापिस न दी।

की अमानत में खयानत की । कन्या, गाय, पशु, भूमि संबंधी लेन-देन व्यवसाय में, लड़ते-झगड़ते, वाद-विवाद में बड़ा झूठ बोला, हाथ-पैर की गाली दी, तिरस्कार पूर्वक कड़ाके किये, मर्म वचन बोले ।।

दूसरे स्थूल मृषावाद विरमण व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।2।।

तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पाँच अतिचार-

।। तेनाहडप्पओगे0 ।।

घर, बाहिर, खेत, खलियान में नहीं भेजी हुई पराई वस्तु ग्रहण की, उपयोग में ली । चोरी का माल खरीदा । चोर-डाकू को संकेत दिया, उसे सहारा दिया, उसकी वस्तु ली । राज्य-नियम से विरुद्ध वर्तन किया । नई-पुरानी, सरस-विरस, सजीव-निर्जीव वस्तु का मिश्रण किया । झूठे वजन, तोल-मान-माप से खरीदा । करचोरी की । किसी को हिसाब-किताब में ठगा । बदले में रिश्वत ली । झुठा बटाव लिया । विश्वासघात किया । अन्य को ठगा । तराजू के पलड़े विसम रखे । तराजू में शृंखला चढ़ाई । बात-बात में गलत तोल-मान-माप किया । माता-पिता, पुत्र, मित्र, पत्नी के साथ ठगी कर अन्य किसी को दिया । पूंजी अलहदा रखी । किसी की धरोहर वस्तु न लौटाई । हिसाब-किताब में किसी को भूलाया । पड़ी हुई वस्तु छिपाई ।।

तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।3।।

चौथे स्वदारासंतोष परस्त्रीगमन विरमण व्रत के पाँच अतिचार

।। अपरिग्गहियाइत्तर0 ।।

अपरिगृहीतागमन[1], इत्वरपरिगृहीतागमन[2] किया । विधवा, वेश्या, परस्त्री, कुलांगना, स्वपत्नी सौतन के विषय में अनुचित दृष्टि डाली, सराग-वचन बोले । अष्टमी, चतुर्दशी अन्य पर्व-तिथि का नियम लेकर तोड़ा । नाते[3] किये, कराये । वर-वधू की प्रशंसा की । कुविकल्प का चिंतन किया । अनंग-क्रीड़ा[4] की । स्त्री के अंगोपांग देखे । दूसरों के विवाह जोड़े । गुड्डे-गुड्डियों का

1. वेश्या गमन 2. अल्पकाल के लिए रखी स्त्री के साथ गमन 3. पुनर्विवाह, विधवा या व्यक्ता का बिना किसी विधि से पुनः विवाह करना. 4. व्यवहार-विरुद्ध अंगो द्वारा काम क्रीडा करना ।

विवाह रचाया । काम-भोग के विषय में तीव्र अभिलाष किया । अतिक्रम[1], व्यतिक्रम[2], अतिचार[3], अनाचार[4], स्वप्न-स्वप्नांतर में हुआ । कुस्वप्न आये । नट, विट[5], स्त्री से हास्य किया ।।

चौथे स्वदारासंतोष-परस्त्रीगमन विरमण व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।4।।

पाँचवें स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत के पाँच अतिचार-

।। धण धन्न खित्त वत्थू0 ।।

धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु[6], चांदी, सोना, तांबा-पीतल, द्विपद[7], चतुष्पद[8] इन नौ प्रकार के परिग्रह के नियम के उपरांत वृद्धि देखकर मूर्च्छा से संक्षेप न किया, माता-पिता, पुत्र, स्त्री के नाम किया । परिग्रह परिमाण[9] लिया नहीं, लेकर याद न रखा, पढ़ना भूला । हिसाब लिये बिना ही धन-परिग्रह में शामिल किया । नियम भूले ।

पाँचवें परिग्रह परिमाणव्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।5।।

छट्ठे दिक्परिमाण व्रत के पाँच अतिचार

।। गमणस्स उ परिमाणे0 ।।

ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा, तिर्च्छिदिशा में जाने-आने के नियम लेकर तोड़े । अनजान में भूल जाने से नियम से अधिक भूमि गये । भेजने योग्य वस्तु आगे पीछे भेजी । जहाज द्वारा व्यापार किया । वर्षाकाल में एक गाँव से दूसरे गाँव गये । एक दिशा की भूमि के प्रमाण को कम करके दूसरी दिशा के प्रमाण को अधिक किया ।

छट्ठे दिक्परिमाण व्रत के विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से

---

1. उदाहरण के लिए किसी ने रात्रि भोजन त्याग किया हो, उसे रात्रि भोजन की इच्छा हो तो उसे अतिक्रम कहते है । 2. खाद्य वस्तु को लेने के लिए प्रयत्न व्यतिक्रम कहलाता है । 3. खाद्य वस्तु को हाथ में लेना-अतिचार कहलाता है । 4. रात में खा लेना, उसे अनाचार कहते है 5. वेश्या का यार 6. घर आदि 7. दास-दास 8. गाय बैल आदि 9. हिसाब में परिग्रह का माप नहीं निकाला हो ।

मिच्छा मि दुक्कडं ।।6।।

सातवें भोगोपभोग परिमाण व्रत के भोजन संबंधित पाँच अतिचार एवं कर्मादान संबंधित पन्द्रह अतिचार, इस प्रकार बीस अतिचार-

।। सचित्ते पडिबद्धे0 ।।

सचित्त[1] का नियम लेकर अधिक सचित्त लिया। अपक्व आहार, दुष्पक्व आहार, तुच्छ औषधि[2] का भक्षण किया। होले[3], भुट्टे[4], पोंक[5], फलियाँ[6] खाई।

सचित्त-दव्व-विगइ-वाणह-तंबोल-वत्थ-कुसुमेसु ।
वाहण-सयण-विलेवण-बंभ-दिसी-न्हाण-भत्तेसु ।।1।।

ये चौदह नियम दिन और रात्रि संबंधित लिये नहीं, लेकर भंग किये। बाईस अभक्ष्य, बत्तीस अनंतकाय में से अदरक, मूली, गाजर, रतालु, प्याज, कचुर[7], सुरन, कोमल इमली, गिलोय, वाघरड़े[8] खाये। बासी दलहन[9]-पूरणपूरी-रोटी खाई, तीन दिन के चावल[10] खाये। शहद, महुआ, मक्खन, मिट्टी, बैंगन, पीलु, पीचु, पंपोटा[11], विष, बर्फ, ओले, द्विदल[12], अनजाने फल, टींबरु, गुंदे, मंजरी, बोलअचार[13], खट्टे बोर, कच्चा नमक, तिल, खसखस, कोठिंबड़े खाये। रात्रिभोजन किया। सूर्यास्त के समय भोजन किया। सूर्योदय से पूर्व नाश्ता किया।

तथा कर्मतः पन्द्रह कर्मादान-

इंगालकम्मे[14], वणकम्मे, साडिकम्मे, भाडिकम्मे, फोडिकम्मे, ये पाँच कर्म।

दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, विस-वाणिज्जे ये पाँच कर्म।

---

1. जीव युक्त। 2. जो असार पदार्थ हो, तृप्ति कारक न हो, थोडा खाने का हो और ज्यादा फेंकने का हो, जैसे-पीलु का फल, गुंदी, गन्ना आदि। 3. सिके हुए हरे चने। 4. जौ या गैहुँ की बाल अवस्था। गैहुँ, बाजरी, जौ मक्का आदि धान्य के सिके हुए हुंडिए। 5. हरी बालो को आंचकर सेककर निकाले हुए दाने, ज्वार, बाजरी आदि के कच्चे धान्य को सेककर या भुनकर निकाले हुए कण हरे गैहुँ, कोमल कच्चे अनाज। 6. वाल की फली, वालोर की फली। 7. हरा कचुर स्वाद में तीखा होता है। 8. सर्वथा कोमल काचरा। 9. जिसमें से तैल नहीं निकलता हो, दो बराबर टुकडे हो, पेड के फलरुप न हो, उसे दलहन कहते है। 10. छाश वाले। 11. अफ़ीम के डोड। 12. कच्चे दूध, दही व छाश के साथ दलहन का मिश्रण होने से द्वीन्द्रिय जीव पैदा हो जाते है। 13. जिसमें पानी का अंश रह गया हो।

जंतपिल्लणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सर-दह- तला-यसोसणया, असई-पोसणया ये पाँच सामान्य ।

ये पाँच कर्म, पाँच वाणिज्य, पाँच सामान्य इस प्रकार पन्द्रह कर्मादान । अधिक पापवाले महाहिंसक, रंगाई एवं कोयले के काम करवाये, ईट भट्ठी पकाई । फुले, चने, पकवान कर बेचे । बासी मक्खन को गरम किया । तिल लिये, फाल्गुन मास उपरांत तिल को रखे, तिलकुट[1] बनाया । सिगड़ी[2] करवाई । श्वान, बिल्ली, तोता, मैना आदि पोषे । अन्य जो कोई अधिक पापवाले कठोर काम किये हो । बासी गोबर रखा । लिपाई, पोताई का महारंभ किया । प्रमार्जन किये बिना चुल्हा सुलगाया । घी, तेल, गुड़, छाछ आदि के बर्तन खुले रखे, उसमें मक्खी, कुंति, चूहा, छिपकली पड़ी, चींटी चढ़ी, उसकी जयणा न की ।।

सातवें भोगोपभोग व्रत के विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।7।।

आठवें अनर्थदंड विरमण व्रत के पाँच अतिचार-

।। कंदप्पे कुक्कुइए0 ।।

काम वासना से विट[3] चेष्टा, हास्य, खेल, कुतूहल किया । पुरुष-स्त्री के हाव-भाव, रुप, शृंगार, विषयरस की प्रशंसा की । राजकथा, भक्तकथा[4], देशकथा, स्त्रीकथा की । दूसरों की पंचायत की तथा चुगलखोरी की । आर्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याये । तलवार, छोटी छूरी, म्यान, कुल्हाड़ी, रथ, उखल, मुसल, अग्नि, चक्की, खरल, दंताली आदि हिंसक साधन इकट्ठे कर दाक्षिण्य से मांगे, दिये । पापोपदेश दिया ।

अष्टमी, चतुर्दशी के दिन कूटने, पिसने का नियम तोड़ा । वाचालता से अघटित वाक्य कहा । प्रमादाचरण सेवन किया । हल्दी आदि का उबटन करने में, स्नान करने में, दन्त मंजन करने में, पैर धोने में, बलगम, जल, तेल का छिंटकाव[5] किया । तालाब में स्नान किया ।

जुआ खेला । झुले में झुला । नाटक-चेटक देखा । कण, कुवस्तु[6], पशु खरीदवाये । कठोर वचन बोले । आक्रोश किया । बोल चाल बंद की ।

1. तिल और गुड को कूटकर बनाई गई खाद्य सामग्री । 2. भट्ठी, टुल्हा । 3. कामुक । 4. भोजन संबंधी । 5. दंतमंजन कर पानी को जहां जहां फेंका । तैल आदि चिकने पदार्थों को इधर उधर टालने से उसके चिकनेपन के कारण जीवो की हिंसा होती है । 6. सड़ी वस्तु ।

कड़ाके किये। मात्सर्य धारण किया। परस्पर झगड़ा करवाया। श्राप दिये।

भैंसा, सांढ, बकरा, मुर्गा, कुत्ते आदि को लड़वाये, लड़ते हुए देखा, हार जाने से ईर्ष्या की। मिट्टी, नमक, धान, बिनौले आदि को बिना कारण दबाये, उन पर बैठें। हरी वनस्पति को कुचली हो। सूई-शस्त्र आदि बनवाये। अधिक निद्रा की। राग-द्वेष से एक के लिए समृद्धि, परिवार की इच्छा की, एक के लिए मृत्यु-हानि की इच्छा की।

आठवें अनर्थदंड विरमण व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।8।।

नौवें सामायिक व्रत के पाँच अतिचार-

।। तिविहे दुप्पणिहाणे0 ।।

सामायिक लेकर मन में जैसे-तैसे संकल्प-विकल्प किए, सावद्य वचन बोले, प्रतिलेखन किये बिना शरीर हिलाया। समय होते हुए सामायिक न किया। सामायिक में खुले मुँह बोला। नींद आई। बातचीत, विकथा, घर संबंधी चिंता की। बिजली या दीपक का प्रकाश पड़ा। दाने, कपास, मिट्टी, नमक, खड़ी, धावड़ी[1], अरणेट्टक, पाषाण आदि का स्पर्श हुआ। पानी, पाँच वर्णों की कांई[2], वनस्पति, बीज के जीव इत्यादि का स्पर्श हुआ। स्त्री-तिर्यंच का निरंतर-परंपर स्पर्श हुआ। मुहपत्ति का उत्संघट्टन हुआ। समय से पूर्व सामायिक पारा, पारना भूला ।।

नौवें सामायिक व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।9।।

दसवें देशावगासिक व्रत के पाँच अतिचार-

।। आणवणे पेसवणे0 ।।

आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाई, रूवाणुवाई, बहियापुग्गलपक्खेवे ।।

नियमित भूमि में बाहर से कुछ वस्तुएँ मंगवाई, अपने पास से कुछ बाहर भिजवाई अथवा रूप दिखाकर, कंकरादि फेंककर, खूँखारादि शब्द करके अपना होना मालूम किया ।।

---

1. बिना फोडा हुआ चुना 2. पत्थरों के टुकडों से मिली हुई मिट्टी।

दसवें देशावगासिक व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।10।।

ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार

।। संथारुच्चारविहि० ।।

अप्पडिलेहिअ-दुप्पडिलेहिअ-सिज्जासंथारए, अप्पडिलेहिअ दुप्पडि-लेहिअ-उच्चारपासवण भूमि ।।

पौषध लेकर संथारा की भूमि न पूंजी, लघुनीति[1] व बड़ीनीति[2] की बाहर की भूमि दिन में जांच नहीं की, पडिलेहण नहीं किया, बिना पूंजे पेशाब किया, बिना पूंजी हुई भूमि में परठा। परठते समय **'अणुजाणह जस्सुग्गहो'**[3] न कहा। परठने के बाद तीन बार **'वोसिरे वोसिरे'**[4] ने कहा। पौषधशाला में प्रवेश करते हुए **'निसीहि'**[5], बाहर निकलते **'आवस्सही'**[6] तीन बार न कही। पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, वनस्पति, त्रसकाय का स्पर्श, परिपात, उपद्रव हुआ। संथारा पोरिसी की विधि पढ़ानी भूलाई। पोरिसी में नींद ली। अविधि से संथारा बिछाया। पारणादि की चिंता की। काल समय पर देववंदन न किया, प्रतिक्रमण न किया। पौषध देरी से लिया और जल्दी से पारा। पर्व तिथि को पौषध न लिया।

ग्यारहवें पौषधोपवास व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।11।।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के पाँच अतिचार-

।। सचित्ते निक्खिवणे० ।।

सचित्त वस्तु का ऊपर या नीचे स्पर्श होते हुए भी साधु-साध्वीजी को अशुद्ध दान दिया। देने की बुद्धि से सदोष वस्तु को निर्दोष कही। पराई वस्तु अपनी कही। न देने की बुद्धि से निर्दोष वस्तु को सदोष कही। अपनी वस्तु पराई कही। गोचरी के वक्त इधर-उधर हो गया। बेवक्त साधु महाराज को गोचरी ले गया, मात्सर्य से दान दिया। आये हुए गुणवान की भक्ति न की।

---

1. पेशाब। 2. विष्ठा। 3. जो इस क्षेत्र के अधिष्ठायक हो वे मुझे अनुमति प्रदान करें। 4. विसर्जन योग्य पदार्थों का त्याग करता हूँ। 5. सांसारिक प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ। 6. अन्य आवश्यक कार्य के लिए बाहर निकल रहा हूँ।

शक्ति के होते हुए भी साधर्मिक वात्सल्य न किया। क्षीण होते हुए अन्य धर्मक्षेत्रों का शक्ति होने पर भी उद्धार न किया। दीन दुःखी को अनुकंपा दान न दिया।

बारहवें अतिथि संविभाग व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।12।।

संलेषणा के पाँच अतिचार

।। इहलोए परलोए० ।।

इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीविआसंसप्प-ओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे ।।

धर्म के प्रभाव से इस लोक संबंधी राजऋद्धि, सुख, सौभाग्य, परिवार की इच्छा की। परलोक में देव, देवेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती के पद की इच्छा की। सुख आने पर जीने की इच्छा की। दुःख आने पर मरने की इच्छा की। काम-भोग की इच्छा की ।।

संलेषणा व्रत विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्मबादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।13।।

तपाचार के बारह भेद छ बाह्य, छ अभ्यंतर-

।। अणसणमूणोअरिया० ।।

अनशन-शक्ति के होते हुए पर्वतिथि को उपवासादि न किया। **ऊणोदरीव्रत-**पाँच, सात कवल कम न खाये। **वृत्तिसंक्षेप-**द्रव्य आदि सर्व वस्तु का संक्षेप न किया। **रसत्याग-**विगई[1] त्याग न किया। **कायक्लेश-**लोचादि कष्ट सहन न किया। **संलीनता-**अंगोपांग संकोच न किया। पच्चक्खाण भंग किया। हिलते हुए बाजोट को स्थिर न किया। गंठसी, पोरिसी, साड्ढपोरिसी, पुरिमुड्ढ़, एकासना, बियासना, नीवि, आयंबिल इत्यादि पच्चक्खाण पारना भूला। बैठते समय नवकार न गिना। उठते समय पच्चक्खाण करना भूला। गंठसी का भंग किया। नीवि, आयंबिल, उपवासादि तप करके कच्चा पानी पीया, वमन हुआ।

---

1. दूध दही, घी, तैल, गुड और पक्वान।

बाह्य तप विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।14।।

अभ्यंतर तप-

।। पायच्छित्तं विणओ० ।।

शुद्ध अंतःकरण पूर्वक गुरु के पास आलोचना न ली । गुरु के द्वारा दिया हुआ प्रायश्चित्त-तप सांगोपांग पूर्ण न किया । देव, गुरु, संघ, साधर्मिक का विनय न किया । बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी आदि की वैयावच्च न की । वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा लक्षण पाँच प्रकार का स्वाध्याय न किया । धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याये । आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्याये । कर्मक्षय निमित्त दस-बीस लोगस्स का काउस्सग्ग न किया ।।

अभ्यंतर तप विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।15।।

वीर्याचार के तीन अतिचार

।। अणिगूहिअबलवीरिओ० ।।

पढ़ते, गुणते, विनय, वैयावच्च, देवपूजा, सामायिक, पौषध, दान, शील, तप, भावनादिक धर्मकृत्य में शक्ति होते हुए भी मन-वचन-काया का बल[1], वीर्य[2] छुपाया । विधिपूर्वक पंचांग खमासमण न दिया । वांदणा की आवर्त्त विधि को भली प्रकार से न की । अन्यचित्त[3], निरादर से बैठा । देववंदन, प्रतिक्रमण में जल्दी की ।

वीर्याचार विषय में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कडं ।।16।।

नाणाइअट्ठ पइवय, सम्मसंलेहण पण पन्नर कम्मेसु ।
बारस तव वीरिअतिगं, चउव्वीससयं अइयारा ।।

।। पडिसिद्धाणं करणे० ।।

---

1. शारीरिक बल । 2. आत्मिक शक्ति 3. शुन्यचित्त ।

प्रतिषेध-अभक्ष्य, अनंतकाय, बहुबीज का भक्षण किया, महारंभ, परिग्रहादि किया। जीवाजीवादिक सूक्ष्म विचार की श्रद्धा न की। अपनी कुमति से उत्सूत्र प्ररूपणा की। तथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति, अरति, परपरिवाद, मायामृषावाद, मिथ्यात्वशल्य-ये अट्ठारह पापस्थानक किये, करवाये, अनुमोदे हो।

दिन कृत्य-प्रतिक्रमण, विनय, वैयावच्च न किया और भी जो कुछ वीतराग की आज्ञा विरुद्ध किया, करवाया या अनुमोदन किया हो, इन चार प्रकारों में अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।17।।

इस प्रकार श्रावकधर्म में श्री सम्यकत्व मूल बारह व्रत, उसके एक सौ चौबीस अतिचारों में से अन्य जो कोई अतिचार पक्ष दिन में सूक्ष्म-बादर जानते-अजानते लगा हो, उन सब का मेरा मन-वचन-काया से मिच्छा मि दुक्कड़ं ।।

(इस प्रकार श्रावक के पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक अतिचार समाप्त)

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

श्री पाक्षिकादि गुजराती अतिचार

नाणंमि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि ।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ।।1।।

ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपाचार वीर्याचार ए पंचविध आचारमांहि अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवस मांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय, ते सवि मन वचन कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं 1.

तत्र ज्ञानाचारे आठ अतिचार -

काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वंजण अत्थ तदुभए, अट्ठविहो नाणमायारो ।।1।।

ज्ञान काळवेळाए भण्यो-गण्यो नहीं, अकाळे भण्यो. विनयहीन, बहुमानहीन, योग-उपधानहीन, अनेरा कन्हे भणी अनेरो गुरु कह्यो । देव-गुरु वांदणे, पडिक्कमणे, सज्झाय करतां, भणतां गणतां, कूडो अक्षर काने मात्राए अधिको-ओछो भण्यो । सूत्र कूडुं कह्युं, अर्थ कूडो कह्यो, तदुभय कूडां कह्यां, भणीने विसार्यां ।

साधुतणे धर्मे काजो अणउद्धर्ये, दांडो अणपडिलेहे, वसति अणशोधे अणपवेसे, असज्झाय अणोज्झायमांहे श्रीदशवैकालिक प्रमुख सिद्धांत भण्यो-गण्यो । श्रावकतणे धर्मे स्थविरावलि, पडिक्कमणां, उपदेशमाला, प्रमुख सिद्धांत भण्यो-गण्यो । काळवेळाए काजो अणउद्धर्ये पढ्यो. ज्ञानोपगरण-पाटी, पोथी, ठवणी, कवळी, नवकारवाळी, सापडा, सापडी, दस्तरी, वही, कागळिया ओलिया प्रमुख प्रत्ये पग लाग्यो, थूंक लाग्युं, थूंके करी अक्षर भांज्यो, ओशीसे धर्यो, कने छतां आहार निहार कीधो ।

ज्ञानद्रव्य भक्षतां उपेक्षा कीधी. प्रज्ञापराधे विणाश्यो, विणसतां उवेख्यो, छती शक्तिए सार-संभाळ न कीधी, ज्ञानवंत प्रत्ये द्वेष मत्सर चिंतव्यो । अवज्ञा-आशातना कीधी । कोइ प्रत्ये भणतां-गणतां अंतराय कीधो । आपणा जाणपणातणो गर्व चिंतव्यो. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान ए पंचविध ज्ञानतणी असद्दहणा कीधी । कोइ तोतडो बोबडो देखी हस्यो, वितर्क्यो । अन्यथा प्ररुपणा कीधी. ज्ञानाचार विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवस0 1.

दर्शनाचारे आठ अतिचार–

निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ ।
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्लपभावणे अट्ठ ।।2।।

देव गुरु धर्म तणे विषे निःशंकपणुं न कीधुं तथा एकांत निश्चय न कीधो । धर्म-संबंधीया फळतणे विषे निःसंदेह बुद्धि धरी नहीं । साधु-साध्वीनां मल-मलिन गात्र देखी दुगंच्छा नीपजावी, कुचारित्रीया देखी चारित्रीया ऊपर अभाव हुओ. मिथ्यात्वीतणी पूजा प्रभावना देखी मूढदृष्टिपणुं कीधुं ।

तथा संघमांहे गुणवंततणी अनुपबृंहणा कीधी, अस्थिरीकरण, अवात्सल्य, अप्रीति, अभक्ति निपजावी, अबहुमान कीधुं ।

तथा देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, ज्ञानद्रव्य साधारणद्रव्य भक्षित उपेक्षित प्रज्ञापराधे विणाश्यां, विणसतां उवेख्यां, छती शक्तिए सारसंभाळ न कीधी । तथा साधर्मिक साथे कलह कर्मबंध कीधो. अधोती अष्टपड-मुखकोश पाखे देवपूजा कीधी । बिंब प्रत्ये वासकुंपी धूपधाणुं कलश तणो ठबको लाग्यो. बिंब हाथथकी पाड्युं. उसास-निःसास लाग्यो. देहरे उपाश्रये मलश्लेष्मादिक लोह्युं, देहरा मांहे हास्य, खेल केलि, कुतुहल आहार निहार कीधां । पान, सोपारी, निवेदिआं खाधां । ठवणायरिय हाथथकी पाड्या, पडिलेहवा विसार्या । जिनभवने चोराशी आशातना, गुरू-गुरूणी प्रत्ये तेत्रीस आशातना कीधी होय, गुरुवचन तहत्ति करी पडिवज्युं नहीं. दर्शनाचार विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवस0 2.

चारित्राचारे आठ अतिचार–

पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिइहिं तीहिं गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो ।।3।।

ईर्यासमिति ते अणजोए हिंड्या । भाषासमिति ते सावद्य वचन बोल्या । एषणासमिति ते तृण, डगल, अन्न, पाणी असूझतुं लीधुं । आदानभंडमत्तनिकखेवणा समिति ते आसन, शयन, उपकरण, मातरुं प्रमुख अणपूंजी जीवाकुल भूमिकाए मूक्युं-लीधुं । पारिष्ठापनिकासमिति ते मल-मूत्र, श्लेष्मादिक अणपूंजी जीवाकुल भूमिकाए परठव्युं । मनोगुप्ति मनमां आर्त्त-रौद्र ध्यान ध्यायां । वचनगुप्ति सावद्य वचन बोल्यां । कायगुप्ति शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं, अणपूंजे बेठा । ए अष्ट प्रवचन माता साधुतणे धर्मे

सदैव अने श्रावकतणे धर्मे सामायिक पोसह लीधे रुडी पेरे पाल्यां नहीं, खंडणा विराधना हुइ । चारित्राचार विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवस0 3.

विशेषत: श्रावकतणे धर्मे श्री सम्यक्त्वमूल बार व्रत सम्यक्त्वतणा पांच अतिचार, संका कंख विगिच्छा0

शंका - श्री अरिहंततणां बल, अतिशय, ज्ञानलक्ष्मी, गांभीर्यादिक गुण शाश्वती प्रतिमा, चारित्रीयानां चारित्र, श्री जिनवचनतणो संदेह कीधो.

आकांक्षा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्षेत्रपाल, गोगो, आसपाल, पादर-देवता, गोत्र-देवता, ग्रहपूजा, विनायक, हनुमंत, सुग्रीव, वालीनाह इत्येवमादिक, देश, नगर, गाम, गोत्र, नगरी, जूजूआ देव-देराना प्रभाव देखी, रोग आतंक कष्ट आव्ये इहलोक परलोकार्थे पूज्या-मान्या । सिद्ध विनायक जीराउलाने मान्युं-इच्छ्युं । बौद्ध-सांख्यादि, संन्यासी, भरडा, भगत, लिंगीया, जोगीया, जोगी, दरवेश अनेरा दर्शनीयातणो कष्ट, मन्त्र, चमत्कार देखी परमार्थ जाण्या विना भूल्या, मोह्या । कुशास्त्र शीख्यां, सांभळ्यां ।

श्राद्ध, संवत्सरी, होली, बळेव, माहिपूनम, अजापडवो, प्रेतबीज, गौरी त्रीज, विनायक चोथ, नागपंचमी, झीलणा-छठ्ठी, शील-सातमी, ध्रुव-आठमी, नौली-नवमी, अहवा दशमी, व्रत-अग्यारशी, वत्सबारशी, धन-तेरशी, अनन्त-चउदशी, अमावास्या, आदित्यवार, उत्तरायण, नैवेद्य कीधां ।

नवोदक, याग, भोग, उतारणां कीधां, कराव्यां, अनुमोद्यां । पींपले पाणी घाल्यां, घलाव्यां । घर, बाहिर, क्षेत्रे, खळे, कूवे, तलावे नदीए, द्रहे, वावीए समुद्रे, कुंडे पुण्यहेतु स्नान कीधां, कराव्यां, अनुमोद्यां, दान दीधां, ग्रहण, शनैश्चर, महामासे, नवरात्रिए न्हाया, अजाणतां थाप्यां अनेरा व्रतवतोलां कीधां, कराव्यां ।

वितिगिच्छा - धर्मसंबंधीया फलतणे विषे संदेह कीधो । जिन अरिहंत धर्मना आगार, विश्वोपकारसागर, मोक्षमार्गना दातार इस्या गुण भणी न मान्या-न पूज्या । महासती-महात्मानी इहलोक-परलोक संबंधीया भोग-वांछित पूजा कीधी । रोग आतंक कष्ट आव्ये खीण वचन भोग मान्या । महात्माना भात-पाणी, मल, शोभातणी निंदा कीधी । कुचारित्रीया देखी चारित्रीया ऊपर कुभाव हुओ ।

मिथ्यात्वीतणी पूजा-प्रभावना देखी प्रशंसा कीधी, प्रीति मांडी. दाक्षिण्यलगे तेहनो धर्म मान्यो, कीधो । श्री सम्यक्त्व विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि0

पहेले स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रते पांच अतिचार-

वहबंधछविच्छेए0 द्विपद, चतुष्पद प्रत्ये रीसवशे गाढो घाव घाल्यो, गाढे बंधने बांध्यो, अधिक भार घाल्यो । निर्लांछन कर्म कीधां । चारा-पाणीतणी वेळाए सार-संभाळ न कीधी । लेहणे-देहणे किणही प्रत्ये लंघाव्यो, तेणे भूख्ये आपणे जम्या, कन्हे रही मराव्यो, बंदीखाने घलाव्यो. सड्या धान्य तावडे नाख्यां, दळाव्यां, भरडाव्यां, शोधी न वावर्यां । इंधण, छाणां अणशोध्यां बाळ्यां, तेमांहि साप, विंछी, खजुरा, सरवला, मांकड, जुआ, गिंगोडा, साहता मूआ, दुहव्या, रुडे स्थानके न मूक्यां । कीडी-मंकोडीना इंडा विछोया । लीख फोडी । उदेही, कीडी, मंकोडी, घीमेल, कातरा, चूडेल, पतंगियां, देडकां, अलसियां, इयळ, कुंता, डांस, मसा, बगतरा, माखी, तीड प्रमुख जीव विणठ्ठा । माळा हलावतां-चलावतां पंखी, चकला, कागतणा इंडां फोड्यां । अनेरा एकेंद्रियादिक जीव विणास्या, चांप्या, दुहव्या । कांइ हलावतां-चलावतां पाणी छांटतां, अनेरा कांइ काम-काज करतां निर्ध्वंसपणुं कीधुं । जीवरक्षा रुडी न कीधी । संखारो सुकव्यो । रुडुं गळणुं न कीधुं, अणगळ पाणी वापर्युं, रुडी जयणा न कीधी, अणगळ पाणीए झील्या, लुगडां धोयां. खाटला तावडे नांख्या, झाटक्या । जीवाकुलभूमि लींपी । वाशी गार राखी । दळणे, खांडणे, लींपणे रुडी जयणा न कीधी । आठम चउदशना नियम भांग्या, धूणी करावी. पहेले स्थूलप्राणातिपात विरमण व्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि० 1.

बीजे स्थूलमृषावादविरमणव्रते पांच अतिचार-

सहसा रहस्स दारे0 सहसात्कारे कुणहिप्रत्ये अजुगतुं आळ अभ्याख्यान दीधुं । स्वदारा मंत्रभेद कीधो । अनेरा कुणहिनो मंत्र आलोच, मर्म प्रकाश्यो. कुणहीने अनर्थ पाडवा कूडी बुद्धि दीधी, कूडो लेख लख्यो, कूडी साख भरी. थापणमोसो कीधो । कन्या, गौ, ढोर, भूमि संबंधी लेहणे देहणे व्यवसाये वाद-वढवाड करतां मोटकुं जूठुं बोल्या । हाथ-पगतणी गाळ दीधी । कडकडा मोड्या । मर्म वचन बोल्या । बीजे स्थूलमृषावाद-विरमण-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष० 2.

त्रीजे स्थूल अदत्तादान विरमणव्रते पांच अतिचार-

तेना-हडप्पओगे0 घर, बाहिर, क्षेत्र, खळे, पराइ वस्तु अणमोकली लीधी, वापरी, चोराइ वस्तु वहोरी । चोर, धाड प्रत्ये संकेत कीधो, तेहने संबल दीधुं, तेहनी वस्तु लीधी । विरुद्ध राज्यातिक्रम कीधो । नवा-पुराणा, सरस-विरस, सजीव-निर्जीव वस्तुना भेळसंभेळ कीधा । कूडे काटले तोले-माने, मापे वहोर्या । दाणचोरी कीधी. कुणहिने लेखे वरांस्यो, साटे लांच लीधी. कूडो करहो काढ्यो. विश्वासघात कीधो. परवंचना कीधी । पासंग कूडां कीधा, दांडी चढावी । लहके-त्रहके कूडां काटलां, मान मापां कीधां ।

माता, पिता, पुत्र, मित्र, कलत्र वंची कुणहिने दीधुं । जुदी गांठ कीधी । थापण ओळवी । कुणहिने लेखे-पलेखे भुलव्युं । पडी वस्तु ओळवी लीधी । त्रीजे स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवस० 3.

चोथे स्वदारा-संतोष-परस्त्रीगमन विरमण-व्रते पांच अतिचार-

अपरिग्गहिया-इत्तर0 अपरिगृहीतागमन, इत्वर परिगृहीतागमन कीधुं. विधवा, वेश्या, परस्त्री, कुलांगना, स्वदारा-शोकतणे विषे दृष्टिविपर्यास कीधो । सराग वचन बोल्या । आठम, चउदश, अनेरी पर्वतिथिना नियम लइ भांग्या । घरघरणां कीधां-कराव्यां । वर-वहु वखाण्यां । कुविकल्प चिंतव्यो । अनंगक्रीडा कीधी. स्त्रीनां अंगोपांग नीरख्यां । पराया विवाह जोड्या । ढींगला-ढींगली परणाव्या । काम-भोगतणे विषे तीव्र अभिलाष कीधो । अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार सुहणे स्वप्नान्तरे हुआ । कुस्वप्न लाध्यां । नट, विट, स्त्रीशुं हांसु कीधुं । चोथे स्वदारासंतोष-परस्त्रीगमन विरमण व्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष० 4.

पांचमे स्थूल परिग्रहपरिमाणव्रते पांच अतिचार-

धणधन्नखित्त-वत्थु0 धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, रुप्य, सुवर्ण, कुप्य, द्विपद, चतुष्पद, ए नवविध परिग्रहतणा नियम उपरांत वृद्धि देखी मूर्च्छा लगे संक्षेप न कीधो । माता, पिता, पुत्र, स्त्रीतणे लेखे कीधो । परिग्रह-परिमाण लीधुं नहीं, लइने पढयुं नहि, पढवुं विसार्युं, अ-लीधुं, मेल्युं, नियम विसार्या । पांचमे स्थूल परिग्रह परिमाणव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष० 5.

छट्ठे दिक्परिमाणव्रते पांच अतिचार-

गमणस्स उ परिमाणे0 उर्ध्वदिशि, अधोदिशि, तिर्यग्दिशिए जावा आववा-तणा नियम लइ भांग्या । अनाभोगे विस्मृति लगे अधिक भूमि गया । पाठवणी आघी-पाछी मोकली । वहाण व्यवसाय कीधो । वर्षाकाळे गामतरुं कीधुं । भूमिका एक गमा संक्षेपी, बीजी गमा वधारी । छट्ठे दिक्परिमाणव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवसमांहि० 6.

सातमे भोगोपभोग विरमणव्रते भोजन आश्रयी पांच अतिचार अने कर्महुंती पंदर अतिचार, एवं वीश अतिचार-

सचित्ते पडिबद्धे0 सचित्त नियम लीधे अधिक सचित्त लीधुं । अपक्वाहार दुष्पक्वाहार, तुच्छौषधितणुं भक्षण कीधुं । ओळा, उंबी, पोंक, पापडी खाधां ।

सचित्त-दव्व-विगइ-वाणह तंबोल-वत्थ- कुसुमेसु,
वाहण-सयण-विलेवण, बंभ-दिसि-ण्हाण-भत्तेसु ।।1।।

ए चौद नियम दिनगत रात्रिगत लीधा नहीं, लइने भांग्या । बावीश अभक्ष्य, बत्रीश अनंतकायमांहि आदु, मूळा, गाजर, पिंड, पिंडालु, कचूरो, सूरण, कुणी-आंबली, गलो, वाघरडां खाधां । वाशी-कठोळ, पोली रोटली, त्रण दिवसनुं ओदन लीधुं । मधु, महुडां, माखण, माटी, बेंगण, पीलु, पीचु, पंपोटा, विष, हिम, करहा, घोलवडा, अजाण्यां फळ, टींबरुं, गुंदा, महोर, बोळ-अथाणुं, आम्बलबोर, काचुं मीठुं, तिल, खसखस, कोठिंबडां खाधां । रात्रिभोजन कीधां । लगभग वेळाए वाळुं कीधुं । दिवस विण उगे शिराव्या ।

तथा कर्मतः पंदर कर्मादान । इंगाल-कम्मे, वण-कम्मे, साडी-कम्मे, भाडी कम्मे, फोडी कम्मे ए पांच कर्म । दंतवाणिज्य, लक्ख-वाणिज्य, रस-वाणिज्य, केस-वाणिज्य, विस-वाणिज्य ए पांच वाणिज्य । जंतपिल्लण-कम्मे, निल्लंछण-कम्मे, दवग्गि-दावणया, सर-दह-तलाय-सोसणया, असइ-पोसणया ए पांच सामान्य । ए पांच कर्म, पांच वाणिज्य, पांच सामान्य एवं पंदर कर्मादान बहुसावद्य, महारंभ, रांगण, लीहाला कराव्या । ईंट निभाडा पकाव्यां. धाणी, चणा, पक्वान्न करी वेच्यां । वाशी माखण तवाव्यां । तिल वहोर्या, फागणमास उपरांत राख्या, दलीदो कीधो, अंगीठा कराव्या । श्वान, बिलाडा, सूडा, सालही पोष्या । अनेरा जे कांइ बहु सावद्य खरकर्मादिक

समाचर्यां । वाशी गार राखी । लींपणे गुंपणे महारंभ कीधो । अणशोध्या चूला संधूक्या । घी, तेल, गोळ, छाशतणां भाजन उघाडां मूक्यां । तेमांहि माखी, कुंती, उंदर, गीरोली पडी, कीडी चडी, तेनी जयणा न कीधी । सातमे भोगोपभोग विरमणव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवसमांहि० 7.

आठमे अनर्थदंड विरमणव्रते पांच अतिचार-

कंदप्पे कुक्कुइए0 कंदर्प्प लगे, विटचेष्टा, हास्य, खेल, कुतूहल कीधा । पुरुष-स्त्रीना हावभाव, रुप-शृंगार, विषयरस वखाण्या । राजकथा, भक्तकथा, देशकथा, स्त्रीकथा कीधी । पराइ तांत कीधी, तथा पैशुन्यपणुं कीधुं । आर्त-रौद्र ध्यान ध्यायां । खांडा, कटार, कोश, कुहाडा, रथ, उखल, मुशल, अग्नि, घरंटी, निशाह, दातरडां प्रमुख अधिकरण मेली दाक्षिण्य लगे मांग्या, आप्या । पापोपदेश कीधो । अष्टमी, चतुर्दशीए खांडवा दळवातणा नियम भांग्या । मुखरपणा लगे असंबद्ध वाक्य बोल्या, प्रमादाचरण सेव्या । अंघोले, नाहणे, दातणे, पगधोअणे, खेल, पाणी, तेल, छांट्यां. झीलणे झील्या, जुगटे रम्या, हिंचोळे हिंच्या, नाटक प्रेक्षणक जोया ।

कण, कुवस्तु, ढोर लेवराव्यां, कर्कश वचन बोल्या । आक्रोश कीधा । अबोला लीधा । करकडा मोड्या । मच्छर धर्यो । संभेडा लगाड्या । श्राप दीधा । भेंसा, सांढ, हुड्डु, कुकडा, श्वानादि झुझार्या, झुझता जोया । खादि लगे अदेखाइ चिंतवी । माटी, मीठुं, कण कपासिया, काजविण चांप्या, ते उपर बेठा । आली वनस्पति खूंदी । सूइ, शस्त्रादिक निपजाव्या । घणी निद्रा कीधी । राग-द्वेष लगे एकने ऋद्धि परिवार वांछी, एकने मृत्युहानि वांछी । आठमे अनर्थदंड विरमणव्रतविषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष08.

नवमे सामायिकव्रते पांच अतिचार-

तिविहे दुप्पणिहाणे0 सामायिक लीधे मने आहट्ट दोहट्ट चिंतव्युं. सावद्य वचन बोल्या । शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं । छती वेळाए सामायिक न लीधुं । सामायिक लइ उघाडे मुखे बोल्यां, उंघ आवी । वात, विकथा, घरतणी चिंता कीधी, वीज दीवा तणी उजेहि हुई । कण, कपासीया माटी, मींठु, खडी, धावडी, अरणेट्टो, पाषाण प्रमुख चांप्या । पाणी, नील, फूल, सेवाल, हरियकाय, बीयकाय इत्यादि आभड्या । स्त्री, तिर्यंचतणा निरंतर-

परंपर संघट्ट हुआ । मुहपत्ति उत्संघट्टी. सामायिक अणपूग्युं पार्युं, पारवुं विसार्युं । नवमे सामायिक व्रत विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्षदिवसमांहि० 9.

दशमे देशावगासिक व्रते पांच अतिचार-

आणवणे पेसवणे0 आण-वणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाइ, रुवाणुवाइ, बहियापुग्गल-पक्खेवे । नियमित भूमिकामांहि बाहिरथी कांइ अणाव्युं, आपण कन्हेथकी बाहेर कांइ मोकल्युं । अथवा रुप देखाडी, कांकरो नाखी, साद करी आपणापणुं छतुं जणाव्युं । दशमे देशावगासिक व्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि० 10.

अगियारमे पौषधोपवास व्रते पांच अतिचार-

संथारुच्चारविहि0 अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय, सिज्जासंथारए, अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय, उच्चार-पासवण भूमि, पोसह लीधे संथारातणी भूमि न पूंजी । बाहिरलां वडां स्थंडिल दिवसे शोध्यां नहीं, पडिलेह्यां नहीं । मातरुं अणपूंज्युं हलाव्युं, अणपूंजी भूमिकाए परठव्युं । परठवतां `अणुजाणह जस्सुग्गहो' न कह्यो, परठव्या पूंठे वार त्रण `वोसिरे वोसिरे' न कह्यो । पोसहशालामांहि पेसतां `निसीहि' निसरतां `आवस्सहि' वार त्रण भणी नहीं । पुढवी, अप्, तेउ, वाउ, वनस्पति, त्रसकायतणा संघट्ट परिताप उपद्रव हुआ । संथारापोरिसीतणो विधि भणवो विसार्यो, पोरिसीमांहे उंघ्या । अविधे संथारो पाथर्यो । पारणादिकतणी चिंता कीधी । काळवेळाए देव न वांद्या । पडिक्कमणुं न कीधुं । पोसह असूरो लीधो, सवेरो पार्यो, पर्वतिथिए पोसह लीधो नहीं । अगियारमे पौषधोपवास व्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष०11.

बारमे अतिथिसंविभागव्रते पांच अतिचार-

सचित्ते निक्खिवणे सचित्त वस्तु हेठ उपर छतां महात्मा महासती प्रत्ये असूझतुं दान दीधुं । देवानी बुद्धिए असूझतुं फेडी सूझतुं कीधुं, परायुं फेडी आपणुं कीधुं । अणदेवानी बुद्धिए सूझतुं फेडी असूझतुं कीधुं, आपणुं फेडी परायुं कीधुं. वहोरवा वेळा टळी रह्या । असूर करी महात्मा तेड्या । मत्सर धरी दान दीधुं । गुणवंत आव्ये भक्ति न साचवी । छती शक्तिए स्वामी वात्सल्य न कीधुं । अनेरां धर्मक्षेत्र सीदातां छती शक्तिए उद्धर्या नहीं । दीन

क्षीण प्रत्ये अनुकंपादान न दीधुं । बारमे अतिथिसंविभागव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष0 12.

संलेषणातणा पांच अतिचार-

इहलोए परलोए0 इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे । इहलोके धर्मना प्रभाव लगे राज-ऋद्धि, सुख, सौभाग्य, परिवार वांछ्या । परलोके देव, देवेंद्र, विद्याधर, चक्रवर्ती तणी पदवी वांछी । सुख आव्ये जीवितव्य वांछ्युं, दुःख आव्ये मरण वांछ्युं. कामभोगतणी वांछा कीधी । संलेषणाव्रत विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष013.

तपाचार बार भेद-छ बाह्य, छ अभ्यन्तर

अणसणमूणोअरिआ0 अणसण भणी उपवास विशेष पर्वतिथे छती शक्तिए कीधो नहीं । ऊणोदरी व्रत ते कोळिया पांच सात ऊणा रह्या नहीं । वृत्तिसंक्षेप ते द्रव्य भणी सर्व वस्तुओनो संक्षेप कीधो नहीं. रसत्याग ते विगयत्याग न कीधो. कायक्लेश लोचादिक कष्ट सहन कर्यां नहीं । संलीनता अंगोपांग संकोची राख्यां नहीं.

पच्चक्खाण भांग्यां. पाटलो डगडगतो फेड्यो नहीं. गंठसी, पोरिसी, साड्ढपोरिसी, पुरिमड्ढ, एकासणुं, बेआसणुं, नीवि, आयंबिल प्रमुख पच्चक्खाण पारवुं विसार्युं. बेसतां नवकार न भण्यो. उठतां पच्चक्खाण करवुं विसार्युं. गंठसीयुं भांग्युं. नीवि, आयंबिल, उपवासादिक तप करी काचुं पाणी पीधुं, वमन हुओ. बाह्यतप विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि014.

अभ्यन्तर तप-

पायच्छित्तं विणओ0 मनशुद्धे गुरु कन्हे आलोअणा लीधी नहीं । गुरुदत्त प्रायश्चित्त तप लेखाशुद्धे पहुंचाड्यो नहीं. देव, गुरु, संघ, साहम्मि प्रत्ये विनय साचव्यो नहीं । बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी, प्रमुखनुं वैयावच्च न कीधुं । वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा लक्षण पंचविध स्वाध्याय न कीधो । धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्यायां । आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान ध्यायां । कर्मक्षयनिमित्ते लोगस्स दश वीशनो काउस्सग्ग न कीधो. अभ्यंतर तप विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि0 15.

वीर्याचारना त्रण अतिचार-

अणिगुहिअ-बलवीरिओ0 पढवे, गुणवे, विनय, वैयावच्च, देवपूजा, सामायिक, पोसह, दान, शील, तप, भावनादिक धर्मकृत्यने विषे मन-वचन-कायातणुं छतुं बळ, छतुं वीर्य गोपव्युं । रूडां पंचांग खमासमण न दीधां । वांदणातणा आवर्तविधि साचव्या नहीं । अन्यचित्त निरादरपणे बेठा । उतावळुं देववंदन पडिक्कमणुं कीधुं । वीर्याचारविषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि0 16.

नाणाइअट्ठ पइवय, सम्मसंलेहण पण पन्नर कम्मेसु ।
बारस तव वीरिअतिगं, चउव्वीससयं अइआरा. ।।1।।

पडिसिद्धाणं करणे0 प्रतिषेध अभक्ष्य अनंतकाय बहुबीजभक्षण महारंभ परिग्रहादिक कीधां । जीवाजीवादिक सूक्ष्म विचार सद्दह्या नहीं । आपणी कुमति लगे उत्सूत्र प्ररूपणा कीधी तथा प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रति-अरति, परपरिवाद, माया-मृषावाद, मिथ्यात्वशल्य-ए अढार पापस्थानक कीधां कराव्यां अनुमोद्यां होय. दिनकृत्य प्रतिक्रमण विनय वैयावच्च न कीधां. अनेरुं जे कांइ वीतरागनी आज्ञाविरुद्ध कीधुं कराव्युं अनुमोद्युं होय, ए चिहुं प्रकारमांहे अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष दिवसमांहि सूक्ष्म-बादर जाणतां-अजाणतां हुओ होय, ते सवि मने वचने कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं0 17

एवंकारे श्रावकतणे धर्मे सम्यक्त्व मूळ बार व्रत, एकसो चोवीस अतिचारमांहि अनेरो जे कोइ अतिचार पक्षदिवसमांहि0

तिजयपहुत्त स्तोत्रम्

58

(चतुर्थ स्मरणम्)

तिजयपहुत्तपयासय-अट्ठमहापाडिहेरजुत्ताणं ।
समयक्खित्तठिआणं, सरेमि चक्कं जिणंदाणं ॥1॥

अर्थ

त्रिभुवन के प्रभुत्व को बतानेवाले आठ प्रातिहार्यों से युक्त, ढाई द्वीप में रहे हुए जिनेश्वरों के वृंद का मैं स्मरण करता हूँ ।

पणवीसा य असीआ, पनरस पन्नास जिणवरसमूहो ।
नासेउ सयलदुरिअं, भवियाणं भत्ति जुत्ताणं ॥2॥

अर्थ

पच्चीस, अस्सी, पन्द्रह और पचास इस प्रकार तीर्थंकरों का समूह भक्ति से युक्त भव्य जीवों के समग्र पापकर्मों का नाश करो ।

वीसा पणयाला विय, तीसा पन्नतरी जिणवरिंदा ।
गहभूअरक्खसाइणि-घोरुवसग्गं पणासंतु ॥3॥

अर्थ

बीस, पैंतालीस, तीस तथा पचहत्तर जिनेश्वर गण (तीर्थकरगण) ग्रह भूत, राक्षस और शाकिनी के घोर उपसर्ग का विनाश करो ।

सत्तरि पणतीसा विय, सट्ठी पंचेव जिणगणो एसो ।
वाहि-जल-जलण-हरि-करि-चोरारि महाभयं हरउ ॥4॥

अर्थ

सत्तर, पैंतीस, साठ और पाँच जिनेश्वरों का समूह व्याधि, जल अथवा ज्वर, अग्नि, सिंह, हाथी, चोर और शत्रु संबंधी घोर भयों को दूर करो ।

पणपन्ना य दसेव य, पन्नट्ठी तह य चेव चालीसा ।
रक्खंतु मे सरीरं, देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥5॥

अर्थ

पचपन, दस, पैंसठ और चालीस सिद्ध बने हुए तीर्थंकर जो देवों और असुरों के द्वारा नमस्कृत हैं । (देवों और असुरों के द्वारा जिन्हे प्रणाम किया गया है) वे मेरे शरीर की रक्षा करों ।

ॐ ह र हुं हः स र सुं सः, ह र हुं हः तहय चेव सरसुंसः ।
आलिहिय नामगब्भं, चक्कं किर सव्वओभद्दं ॥6॥

अर्थ

ॐ ह र हुं हः तथा स र सुं सः और पुनः ह र हुं हः तथा स र सुं सः नामक मंत्र के बीजाक्षर सहित मध्य में साधक का नाम लिखा है ऐसा यह सर्वतोभद्र नामक यंत्र होता है ।

ॐ रोहिणि पन्नत्ति, वज्जसिंखला तह य वज्जअंकुसिआ ।
चक्केसरि नरदत्ता, कालि महाकालि तह गोरी ॥7॥
गंधारी महज्जाला, माणवि वइरुट्ट तह य अच्छुत्ता ।
माणसि महमाणसिआ, विज्जादेवीओ रक्खंतु ॥8॥

अर्थ

उस यंत्र में ॐ (प्रणवबीज) ह्रीँ (मायाबीज) और श्रीँ (लक्ष्मीबीज) इन तीन मंत्रबीज के साथ सोलह देवियों के नाम इस प्रकार लिखें :-

(1) रोहिणी, (2) प्रज्ञाप्ति, (3) वज्रशृंखला, (4) वज्रांकुशी, (5) चक्रेश्वरी, (6) नरदत्ता, (7) काली, (8) महाकाली, (9) गौरी, (10) गांधारी, (11) महाज्वाला, (12) मानवी, (13) वैरोट्या, (14) अच्छुप्ता, (15) मानसी, और (16) महामानसिका । ये सभी विद्यादेवियाँ रक्षा करो ।

पंचदसकम्मभूमिसु उप्पन्नं सत्तरि जिणाण सयं ।
विविहरणाइवन्नो-वसोहिअं हरउ दुरिआइं ॥9॥

अर्थ

(पाँच भरत, पाँच ऐरवत और पाँच महाविदेह-इस प्रकार) पन्द्रह कर्म भूमियाँ हैं । उनमें उत्कृष्ट कालमें (अर्थात् श्री अजितनाथ के कालमें) एक सौ और सत्तर जिनेश्वर हुए । (एक महाविदेह की बत्तीस विजय होने से पाँच महाविदेह की एक सौ साठ विजय में एक एक तीर्थंकर होने से एक सौ साठ तीर्थंकर होते हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरवत के कुल दस मिलने से 170 होते हैं । उन सब की यहाँ स्तुति की गई है ।)

अर्थात् पन्द्रह कर्मभूमियों में उत्पन्न विविध रत्नादि के वर्ण द्वारा शोभित एक सौ सत्तर जिनेश्वर हमारे पापों का नाश करो ।

चउतीसअइसयजुआ, अट्ठमहापाडिहेरकयसोहा ।
तित्थयरा गयमोहा, झाएअव्वा पयत्तेणं ॥10॥

अर्थ

चौंतीस अतिशयों से युक्त, अष्ट महाप्रातिहार्यो से शोभित तथा मोहरहित तीर्थंकरगण आदरपूर्वक ध्यान करने योग्य हैं ।

ॐ वकणयसंखविद्दुम-मरगयघणसन्निहं विगयमोहं ।
सत्तरिसयं जिणाणं, सव्वामरपूइअं वंदे स्वाहा ।।11।।

अर्थ

श्रेष्ठ स्वर्ण, शंख, मूँगे, नीलम और मेघ समान वर्णवाले, मोह रहित और सर्व देवों से पूजित एक सौ सत्तर जिनेश्वरों को मैं वन्दन करता हूँ। (यहाँ प्रारंभ में जो `ओंकार' शब्द लिखा है वह परमेष्ठीवाचक है। तथा अन्त में जो `स्वाहा' शब्द लिखा है वह देवों को हवि देने के समय बोला जाता है-ऐसा सर्वत्र समझे)।

ओं भवणवइवाणवंतर-जोइसवासी विमाणवासी अ ।
जे के वि दुट्ठदेवा, ते सव्वे उवसमंतु मम, स्वाहा ।।12।।

अर्थ

भुवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों देवनिकाय में जो कोई भी दुष्ट अर्थात् शासन के द्वेषी देव हों वे सभी मुझ पर उपशांत हो, मुझ पर विघ्न न करें।

चन्दणकप्पूरेणं, फलए लिहिऊण खालिअं पीअं ।
एगंतराइगहभूअ-साइणिमुग्गं पणासेइ ।।13।।

अर्थ

चंदन और कर्पूर द्वारा काष्टपट्ट पर यह यंत्र आलेखित कर फिर उसे जल द्वारा धोकर वह जल पीने से एकांतरिक ज्वर, ग्रह, भूत, शाकिनी और मोगक तथा उपलक्षण से अन्य भी रोग और भूतादि के आवेश का सर्वथा नाश होता है ।

इय सत्तरिसयं जंतं, सम्मं मंतं दुवारि पडिलिहिअं ।
दूरिआरि विजयवंतं, निब्भंतं निच्चमच्चेह ।।14।।

अर्थ

इस प्रकार सम्यक् मंत्ररूप यह पूर्वोक्त एक सौ सत्तर जिनेश्वरों का यंत्र द्वार के बीच लिखा हो तो वह कष्ट और शत्रु का (विजयवंत+) विनाश करता है। अतः हे भव्यजनो ! संदेह रहित होकर आप उसका निरन्तर (नित्य) पूजन करों।

5 नमिऊण स्तोत्रम्

(पंचम स्मरणम्)

नमिऊण पणयसुरगण-चूडामणिकिरणरंजिअं मुणिणो ।
चलण-जुअलं महाभय-पणासणं संथवं वुच्छं ।।1।।

अर्थ

नमस्कार करते हुए देवसमूह के मुकुटों में लगी हुई मणिओं की किरणों से श्रीपार्श्वनाथ मुनीश्वर के जो दोनों चरण रंजित हैं उन्हें नमस्कार करके महा भय का नाश करने वाला यह स्तोत्र मैं कहता हूँ ।।1।।

सडियकरचरणनहमुह निबुड्डनासा विवन्नलायन्ना ।
कुट्ठ महारोगानल-फुलिंग निदड्ढसव्वंगा ।।2।।

अर्थ

जिनके हाथ, पाँव, नाखून और मुख सड़ गए हों, जिनकी नासिका बैठ गई हो, जिनका लावण्य नष्ट हो गया हो और जिनके सर्व अंग कोढ नामक महारोग रूपी अग्नि के कणों से जल गए हों ।।2।।

ते तुह चलणाराहण-सलिलंजलिसेय वुड्ढियच्छाया ।
वणदवदड्ढगिरिपा-यवव्व पत्ता पुणो लच्छिं ।।3।।

अर्थ

हे भगवान् ! वे मनुष्य आपके चरणकमल की आराधना रूपी जल अंजलि के सिंचन से अधिक कांतिवाले होकर वन के दावानल से जले हुए पर्वत के वृक्षों की भाँति पुनः आरोग्य-कांति प्राप्त करते हैं ।।3।।

दुव्वायखुभियजलनिहि-उब्भडक़ल्लोलभीसणारावे ।
संभंतभयविसंठुलग-निज्जामयमुक्कवावारे ।।4।।
अविदलिअजाणवत्ता, खणेवा पावंति इच्छियं कूलं ।
पासजिणचलणजुअलं, निच्चं चिअ जे नमंति नरा ।।5।।

अर्थ

उग्र वायु द्वारा क्षुब्ध बने हुए, उत्कट तरंगों से भयंकर गर्जना करते

हुए (समुद्र में) संभ्रान्त एवं भय से विह्वल बने जिन कप्तानों ने जहाज चलाने का कार्य छोड़ दिया है ऐसे समुद्र में जो मनुष्य नित्य श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के चरणयुगल को नमस्कार करते हैं, वे अक्षत कर लेते वाहन सहित क्षणभर में इच्छित समुद्र तट प्राप्त कर लेते हैं ।।4-5।।

खरपवणुद्धूयवणदव-जालावलिमिलियसयलदुमगहणे ।
डज्झंतमुद्धमयवहु-भीसणरवभीसणंमि वणे ।।6।।
जगगुरुणो कमजुअलं, निव्वाविअसयलतिहुअणाभोअं ।
जे संभरंति मणुआ, न कुणइ जलणो भयं तेसिं ।।7।।

अर्थ

प्रचंड वायु द्वारा सर्वत्र फैले हुए दावानल की ज्वाला की श्रेणी द्वारा परस्पर एक रूप बने हुए वन खंडों में जलती हुई मुग्ध हरिणियों के शब्द द्वारा अथवा जलते हुए वन में ज्वाला से आकुल व्याकुल बनी हुई हरिणियों के भीषण आक्रन्द से भयानक दिखाई देते हुए वन में आपत्तिरूपी ताप को शांत करके त्रिभुवन के प्राणियों को जिन जगत्‌गुरु पार्श्वप्रभु ने सुखी किया हैं, उनके चरण युगल का जो लोग सम्यक् प्रकार से स्मरण करते हैं, उन्हें वैसी अग्नि भी भयभीत नहीं करती ।।6-7।।

विलसंतभोगभीसण-फुरिआरुणनयणतरलजीहालं ।
उग्गभूअंगं नवजलय-सत्थहं भीसणायारं ।।8।।
मन्नंति कीडसरिसं दूरपरिछूढविसमविसवेगा ।
तुहनामक्खरफुडसिद्धमंत गुरुआ नरा लोए ।।9।।

अर्थ

हे पार्श्वनाथस्वामी ! इस जगत में जो लोग आपके नाम अक्षर का जाप करके सिद्ध बने हुए मंत्र द्वारा उग्र सर्प का भी विषम विष के वेग का सर्वथा नाश करते हैं भले ही वह सर्प विकस्वर फनों अथवा शरीर से भयंकर हो, उसके नेत्र चंचल और रक्तवर्ण वाले हो, उसकी जिह्वा चपल हो, नवीन मेघ समान श्याम हो तथा उसका आकार भयंकर दिखाई देता हो, तो भी वे उसे कीट समान समझते हैं ।।8-9।।

अडवीसुभिल्लतक्कर-पुलिंदसद्दुलसद्दभीमासु ।
भयविहुर वुन्नकायर-उल्लूरिय पहिय सत्थासु ।।10।।
अविलुत्तविहवसारा, तुह नाह पणाममत्तवावारा ।
ववगय विग्घा सिग्घं, पत्ताहिअइच्छिअं ठाणं ।।11।।

अर्थ

हे नाथ ! पल्लीवासी भीलों, चोरों अन्य प्रकार के भीलों, और सिंह के भयंकर शब्दों से तथा भय से विह्वल बने हुए, दु:खित तथा कायर बने हुए पथिकों के समूह जिनमें लूटे गए हैं ऐसे जंगलों में मात्र आपको प्रणाम करनेवाले लोग वैभव को लुटाए बिना विघ्नरहित शीघ्र ही इच्छित स्थान पर पहुँचे हैं ।।10-11।।

पज्जलिआनलंनयणं, दूर वियारियमुहं महाकायं ।
नहकुलिस-घाय-विअलिअ-गइंद-कुंभत्थलाभोअं ।।12।।
पणय-ससंभम-पत्थिव-नहमणिमाणिक्क-पडिअपडिमस्स ।
तुह वयण-पहरणधरा, सीहं कुद्धं पि न गणंति ।।13।।

अर्थ

हे पार्श्वनाथ प्रभु ! आपके नखरुपी मणि और माणिक्य में आदरपूर्वक नमस्कार करते हुए राजाओं के प्रतिबिम्ब पड़े हैं ऐसे आपके वचनरुपी शस्त्र को धारण करने वाले मनुष्य, प्रज्वलित अग्नितुल्य नेत्रवाले, अत्यन्त विस्तीर्ण मुखवाले, विशाल काय, नखरुपी वज्र के प्रहार द्वारा गजेन्द्र के मस्तकों को चीर डालने वाले और क्रुद्ध सिंह को भी नहीं गिनते ।।12-13।।

ससि-धवलदंत-मुसलं दीहकरुल्लाल-वुड्ढिउच्छाहं ।
महुपिंग-नयणजुअलं, ससलिल-नवलहरारावं ।।14।।
भीमं महागइंदं, अच्चासन्नंपि ते न वि गणंति ।
जे तुम्ह चलणजुअलं, मुणिवइ तुंगं समल्लीणा ।।15।।

अर्थ

हे मुनिपति श्री पार्श्वनाथ स्वामी ! जो आपके उन्नत चरण युगल में लीन बने हैं वे लोग चन्द्र सदृश उज्ज्वल दंतशुल वाले, लम्बी सूंढ के

उछालने से वृद्धिंगत उत्साह से मधु सदृश पीले नेत्रवाले और जल से भरे हुए नवीन मेघ जैसी गर्जना करते हुए और अत्यन्त निकट आए महा भयंकर गजेन्द्र को भी नहीं गिनते अर्थात् उसकी भी परवाह नहीं करते ।।14-15।।

समरंमि तिक्खखग्गा-भिग्घायपविद्धउद्धुयकबंधे ।
कुंतविणिभिन्न-करि कलह-मुक्क सिक्कार पउरम्मि ।।16।।
निज्जिअ-दप्पुद्धररिउ-नरिंद निवहा भडा जसं धवलं ।
पावंति पावपसमिण, पासजिण ! तुहप्पभावेण ।।17।।

अर्थ

पाप का नाश करनेवाले हे पार्श्व जिन ! जिस समरांगण में तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से मस्तक रहित बने हुए धड़ नृत्य करते हों और भालों से भेदे गए हाथी के बच्चों द्वार किये गए चित्कार शब्द से व्याप्त हो, ऐसे रणसंग्राम में आपका स्मरण करने वाले सुभट आपके प्रभाव से अहंकार द्वारा गर्विष्ठ बने हुए शत्रुराजाओं को जीत कर उज्ज्वल यश प्राप्त करते हैं ।।16-17।।

रोग जल जलण विसहर-चोरारिमइंद गयरणभयाइं ।
पासजिण नाम संकित्तणेण पसमंति सव्वाइं ।।18।।

अर्थ

श्री पार्श्वनाथस्वामी के नाममात्र का स्मरण करने से रोग, जल, अग्नि, सर्प, चोर, सिंह, हाथी और संग्राम संबंधित भय नष्ट होते हैं । **(ॐ ह्रीँ नमिऊण पास विसहर वसह फुलिंग रोग जल जलण विसहर चोरारि मइंद गयरण भयाइं-पसमंति मम स्वाहा)**'' यह महा मंत्र इस स्तवन में अलग अलग अक्षरों से बना हुआ है ।।18।।

एवं महाभयहरं, पासजिणिंदस्स संथवमुआरं ।
भवियजणाणंदयरं, कल्लाणपरंपरनिहाणं ।।19।।
रायभयजक्खरक्खस-कुसुमिण दुस्सउण रिक्ख पीडासु ।
संझासु दोसु पंथे, उवसग्गे तह य रयणीसु ।।20।।
जो पढइ जो अ निसुणइ, ताणं कइणो य माणतुंगस्स ।
पासो पावं पसमेउ, सयलभुवणच्चियचलणो ।।21।।

अर्थ

इस प्रकार श्रीपार्श्वनाथ का यह उदार स्तवन महाभय का हरण करनेवाला, भव्यजनों को आनंद देने वाला और कल्याण की परम्परा का निधानरूप है। राजभय, यक्षभय तथा राक्षसभय, कुस्वप्नभय तथा दुष्ट शकुनभय और नक्षत्र एवं ग्रह राशि आदि की पीड़ा के समय प्रातः और सायं दोनों संध्या समय, अरण्यादि विषम मार्ग में, उपसर्ग के समय तथा रात्रि में जो व्यक्ति यह स्तवन पढ़ता है तथा सावधान होकर सुनता है उसके तथा मानतुंग नामक कवि के पाप को समग्र जगत् के जीवों द्वारा पूजित चरणवाले श्री पार्श्वनाथ स्वामी नष्ट करो ।।19-20-21।।

उवसग्गंते कमठा-सुरम्मि झाणाओ जो न संचलिओ ।
सुरनरकिन्नरजुवइहिं, संथुओ जयउ पासजिणो ।।22।।

अर्थ

कमठासुर के उपसर्ग से जो प्रभु ध्यान से चलित नहीं हुए, वे देव, मनुष्य और किन्नर की स्त्रियों द्वारा स्तुति किये हुए श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर जयवंत हों ।।22।।

एअस्स मज्झयारे, अट्ठारसअक्खरेहिं जो मंतो ।
जो जाणइ सो झायइ, परमपयत्थं फुडं पासं ।।23।।

अर्थ

इस स्तवन के मध्य **'नमिऊण पास विसहर वसह जिन फुलिंग'** इन अठारह अक्षरों से बना हुआ चिन्तामणि नामक गुप्त मंत्र रहा हुआ है। उस मंत्र को जो जानता है वह मनुष्य परम पद को प्राप्त किए हुए श्री पार्श्वनाथ का प्रगट रूपसे ध्यान करता है-मंत्र द्वारा प्रभु का ध्यान करता है-ऐसा जाने ।।23।।

पासह समरण जो कुणइ, संतुट्ठ हिययेण ।
अट्ठुत्तरसयवाहिभय, नासइ तस्स दूरेण ।।24।।

अर्थ

जो व्यक्ति (संतुष्ट) स्थिर चित्त से श्री पार्श्वनाथ स्वामी का स्मरण करता है उसके एक सौ और आठ व्याधि के भय दूर से ही नष्ट होते है ।।24।।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

भक्तामर स्तोत्रम्

60

(सप्तम स्मरण)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा,
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम् ।।1।।

अर्थ

भक्तिवाले देवों के झुके हुए मुकुटों में जडी हुई मणियों की कांति को प्रकाशित करनेवाले और युग की आदि में संसार-समुद्र में गिरते हुए भव्य जीवों के आधारभूत श्री जिनेश्वर के चरणयुगल को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके ।।1।।

यः संस्तुतः सकलवाङ्मय तत्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय चित्तहरै-रुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।2।।

अर्थ

जिन जिनेश्वर की समग्र शास्त्र के रहस्य के बोध से उत्पन्न हुई बुद्धि से कुशल देवेन्द्रों द्वारा तीन जगत के जीवों के चित्त को हरण करने वाले मनोहर और उदार श्रेष्ठ अर्थ वाले स्तोत्रों से स्तुति की गई है, उन प्रथम जिनेश्वर श्री ऋषभदेव स्वामी की मैं भी स्तुति करूँगा ।।2।।

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।।3।।

अर्थ

देवों अथवा पंडितों द्वारा पूजित है पादपीठ जिनके ऐसे हे प्रभु ! आपकी स्तुति करने के लिये मेरे पास कुछ भी बुद्धि नहीं फिर भी निर्लज्ज

होकर आपकी स्तुति करने के लिये मेरी मति उद्यमशील हुई है। (इस संबंध में द्रष्टांन्त देते है कि जलमें प्रतिबिम्ब रूप में पड़े हुए चन्द्र के बिम्ब को सहसा बिना सोचे पकड़ने के लिये बालक के सिवाय अन्य कौन व्यक्ति इच्छा करता है। उसी प्रकार मैं भी बालक की भाँति अशक्त होते हुए भी आपकी स्तुति करने का इच्छुक हूँ) ।।3।।

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशांककांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनो द्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ।।4।।

अर्थ

हे गुण के सागर प्रभु ! बुद्धि द्वारा बृहस्पति जैसा भी कौन विद्वान् आपके चन्द्र जैसे मनोहर गुणों का वर्णन करने में समर्थ हो सकता है। वायु से मगरमच्छों के समूह जिसमें उछल रहे हों ऐसे महासागर को अपनी दो भुजाओं से कौन व्यक्ति तैर कर पार कर सकता है ? जिस प्रकार ऐसे समुद्र में तैरना अशक्य है उसी प्रकार आपके गुणों का वर्णन करना भी अशक्य है ।।4।।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।।5।।

अर्थ

हे प्रभो ! मैं शक्ति रहित होते हुए भी आपके प्रति रही भक्ति के कारण आपकी स्तुति करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। जिस प्रकार मृग अपना बल सोचे बिना ही मात्र बच्चे के प्रति प्रीति के कारण उस बच्चे का रक्षण करने के लिये क्या सिंह के सामने नहीं जाता है ?

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ।।6।।

अर्थ

हे स्वामी ! मैं अल्पज्ञ हूँ, अतः विद्वानों में मैं हँसी का पात्र हूँ तो भी आपके प्रति रही भक्ति ही मुझे जबरन आपकी स्तुति करने के लिये वाचाल करती है जो योग्य ही है, क्यों कि बसन्त ऋतु में (चैत्र माह में) कोयल जो मधुर शब्द करती है उसका कारण मात्र मनोहर आम की मंजरी का समूह ही है। अर्थात् आम्र की मंजरी खाने से कोयल मधुर स्वर में बोलती है, उसी प्रकार मैं भी आपकी भक्ति के कारण आपकी स्तुति करता हूँ। ।।6।।

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।7।।

अर्थ

आपकी स्तुति करने से तत्काल करोड़ों भवों में उपार्जित पाप नष्ट होते है जिस प्रकार लोक में व्याप्त भ्रमर के समान काला अंधकार, प्रातःकाल में सूर्य की किरणों से तत्काल नष्ट हो जाता है (अर्थात् जैसे सूर्योदय अंधकार के नाश का कारण है उसी प्रकार जिनेश्वर की स्तुति पाप के नाश का कारण है) ।।7।।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ।।8।।

अर्थ

हे नाथ ! (ऊपर कथनानुसार आपकी स्तुति करना कठिन है तथा सभी पापों का नाश करने वाली है) ऐसा मानकर आपका यह स्तोत्र मुझ जैसे अल्प बुद्धिवाले द्वारा रचने का आरंभ किया जाता है। वह आपके प्रभाव से सत्पुरुषों के मन का रंजन करेगा, क्यों कि कुमुदिनी के पत्र पर पड़ा हुआ जलबिन्दु मोती की शोभा प्राप्त करता है ।।8।।

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।

दूरे सहस्त्रकिरण: कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ।।9।।

अर्थ

हे स्वामिन् ! समग्र दोष का नाश करने वाला आपका स्तवन तो दूर रहो, परन्तु मात्र आपकी इस भव और परभव के चरित्र की कथा अथवा आपका नाम ही तीनों जगत के प्राणियों के पापों का नाश करती है जिस प्रकार अत्यन्त दूर होने पर भी सूर्य की प्रभा सरोवर के कमलों को विकसित करती है ।।9।।

नात्यद्भूतं भुवनभूषणभूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवंतमभिष्टुवन्त: ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।10।।

अर्थ

जगत के आभूषण समान हे नाथ ! इस पृथ्वी पर आपके वास्तविक गुणों से स्तुति करने वाले प्राणी भी आप जैसे हो जाते हैं इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं है, क्यों कि इस जगत् में जो स्वामी अपने सेवक को समृद्धि द्वारा अपने समान नहीं करते ऐसे स्वामी से क्या ? ।।10।।

दृष्टवा भवंतमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु: ।
पीत्वा पय: शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धो:,
क्षारं जलं जलनिधेरशितुं क इच्छेत् ? ।।11।।

अर्थ

हे प्रभु ! अनिमेष दृष्टि से निरन्तर दर्शन योग्य आपको देखने के बाद मनुष्य की आँखें अन्यत्र संतुष्ट नहीं होती । चन्द्र की किरणों के समान कांतिमय (उज्ज्वल) क्षीर समुद्र का जल पीने के बाद फिर लवणसमुद्र के खारा पानी को पीने की कौन इच्छा करेगा ? ।।11।।

यै: शान्तरागरुचिभि: परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितास्त्रिभुवनैकललामभूत,

तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।12।।

अर्थ

त्रिभुवन के अद्वितीय अलंकार तुल्य हे प्रभु ! शांत रस की कांतिवाले जिन परमाणुओं द्वारा आप उत्पन्न हुए हो (आपका शरीर बना है) वे परमाणु इस विश्व में उतने ही थे, क्यों कि आपके समान अन्य किसी का रूप दिखाई नहीं देता है ।।12।।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपालशकल्पम् ।।13।।

अर्थ

हे प्रभु ! देव, मानव और नागकुमार के नेत्रों को हरनेवाला तथा त्रिजगत में रही हुई सभी उपमाओं को जीतने वाला आपका मुख कहाँ ? और कलंक से मलिन बना हुआ चन्द्र का बिम्ब कहाँ ? जो चन्द्र बिम्ब प्रातः पलास के पत्ते की तरह फीका हो जाता है ।।13।।

संपूर्णमण्डल शशाङ्ककलाकलाप
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।।14।।

अर्थ

हे नाथ ! पूर्णिमा के चन्द्र की सम्पूर्ण कला के समूह जैसे उज्ज्वल आपके गुण त्रिभुवन को लाँघ जाते हैं (तीनों जगत में व्याप्त हो जाते हैं) जो तीनों जगत के एक ही नाथ के आश्रय रहे हुए हों, उन्हें स्वेच्छापूर्वक विचरण करने से कौन रोक सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं) ।।14।।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि,
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।

कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥15॥

अर्थ

हे निर्विकार प्रभु ! यदि देवांगनाओं द्वारा आपका मन जरा भी विकारग्रस्त नहीं बना तो इसमें आश्चर्य क्या है ? जिस प्रलयकाल की वायु ने पर्वतों को कम्पायमान किया हो, क्या वह वायु मेरु पर्वत के शिखर को चलित कर सकता है ? (तात्पर्य यह है कि प्रलयकाल में सभी पर्वत चलायमान हो जाते हैं परन्तु मेरुपर्वत चलित नहीं होता। उसी प्रकार देवांगनाएँ हरिहरादि देवों के मन में विकार उत्पन्न कर सकती हैं परन्तु प्रभु के मन में विकार उत्पन्न करने में असफल रहती हैं) ॥15॥

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

अर्थ

हे नाथ ! आप लोकोत्तर दीपक समान हो क्योंकि लौकिक दीपक तो धुएँ, बत्ती और तैल आदि से युक्त होता है जब कि आप द्वेष रूपी धुँए से रहित, कामदशा रूपी बत्ती से रहित और स्नेह (राग) रूपी तैल की पूर्ति से रहित हो। (लौकिक दीपक मात्र एक घर को ही प्रकाशित करता है जब कि आप तो सम्पूर्ण जगत को केवलज्ञान द्वारा प्रकट करते हो। लौकिक दीपक वायु से बुझ जाता है परन्तु पर्वतों को भी कम्पायमान करने वाली वायु भी आपको कुछ नहीं कर सकती। इससे जगत में प्रसिद्ध और चारों ओर केवलज्ञान द्वारा प्रकाशित लोकोत्तर दीपक के समान आप हो ॥16॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः ।
सूर्यातिशायि महिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥17॥

अर्थ

हे मुनीन्द्र ! इस विश्वमें आपकी महिमा सूर्य से भी अधिक है । सूर्य तो मात्र दिन में ही उदित होता है जब कि आप तो रात और दिन सर्वदा केवलज्ञान से उदित हैं । सूर्य को राहु ग्रहण करता है परन्तु आप दुष्कृतरूपी राहु से ग्रसित नहीं होते । सूर्य परिमित क्षेत्र को क्रमशः से प्रकट करता है जब कि आप तत्काल एक साथ सम्पूर्ण त्रिजगत को ज्ञानालोक द्वारा (केवलज्ञान से) प्रकट करते हो । सूर्य का प्रभाव मेघ से छूप जाता है परन्तु आपका प्रभाव कर्मरूपी मेघ से अवरुद्ध नहीं होता । इसलिये आपको सूर्य की उपमा देना भी उपयुक्त नहीं है ।।17।।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ।।18।।

अर्थ

हे भगवान् ! आपका मुख कमल अलौकिक चंद्रबिम्ब की तरह सुशोभित है, क्योंकि वह निरन्तर उदय पानेवाला है । जबकि चंद्र तो प्रातः काल में अस्त हो जाता है ।) आपका मुख मोहनीय कर्मरूपी महा अंधकार का नाश करता है । (चन्द्र तो अल्प अंधकार का नाश करने में भी समर्थ नहीं) राहु जैसे दुष्टवादियों के वाद आपके मुख का पराभव नहीं कर सकते (राहु चन्द्र को निगल जाता है) आपका मुख मेघ समान दुष्ट अष्टकर्म के अधीन नहीं है । (चन्द्र को तो मेघ आच्छादित कर देते है) आपका मुख अत्यन्त कांतिमय है । (चन्द्र का बिम्ब तो अल्प कांतिवाला है क्योंकि कृष्ण पक्ष में उसका क्षय हो जाता है) तथा आपका मुख जगत को प्रकाशित करता है । जब कि चन्द्र तो पृथ्वी के अल्प प्रदेश को भी प्रकाशित करने में समर्थ नहीं है ।।18।।

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु तमस्सु नाथ ?
निष्पन्न-शालि-वन शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ।।19।।

अर्थ

हे नाथ ! आपके मुखचंद्र द्वारा समस्त अंधकार (पाप) का नाश होता है तब रात्रि में चन्द्र के उदय का क्या प्रयोजन ? अथवा दिन में सूर्योदय का क्या अर्थ ? जैसे पके हुए शालि (धान्य) के वन द्वारा पृथ्वी सुशोभित होने के बाद पानी के बोझ से नम्र हुए बादलों का क्या काम है ? (अर्थात् जैसे तृण, लता और धान्यादि के पक जाने के बाद मेघ मात्र कीचड़ आदि कष्ट का कारण होने से निष्फल है, उसी प्रकार आपके मुखचन्द्र द्वारा पापरूपी अंधकार के नष्ट होने के बाद चन्द्र और सूर्य मात्र शीतलता और उष्णता के कारण होने से निष्फल हैं) उनका फिर क्या प्रयोजन है अर्थात् कुछ भी नहीं ।।19।।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणा-कुलेऽपि ।।20।।

अर्थ

हे प्रभु ! अनंत पर्यायवाली वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान (केवलज्ञान) जैसा आपके पास सुशोभित होता है वैसा हरि (विष्णु) हर (महादेव) तथा ब्रह्मा-बुद्ध आदि देवों में सुशोभित नहीं होता । जैसे चाहे जैसा तेजस्वी काँच का टुकडा हो परन्तु देदीप्यमान (वज्र, वैडूर्य, पद्मराग और इन्द्रनील आदि) मणिओं के प्रकाश की तुलना में उसका कुछ भी गौरव नहीं होता, उसी प्रकार आपके ज्ञान की तुलना में उनके ज्ञान का कुछ भी गौरव नहीं है ।।20।।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं-त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ।।21।।

अर्थ

हे नाथ ! आपके दर्शन करने से पहले मैंने हरिहरादि देवों के दर्शन करके अच्छा ही किया-ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि इन देवों को देखने के बाद अब मेरा मन आपमें ही सन्तुष्ट होता है । आपके दर्शन से मुझे यह लाभ हुआ कि अब इस

जगत् में अन्य जन्म में भी कोई अन्य देव मेरे मन को नहीं हर सकेगा । ॥21॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिम्,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥22॥

अर्थ

हे नाथ ! इस जगत में सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं परन्तु मरुदेवा जैसी माताएँ ही आप जैसे तीर्थंकर पुत्र को जन्म देती हैं । अन्य किसी स्त्री ने आप जैसे पुत्र को जन्म नहीं दिया । वास्तव में सभी दिशाएँ नक्षत्रों को धारण करती हैं परन्तु देदीप्यमान सूर्य को तो एक मात्र पूर्व दिशा ही जन्म देती है ॥22॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस,
मादित्य-वर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र । पन्थाः ॥23॥

अर्थ

हे मुनीश्वर ! मुनिजन आपको परम पुरुष कहते हैं । आप सूर्य समान स्वयं तेजस्वी हो और अमल अर्थात् रागद्वेषरूपी मल से रहित हैं तथा पापरूपी अंधकार से दूर हो । आपको अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा प्राप्तकर सभी प्राणी मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं ऐसा प्रशस्त (उपद्रव रहित) मोक्षस्थान प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है ॥23॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यम-सङ्ख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग-केतुम् ।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं,
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥24॥

अर्थ

हे भगवन् ! संतजन आपको भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं जैसे : 1) अव्यय, 2) विभु, 3) अचिंत्य, 4) असंख्य, 5) आदि पुरुष,

6) ब्रह्मा, 7) ईश्वर, 9) अनंग-केतु कामदेव विजेता, 10) योगीश्वर, 11) विदितयोग, 12) अनेक, 13) एक, 14) ज्ञानमय, 15) निर्मल आदि ।।24।।

अरिहंत के पर्याय वाचक नामों के अर्थ निम्न प्रकार से बताए हैं :-

1) अव्यय : सर्व काल में (एक) स्थिर स्वभाववाले होने से हानि और वृद्धि से रहित है ।

2) विभु : ऐश्वर्य से सुशोभित है ।

3) अचिन्त्य : महान् योगीजन भी आपका पूर्णतः चिन्तन करने में असमर्थ है ।

4) असंख्य : आपके गुण संख्या रहित हैं अर्थात् अनन्त हैं अथवा असंख्य हृदयों में विराजमान होने के कारण असंख्य नाम सार्थक है, अथवा गुणों से और काल से प्रभु की संख्या नहीं हो सकती अतः असंख्य है ।

5) आद्य : लोक व्यवहार की आदि में होने से आद्य हैं अथवा पंच परमेष्ठि में प्रथम होने से आद्य हैं अथवा (चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम होने से आद्य हैं) सभी तीर्थंकर स्व तीर्थ की आदि करने वाले होने से आद्य हैं ।

6) ब्रह्मा : हे भगवन् ! आप ब्रह्मा कहलाते हैं । प्रभु धर्म सृष्टि की रचना करते हैं ।

7) ईश्वर : प्रभु तीनों ही लोकों से पूज्य हैं तथा ज्ञानादि ऐश्वर्य धारण करने वाले हैं और सर्व देवों के स्वामी है ।

8) अनंत : प्रभु अनंत ज्ञान-दर्शनमय (अनंत चतुष्क युक्त हैं तथा अंत (मृत्यु) से रहित हैं ।

9) अनंगकेतु : कामदेव का नाश करने में केतु समान अर्थात् जैसे उदित केतु का तारा जगत् का क्षय करता हैं उसी प्रकार भगवान कामदेव का क्षय करने वाले हैं ।

10) योगीश्वर : प्रभु मन, वचन और काया के बिना, योगीजनों के-ईश्वर अथवा सयोगी केवली मान्य होने से ईश्वर हैं ।

11) विदितयोग : योग के ज्ञाता ! प्रभु सम्यग् दर्शन ज्ञान-चारित्रय रूपी योग को जानने वाले है ।

12) अनेक : ज्ञान के कारण सर्व में रहे हुए होने से अनेक अथवा गुण और पर्याय अनेक होने से अनेक अथवा ऋषभादि अनेक व्यक्ति होने से अनेक अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप में होने से अनेक हैं ।

13) एक : अद्वितीय (उत्तम) अथवा एक जीव की अपेक्षा से एक हैं ।

14) ज्ञानस्वरुप : (ज्ञानमय) केवलज्ञान के स्वरूप वाले हैं ।

15) अमल : (निर्मल) अठारह दोषरूपी मलरहित हैं-इस प्रकार सत्पुरुष आपको कहते है ।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिव-मार्ग-विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।।25।।

अर्थ

इन्द्रादि देवों से पूजित हे प्रभु ! पदार्थों में आपकी ही मति का प्रकाश होने से सच्चे बुद्ध आप ही हैं अथवा विबुध (पंडितों) गणधरों द्वारा अर्चित होने से आप ही बुद्ध हैं तथा त्रिजगत् के जीवों को सुखी करने वाले होने से आप ही सच्चे शंकर हैं तथा हे धीर ! रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग का विधान करने से आप ही विधाता (ब्रह्मा) है, तथा हे भगवन् ! आप सर्व पुरुषों में उत्तम हैं । इसीलिये स्पष्ट रूप से पुरुषोत्तम (विष्णु) आप ही हैं । ।।25।।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !।
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल भूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ।।26।।

अर्थ

हे नाथ ! आप अंतः करण द्वारा त्रिभुवन के प्राणियों की पीड़ा हरने वाले हैं इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप क्षिति (पृथ्वी) तल (पाताल) और अमल (स्वर्ग) इस प्रकार त्रिभुवन के अलंकार रूप हैं अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ तथा आप त्रिजगत के उत्कृष्ट स्वामी हैं अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ तथा हे राग द्वेष को जीतनेवाले ! आप संसार समुद्र का शोषण करनेवाले हैं अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।26।।

को विस्मयोऽत्र ? यदि नाम गुणैरशेषै,
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश,

दोषैरुपात्त-विबुधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।।27।।

अर्थ

हे मुनीन्द्र ! यदि कदाचित् समग्र गुणों ने निरन्तर आपका ही आश्रय किया है, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि अन्य देवों में आश्रय प्राप्त होने से गर्विष्ठ बने (रागादि) समग्र दोषों ने कदापि स्वप्न में भी आपको देखा नहीं है ।।27।।

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख,
माभाति रुपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर पार्श्ववर्ति ।।28।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! विकस्वर किरणों वाला और स्वेदादि मल रहित आपका शरीर ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे रहा हुआ है जिससे वह विकस्वर किरणों वाले और अंधकार का नाश करनेवाले बादलों के पास रहे हुए सूर्य-बिम्ब की तरह सुशोभित होता है । ।।28।।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशु-लता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्र-रश्मेः ।।29।।

अर्थ

हे तीर्थपति ! विविध प्रकार के रत्नों की कांति के समूह द्वारा चित्र-विचित्र सिंहासन पर स्वर्ण के समान उज्ज्वल आपका शरीर स्थित है, जो आकाश में देदीप्यमान किरणों के लतामंडप जैसा दिखाई देता है (अथवा जिसकी किरणों की माला का विस्तार आकाश में देदीप्यमान दिखाई देता है) वह ऊँचे उदयाचल पर्वत के शिखर पर स्थित सूर्य के बिम्ब की भाँति सुशोभित होता है । ।।29।।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारुशोभं,
विभ्राजते तव वपुः कल-धौतकान्तम् ।

उद्यच्छशाङ्कशुचि-निर्झर-वारि-धार,
मुच्चैस्तटं सुर-गिरेरिव शात-कौम्भम् ।।30।।

अर्थ

स्वर्ण तुल्य मनोहर भगवान के शरीर के दोनों ओर इन्द्रादि देव मोगरे के पुष्प समान उज्ज्वल चँवर ढुलाते हैं। जिनकी शोभा मनोहर दिखाई देती है मानो स्वर्णमय मेरु पर्वत के ऊँचे शिखर के दोनों ओर उदित होते हुए चन्द्र के समान उज्ज्वल झरने की जलधाराएँ गिरती हों, उस शोभा की तरह प्रभु का शरीर सुशोभित होता है। ।।30।।

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त,
मुच्चैः स्थितं-स्थगित-भानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकरजाल-विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।।31।।

अर्थ

हे प्रभु ! चन्द्र के समान उज्ज्वल आपके मस्तक पर ऊँचे, एक दूसरे के ऊपर धारण किये हुए सूर्य की किरणों के प्रभाव को आच्छादित करनेवाले, मोती के समूह से की गई रचना से विशेषरूप से सुशोभित होते हुए और आपका त्रिजगत् का स्वामित्व सूचित करनेवाले तीन छत्र सुशोभित हैं। ।।31।।

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।।32।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! विकसित सोने के नवीन कमलों के समूह जैसी कांति वाले और चारों ओर प्रसरित होती हुई नख की किरणों की श्रेणी से मनोहर आपके दोनों चरण जहाँ जहाँ आप कदम रखते हैं, वहाँ वहाँ देवतागण कमलों की रचना करते हैं ।।32।।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।

यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ।।33।।

अर्थ

हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेश के समय पहले कही गई आपकी विभूति जैसी होती है वैसी अन्य देवों की नहीं होती क्योंकि सूर्य की कांति जिस प्रकार अंधकार का नाश करती है। उस प्रकार विकसित ग्रहों का समूह भी अंधकार का नाश कैसे कर सकता है ? ।।33।।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल,
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।।34।।

अर्थ

बहते हुए मद के कारण व्याप्त बने हुए चपल और गंडस्थल में मदोन्मत्त होकर मंडराते हुए भ्रमरों के झंकार शब्द से अत्यन्त कुपित बने हुए ऐरावत हाथी के समान विशाल और उद्धत्तता से सम्मुख आते हुए हाथी को देखकर आपके आश्रितों को (भक्तजनों को) लेशमात्र भी भय नहीं होता ।।34।।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त,
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ।।35।।

अर्थ

भेदे हुए हाथी के कुंभस्थल में से गिरे हुए रुधिर से युक्त उज्ज्वल मोती के समूह से पृथ्वी की शोभा बढ़ाने वाले और छलाँग भरने के लिये पाँवों को एकत्रित कर छिपकर तैयार बना हुआ सिंह भी आपके चरण का आश्रय लेनेवाले सेवक को मार नहीं सकता। (अर्थात् सिंह भी पराभव नहीं कर सकता तो अन्य हिंसक प्राणी कहाँ से कर सकते है?) ।।35।।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्फुलिंगम् ।

विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ।।36।।

अर्थ

हे नाथ ! आपका नाम मात्र ही ग्रहण करने से सभी प्रकार का दावानल शांत हो जाता है । वह दावानल प्रलयकाल की वायु द्वारा उद्धत्त बनी हुई अग्नि जैसा हो, देदीप्यमान हो, उसकी ज्वाला ऊँचे आकाशतक पहुँचती हो, उसके अंगारे चारों और फैलते हों, मानो सम्पूर्ण विश्व को निगल जाना चाहता हो तथा सम्मुख आता हो तब भी ऐसे दावानल को आपका नाम तुरन्त शांत कर देता है ।।36।।

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ।।37।।

अर्थ

जिस पुरुष (व्यक्ति) के हृदय में आपकी नामरूपी नाग-दमनी रही होती है वह व्यक्ति, रक्त नेत्रवाले और मन्दोन्मत्त, कोयल के कंठ जैसे श्यामवर्ण वाले, क्रोध से उद्धत्त बने हुए, उन्नत फनवाले तथा सन्मुख आते हुए सर्प को भी शंकारहित होकर अपने दोनों पाँवों से (ऊपर होकर) लाँघ जाता है ।।37।।

वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जित-भीमनाद,
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्,
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।।38।।

अर्थ

युद्ध में दौड़ते हुए घोड़े और हाथियों के गर्जारव तथा योद्धाओं के भयंकर सिंहनाद शब्द हैं जिसमें अथवा युद्ध करते हुए घोड़ों और हाथियों की गर्जन से जिसमें भयंकर शब्द होते हैं ऐसे बलवान राजाओं का सैन्य, आपका नाम-स्मरण करने से ही उदित होते हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग द्वारा भिदे हुए अंधकार की तरह तत्काल नष्ट हो जाता है ।।38।।

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह,
वेगावतार-तरणातुरयोध-भीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा,
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ।।39।।

अर्थ

भाले के अग्रभाग से भिदे हुए हाथियों के रुधिररूपी प्रवाह में तेजी से प्रवेश कर उसे पार करने के लिये व्याकुल बने हुए वीरों से भयंकर युद्ध में, आपके चरण कमलरूपी वन का आश्रय करने वाले मनुष्य दुर्जय शत्रुओं को पराजित कर विजयी होते हैं ।।39।।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र,
पाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थित-यानपात्रा,
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।।40।।

अर्थ

हे स्वामिन् ! भयंकर मगरमच्छों के समूह से क्षुब्ध और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि वाले समुद्र में, जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित है ऐसे जहाज वाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भय रहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँच जाते हैं ।।40।।

उद्भुतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कज-रजोमृत-दिग्धदेहाः
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ।।41।।

अर्थ

भयंकर जलोदर के भार से झुके हुए, शोक करने योग्य अवस्था को प्राप्त और जीने की आशा नष्ट हो चुकी है ऐसे लोग भी आपके चरण कमल की रज रूपी अमृत को अपने शरीर पर लगाने से कामदेव जैसे रूपवान् बन जाते हैं । अर्थात् व्याधिरहित होकर मनोहर रूपवाले बनते हैं ।।41।।

आपाद-कण्ठमुरुशृङ्खल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घा ।
स्त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥42॥

अर्थ

जिनके शरीर, पाँव से मस्तक तक बड़ी बड़ी जंजीरों से बँधे हुए हों और जिनकी जाँघे बेड़ियों के अग्र भाग द्वारा बुरी तर घिसती हों ऐसे मनुष्य भी हे स्वामी ! आपके नामरूपी मंत्र का (ॐ ऋषभाय नमः) स्मरण करने से तत्काल स्वतः ही बंधन से मुक्त हो जाते हैं ॥42॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि,
सङ्ग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥43॥

अर्थ

जो बुद्धिमान् लोग आपके इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करते हैं, उनका (1) मदोन्मत्त हाथी (2) सिंह (3) दावानल (4) सर्प (5) युद्ध (6) समुद्र (7) जलोदर और (8) बंधन इन आठ से उत्पन्न भय स्वतः ही मानो दूर भाग जाता हो, नष्ट हो जाता हो, उसी प्रकार शीघ्र नष्ट हो जाता है । ॥43॥

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्त्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥44॥

अर्थ

हे जिनेश्वर ! मेरे द्वारा (मानतुंगसूरि द्वारा) भक्ति पूर्वक पूर्वोक्त ज्ञानादि गुणों से रचित तथा मनोहर अक्षर रूपी विचित्र पुष्प वाली आपकी इस स्तोत्रमाला को जगत् में जो मनुष्य हमेशा कंठ में धारण करता है (अर्थात् मुखपाठ करता है) उस चित्त की उन्नति वाले व्यक्ति को (अथवा मानतुंगसूरि को) उसके गुण से वशीभूत बनी मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥44॥

श्री कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्

कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि,
भीताभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम् ।
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ।।1।।
यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृतमति र्न विभुर्विधातुम् ।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतो,
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।2।। युग्मम्

अर्थ

कल्याण के निवास गृह, उदार (भव्य प्राणियों को वांछित देने से उदार) पाप का क्षय करनेवाले, भयग्रस्त को अभय देने वाले अथवा संसार से त्रस्त जीवों को मोक्ष देने वाले, लेशमात्र भी दोष न होने से अनिन्दित प्रशस्य, तथा संसार सागर में डूबते हुए सभी प्राणियों के लिये नौका समान तीर्थंकर के चरण कमल को नमस्कार करके महिमा के समुद्ररूप जिन पार्श्वनाथ की स्तुति करने के लिये अति तीक्ष्ण बुद्धिवाला बृहस्पति भी समर्थ नहीं । जो पार्श्वनाथ कमठ नामक असुर के गर्व का नाश करने में धूमकेतु (पुच्छल) तारें रूप है, उनकी स्तुति करने के लिये मैं तैयार हुआ हूँ । ।।1-2।।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरुप,
मस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिकशिशुर्यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ।।3।।

अर्थ

हे स्वामी ! सामान्यतः भी आपका स्वरूप कहने के लिये मुझ जैसे मंदबुद्धि वाले कैसे समर्थ हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते । जिस प्रकार दिन में अंधा उल्लू का बच्चा चाहे जितना धृष्ट हो फिर भी वह सूर्य का स्वरूप कह सकता है ? अर्थात् नहीं कह सकता । (कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे

उल्लू का बच्चा चाहे जितना वाचाल और चतुर हो तो भी दिन में अंधा होने के कारण वह सूर्य के स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता । उसी प्रकार मैं भी मंद बुद्धिवाला होने से प्रभु के स्वरूप का वर्णन करने में असमर्थ हूँ ।।3।।

मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत ।
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधे र्ननु रत्नराशिः ।।4।।

अर्थ

हे नाथ ! मोहनीय कर्म के क्षय से प्राप्त केवलज्ञान द्वारा आपके गुणों का जो व्यक्ति अनुभव करता है, वह जानते हुए भी आपके गुणों की गणना करने में समर्थ नहीं । जिस प्रकार कल्पान्त काल में समुद्र का पानी उछलने से उसमें निहित रत्नों का समूह प्रगट रूप से दिखाई देने पर भी किसी के द्वारा उसकी गिनती नहीं की जा सकती ।।4।।

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ।।5।।

अर्थ

हे नाथ ! मैं जड़ बुद्धिवाला होने पर भी देदीप्यमान असंख्य गुणों के स्थान रूप आपका स्तोत्र करने के लिये प्रयत्नशील बना हूँ । जैसे बालक अपने दोनों हाथ फैलाकर, इतना बड़ा समुद्र है, इस प्रकार कहकर समुद्र का विस्तार बताता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्ति के अनुसार स्तुति करने के लिये उद्यमशील हुआ हूँ जो उपयुक्त ही है ।।5।।

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश,
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ।
जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं,
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ।।6।।

अर्थ

हे स्वामी ! आपके जिन गुणों का वर्णन करने में योगी भी समर्थ नहीं हैं, उन गुणों का वर्णन करने के लिये मुझ में शक्ति कहाँ से ? इसलिये इस प्रकार मैंने जो यह स्तुति करने का प्रयास किया है वह बिना सोचे किया है अथवा पक्षीगण भी अपनी भाषा में बोलते ही हैं । जिस प्रकार पक्षीगण मनुष्य की भाँति सुन्दर रीति से बोल नहीं सकते, फिर भी उन्हें जो बोलना होता है वे अपनी अपनी भाषा में बोलते हैं, उसी प्रकार मैं भी जैसा आता है वैसा ही बोलता-हूँ इसमें कुछ अनुपयुक्त नहीं है ।।6।।

आस्तामचिन्त्यमहिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ।
तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे,
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ।।7।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! आपके स्तोत्र की महिमा अचिन्त्य है वह तो दूर रहो परन्तु मात्र आपका नाम भी त्रिजगत के प्राणियों की भव भ्रमण से रक्षा करता है, जैसे ग्रीष्मऋतु में तीव्र गर्मी से व्याकुल बने हुए पथिकजनों को पद्मसरोवर का ठंडा पवन अत्यन्त प्रसन्न करता है । (तब सरोवर का जल और उसमें उत्पन्न कमल प्रसन्न करें इसमें क्या आश्चर्य है ? उसी प्रकार आपके नाममात्र ग्रहण करने से ही प्राणियों का भवभ्रमण दूर होता है तो आपकी स्तुति करने से भवभ्रमण दूर हो तो इसमें ही आश्चर्य क्या है ?) ।।7।।

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबंधाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्यभाग,
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ।।8।।

अर्थ

हे विभु ! जिस प्रकार वन का मोर जब वन के मध्य भाग में आता है तब चंदन वृक्ष पर रहे सर्प के बंधन तत्काल शिथिल हो जाते हैं उसी प्रकार आप जब हृदय में आसीन होते हैं तब प्राणियों के दृढ कर्म बन्धन भी तत्काल शिथिल हो जाते हैं ।।8।।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र !
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे,
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ।।9।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! मात्र आपके दर्शन करने से ही मनुष्य सैंकड़ों उपद्रवों से तत्काल मुक्त हो जाते हैं । जिस प्रकार स्फुरित प्रकाशवान् सूर्य दिखने पर तुरन्त भागते हुए चोरों से, पशुगण तत्काल मुक्त हो जाते हैं उसी प्रकार आपके दर्शन मात्र से मनुष्य उपद्रवों से मुक्त हो जाते है ।।9।।

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वादृतिस्तरति यज्जलमेष नून,
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ।।10।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! आप भव्य प्राणियों को तिरानेवाले कैसे कहलाते हैं ? क्योंकि उल्टे संसार समुद्र को पार करते हुए वे ही आपको हृदय में धारण करते हैं अथवा तो यह युक्त ही है क्यों कि चमड़े की मशक जल में तिरती है । वह उसके अंदर रही हुई वायु का ही प्रभाव है ।।10।।

यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ।।11।।

अर्थ

हरि, हर, ब्रह्मा आदि सभी देव जिस कामदेव के सामने प्रभाव रहित हुए हैं वह कामदेव भी हे प्रभु ! आपके द्वारा क्षण भर में पराजित हुआ है । जिस प्रकार जिस पानी से सभी अग्नियाँ बुझती हैं वह जल भी क्या दुर्धर वडवानल अग्नि ने नहीं पिया ? (यहाँ सभी देवों को अग्नि, प्रभु को वडवानल

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

तथा कामदेव को जलसमान बताया है) ।।11।।

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्ना,
स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ।।12।।

अर्थ

हे स्वामिन् ! अत्यन्त महान् ऐसे आपका आश्रय लेकर प्राणीसमूह आपको हृदय में धारण करके शीघ्र ही अत्यन्त हल्के होकर भवसागर से पार उतर जाते हैं-यह आश्चर्य हैं ? सचमुच यह उपयुक्त ही है कि महापुरुषों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। (सामान्य व्यक्ति उसकी कल्पना नहीं कर सकता) ।।12।।

क्रोधस्त्वया यदि विभो ! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा बत कथं किल कर्मचौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिराऽपि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ।।13।।

अर्थ

हे प्रभु ! यदि आपने पहले ही क्रोध का नाश कर दिया है, तो उस क्रोध के बिना कर्मरूपी चौरों का आपने कैसे पराभव किया, यह एक बड़ा आश्चर्य है। इस प्रकार शंका करके उसका समाधान करते हैं कि इस जगत में शीतल भी हिम का समूह क्या हरे वृक्षोंवाले वन को नहीं जलाता है ? अर्थात् जिस प्रकार हिम वन को जलाता है, उसी प्रकार क्रोध रहित होते हुए भी आपने कर्म रूपी चोरों का नाश किया है, वह युक्त ही है ।।13।।

त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूप,
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे ।
पूतस्य निर्मल रुचेर्यदि वा किमन्य,
दक्षस्य सम्भवि पदं ननु कर्णिकायाः ।।14।।

अर्थ

हे जिनेन्द्र ! योगीजन, परमात्मस्वरूप ऐसे आपको निरन्तर अपने

हृदय कमल की कर्णिका में खोजते हैं-वह योग्य ही है, क्यों कि पवित्र और निर्मल कांतिवाले कमल के बीज का स्थान कर्णिका के सिवाय अन्यत्र संभव नहीं है । ।।14।।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ।।15।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! आपका ध्यान करने से भव्य प्राणी तत्काल औदारिक आदि शरीर का त्याग करके सिद्धस्वरूप बन जाते हैं । इसका दृष्टान्त यह है कि जिस प्रकार तीव्र अग्नि के संयोग से पाषाण स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार साधक आपके ध्यान से सिद्ध बन जाता है ।।15।।

अन्तः सदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ।।16।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! भव्य प्राणी अपने जिस शरीर में आपका निरन्तर ध्यान करते हैं, उनके उसी शरीर को आप क्यों नष्ट करते हैं ? (अर्थात् उन्हें मोक्ष प्राप्त करवाकर देह रहित करते हैं) जिस स्थान में भव्य आपका चिन्तन करते हैं उसी स्थान का नाश करना आपके लिये उपयुक्त नहीं है । (यहाँ विरोधाभास अलंकार हुआ । इसमें 'विग्रह' शब्द के 'शरीर' और 'कलह' दो अर्थ होने से आचार्य महाराज उस विरोध का परिहार करते हैं । अथवा तो वह योग्य ही है क्यों कि जो मध्यस्थ होता हैं उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे महात्मा विग्रह (शरीर और जीव का पारस्परिक अनादिकाल का विग्रह) का दो के बीच कलह का नाश करते ही हैं उसी प्रकार यहाँ आप विग्रह का अर्थात् जीव को मोक्ष देने से शरीर का नाश करते हैं क्योंकि आप भी शरीर के मध्य में रहे हुए हैं ।।16।।

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या,
ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ? ॥17॥

अर्थ

हे जिनेन्द्र ! इस जगत में जो पंडित अपनी आत्मा का आपकी आत्मारूप (आप से अभिन्नता की बुद्धि से) अर्थात् परमात्मा रूप मानकर ध्यान करते हैं, वे आपके समान प्रभाववाले होते हैं । जैसे पानी के संबंध में अमृत की भावना करके अथवा मंत्र से अमृत रूप किया हो तो वह पानी विष के विकार को दूर करता है उसी प्रकार आत्मा का परमात्मा के रूप में चिंतन करने से परमात्मरूप ही बनते हैं ॥17॥

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ।
किं काचकामलिभिरीश ! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥18॥

अर्थ

हे विभु ! अन्य दर्शनों के अनुयायी ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि की बुद्धि से वीतराग जैसे आपको ही अंगीकार करते हैं ब्रह्मादि के रूप में आपका ही ध्यान करते हैं जो उपयुक्त ही हैं, क्योंकि शंख का वर्ण श्वेत है तब भी पीलिये के रोगी तो उस शंख को पीला आदि भिन्न भिन्न वर्ण वाला ही देखते है ॥18॥

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥19॥

अर्थ

हे जिनेश्वर ! जिस समय आप धर्मोपदेश करते हैं उस समय आपके सामीप्य के प्रभाव से वृक्ष भी अशोक बनता है मनुष्य अशोक बने, इसमें आश्चर्य क्या ? (क्यों कि प्रभु के समवसरण में अशोक नामक वृक्ष होता है और मनुष्य

धर्मोपदेश श्रवण से शोकरहित होते है) अथवा यह योग्य ही है क्योंकि सूर्य का जब उदय होता है तब (एकेन्द्रिय) वृक्षादि सहित समग्र जीवलोक विकास प्राप्त करता है तब सूर्य रूप प्रभु की धर्मदेशना से मनुष्य और वृक्ष भी अशोक हो तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ।।19।।

चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव,
विष्वक् पतत्यविरलासुरपुष्पवृष्टिः ?
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश !
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ।।20।।

अर्थ

हे प्रभु ! आपकी विहार भूमि में देवतागण चारों ओर पंच वर्णीय पुष्पों की वृष्टि करते हैं। उनमें सभी पुष्पों के कंद नीचे रहते है और पंखुडियाँ ऊपर होती है। इस प्रकार उनके गिरने में आश्चर्य है अथवा तो वह उपयुक्त ही है कि आपके प्रत्यक्ष होने सुमनसा (अच्छे मन वाले) भव्य प्राणियों के निगडादि बाह्य बन्धन और कर्म रूपी अभ्यंतर बंधन नीचे की ओर हो जाते हैं। ।।20।।

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ।।21।।

अर्थ

हे स्वामिन् ! गंभीर हृदय रूपी समुद्र से उत्पन्न हुई आपकी वाणी को पंडित अमृतरूप कहते हैं। आपकी वाणी अमृत ही है ऐसा कहते हैं-वह योग्य ही हैं, क्योंकि भव्य प्राणी आपकी उस वाणी का पान करके अर्थात् श्रोत्र द्वारा श्रवण करके परमानन्द प्राप्त कर शीघ्र अजरामर बनते हैं।

स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ।।22।।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

अर्थ

हे स्वामिन् ! मै मानता है कि देवताओं द्वारा ढुलाए जाते पवित्र-उज्ज्वल चंवरों के समूह अत्यन्त दूर तक नीचे झुक कर ऊंचे उछलते हैं । वे मानो ऐसा कह रहे हैं कि जो प्राणी इन श्रेष्ठ मुनि श्री पार्श्वनाथ प्रभु को नमस्कार करते हैं वे शुद्ध भाव वाले होकर ऊर्ध्वगति वाले बनते हैं । (अर्थात् चँवर कहते हैं कि हम नीचे झुककर फिर ऊँचे उठते हैं उसी प्रकार जो प्रभु को नमन करने हैं वे ऊँचे-मोक्ष में जाते हैं । ।।22।।

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न,
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चै,
श्चामीकराद्रिशिरसीव नवाम्बुवाहम् ।।23।।

अर्थ

हे नाथ ! यहाँ समवसरण पर उज्ज्वल देदीप्यमान रत्नजडित स्वर्ण के सिंहासन पर आसीन, श्याम वर्ण वाले और गंभीर वाणीवाले आपको भव्य प्राणीरूपी मोर, मेरु पर्वत के शिखरपर स्थित, गर्जना करते हुए, ऊँचे और नवीन मेघ की तरह उत्सुकता से देखते हैं । (यहाँ सिंहासन को मेरू की, गंभीर वाणी को गर्जना की, भगवान को मेघ की तथा भव्य प्राणियों को मोर की उपमा दी गई है । ।।23।।

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्त-च्छदच्छविरशोकतरु-र्बभूव ।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ।।24।।

अर्थ

हे प्रभु ! ऊँचे प्रसरित होते हुए आपके श्याम कांति के समूह द्वारा (भामंडल द्वारा) अशोक वृक्ष के पत्तों की कांति नष्ट हो गई हो ऐसा हो गया है । अथवा तो हे वीतराग ! आपके सामीप्य से चेतना युक्त ऐसा कौन सा प्राणी है जो रागरहितता को प्राप्त नहीं कर सकता हो ? (अर्थात् हे वीतराग !

आपके वचन श्रवण और दर्शन तो दूर रहो परन्तु आपके सामीप्य से ही सभी प्राणी रागरहित हो जाते हैं ।) ।।24।।

भो भो ! प्रमादमवधूय भजध्वमेन,
मागत्य निर्वृत्तिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ।
एतन्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ।।25।।

अर्थ

हे देव ! मैं मानता हूँ कि आकाश में आवाज करती हुई यह देवदुंदुभि त्रिजगत् के लोगों को कहती है कि हे भव्य प्राणियों ! प्रमाद का त्याग करके यहाँ आकर मुक्ति नगरी के सार्थवाहरूप इन भगवान को तुम भजो-इनकी सेवा करो । (इन प्रभु का तुम आश्रय लो) ।।25।।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ !
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः ।
मुक्ताकलापकलितोच्छ्वसितातपत्र,
व्याजात् त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ।।26।।

अर्थ

हे नाथ ! आपने तीनों जगत को प्रकाशित कर दिया, अतः प्रकाश करने का अधिकार जिसका नष्ट हो गया है ऐसे इन तारों सहित चंद्र, मोती के समूह से सहित और उल्लसित होते हुए छत्रत्रय के बहाने मानों तीनों ही शरीर धारणकर आपकी सेवा करने के लिए आए हों-ऐसा लगता है ।।26।।

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्ति-प्रताप-यशसामिव सञ्चयेण ।
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ।।27।।

अर्थ

हे भगवान् ! तीन जगत को भर देने से पिंडरूप बने हुए आपके कांति, प्रभाव और यश के समूह द्वारा मानो बनाए हों ऐसे माणिक्य, स्वर्ण और चाँदी

से बने हुए तीन गढ द्वारा आप सुशोभित होते हैं। आपकी कांति, यश और प्रभाव त्रिजगत में नहीं समाने से ये तीनों एक ही स्थल पर पिंडरूप हुए हैं, जो ये तीन गढ के रूप में सुशोभित हैं। इनमें भगवान की कांति नील वर्ण होने से नील रत्न का गढ समझें, प्रताप-प्रभाव अग्निमान है अतः उसे स्वर्ण का गढ समझें, और यश उज्ज्वल है अतः इसका प्रतीक चाँदी का गढ समझें ।।27।।

दिव्यस्त्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपाना,
मृत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्संगमे सुमनसो न रमन्त एव ।।28।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! आपको नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों की दिव्य पुष्प की मालाएँ वैडूर्य रत्नादि से रचित मुकुटों का भी त्याग करके आपके चरणों का ही आश्रय ग्रहण करती हैं-जो उपयुक्त हीं हैं, क्योंकि आपका संगम होने से सुमनस अर्थात् पंडित और देव अन्यत्र रमण नहीं करते है। (पुष्प भी सुमनस कहलाते हैं अतः उन्हें भी आपके चरण का आश्रय उपयुक्त ही है।) ।।28।।

त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ।
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो ! यदसि कर्मविपाकशून्यः ।।29।।

अर्थ

हे नाथ ! आप भव समुद्र से पराङ्मुख होते हुए भी अपने पीछे लगे हुए प्राणियों को भव समुद्र से पार उतारते हो (अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के मार्ग पर चलने वाले प्राणियों को आप भवसागर से पार उतारते हो। यह योग्य ही है क्यों कि आप मिट्टी के घड़े की तरह हैं ! जिस प्रकार मिट्टी का घड़ा उल्टा रखकर उसे पकड़ने से वह तैरने में सहायक होता है, परन्तु आश्चर्य यह है कि आप कर्म विपाक से रहित हैं जब कि पार्थिवनिप (मिट्टी का घड़ा) वैसा नहीं होता। (इससे विरोधाभास हुआ। उसके परिहार हेतु इस प्रकार अर्थ करें-पार्थिव अर्थात् राजा और निप अर्थात् पालनकर्ता ऐसे आपका

प्राणियों को तारना योग्य ही है तथा आप ज्ञानावरणीय आठ कर्मों के विपाक से रहित हैं) ।।29।।

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक ! दुर्गतस्त्वं,
किं वाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ।
अज्ञानवत्यापि सदैव कथञ्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतुः ।।30।।

अर्थ

1) सर्व जगत के प्राणियों के रक्षक हे जिनेश्वर ! आप विश्व के स्वामी होते हुए भी दुर्गत-दरिद्र हैं । यहाँ विश्व के स्वामी होते हुए दरिद्र बताने में विरोधभास है । इसे दूर करने के लिये दुर्गत का अर्थ `कष्टपूर्वक जाने जा सकने योग्य हैं' किया जाए ।

2) इस प्रकार हे ईश ! आप अक्षर के स्वभाव वाले होते हुए भी अलिपि-लिपिरहित अर्थात् अक्षररहित हैं । इस अर्थ में भी विरोध है । इसे दूर करने के लिये अक्षर अर्थात् मोक्ष के स्वभाव वाले और अलिपि अर्थात् कर्म के लेपसे रहित हैं-ऐसा अर्थ किया जाए ।

3) आप अज्ञान वाले होते हुए भी आप में विश्व को प्रकाशित करने के कारण रूप केवलज्ञान के दर्शन होते हैं । इस अर्थ में भी विरोध है । उसे दूर करने के लिये अज्ञान्-अज्ञानी जनों को और अवति अर्थात् रक्षण करने वाले आपमें केवलज्ञान के दर्शन होते हैं-ऐसा अर्थ किया जाए ।।30।।

प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषा,
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ।।31।।

अर्थ

हे नाथ ! मूर्ख कमठासुर ने क्रोध से समग्र आकाश भर जाए उतनी जो धूल आप पर बरसाई उसके द्वारा आपके शरीर की परछाई या कांति का कुछ भी नहीं बिगडा परन्तु भग्न आशावाला वह दुष्ट असुर स्वयं ही उस धूल से अर्थात् कर्मरज से व्याप्त हो गया था ।।31।।

यद्गर्जदुर्जितघनौघमदभ्रभीमं,
भ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारम् ।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ।।32।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! धूल की वृष्टि करने के बाद उस कमठासुर ने गर्जना करते हुए विशाल मेघ के समूह वाला, आकाश से गिरती हुई अति भयंकर बिजली वाला मुसल जैसी पुष्ट और घोर धारवाला तथा तैर कर पार न किया जा सके ऐसा जो जल छोड़ा, उसी जल ने उस असुर पर दुष्ट तलवार का कार्य किया ! जैसे दुष्ट तलवार स्वयं का ही छेदन भेदन करती है, उसी प्रकार जल की वृष्टि ने कमठासुर के लिये ही छेदन भेदन रूप होकर उसके संसार में वृद्धि की ।।32।।

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड,
प्रालंबभृदभयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ।
प्रेतव्रजः प्रतिभवंतमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ।।33।।

अर्थ

हे स्वामिन् ! उसके बाद उस कमठासुर ने केश बिखरे हुए होने से जिसकी आकृति भयंकर दिखाई देती थी ऐसे मनुष्य के मस्तकों की माला को कंठ में धारण किया हुआ तथा जिसके भयंकर मुख में से अग्नि निकलती थी ऐसा जो प्रेत का समूह उपद्रव करने हेतु आपकी ओर भेजा, वही प्रेत का समूह इस कमठासुर के लिए भव भव में संसार के दुःख का कारण बना ।।33।।

धन्यास्त एव भुवनाधिप ! ये त्रिसन्ध्य,
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः ।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः,
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ।।34।।

अर्थ

हे त्रिजगताधिपति ! हे प्रभु ! अन्य सभी कृत्यों का त्याग करके आपके प्रति भक्ति से रोमांचित शरीर धारण करनेवाले मनुष्य इस धरती पर तीनों

काल, विधि के अनुसार आपके चरणकमल की आराधना करते है, वे धन्य हैं, उन्ही का जन्म सार्थक है ।।34।।

अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश !
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ।
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे,
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ।।35।।

अर्थ

हे मुनीश्वर ! मैं मानता हूँ कि इस अपार संसार रूपी समुद्र में भ्रमण करते हुए मैंने कदापि आपके नाम का श्रवण नहीं किया होगा, क्योंकि यदि आपके नाम का पवित्रमंत्र सुनने में आया होता तो क्या विपत्ति रूपी सर्पिणी कदापि पास आ सकती है ? अर्थात् नहीं आ सकती । (हे प्रभु ! अभी तक मेरी सांसारिक आपत्तियों का नाश नहीं हुआ है इससे मैं सोचता हूँ कि आपका नाम अबतक मैंने किसी भी भव में नहीं सुना होगा । यदि सुना होता तो संसार भ्रमणरूप यह आपत्ति मुझे नहीं घेरती) ।।35।।

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव !
मन्ये मया महितमीहितदानदक्षम् ।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ।।36।।

अर्थ

हे देव ! मैं मानता हूँ कि भक्त जनों को वांछित फल देने में निपुण आपके चरणकमल का पूजन मैंने किसी भी जन्म में नहीं किया । इसलिये हे मुनीश्वर ! इस जन्म में मैं चित्त को पीड़ा देनेवाले पराभवों का स्थान बना हूँ । (यदि आपके चरण कमल की सेवा की होती तो मैं पराभव का पात्र नहीं बनता अर्थात् आपके चरण की पूजा करनेवाले प्राणी कदापि पराभव का शिकार नहीं बनते हैं ।।36।।

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ।

मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ।।37।।

अर्थ

हे विभु ! मेरे नेत्र मोहरूपी अंधकार से आच्छादित होने के कारण मैंने इससे पूर्व कभी भी एक बार भी आपके दर्शन नहीं किये । यदि कदाचित् दर्शन किये होते तो मर्मस्थान को भेदने वाले और कर्म बन्ध की प्रवृत्ति को प्राप्त ये कष्ट मुझे क्यों पीडा पहुँचाते ? अर्थात् कदापि नहीं पहुँचाते ! ।।37।।

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ।।38।।

अर्थ

हे लोक बंधु ! मैंने पूर्व भवों में आपको सुना भी है, पूजा भी हैं और देखा भी हैं, परन्तु भक्ति द्वारा चित्त में धारण तो किया ही नहीं । इसीलिये तो मैं दुःख का पात्र बना हूँ, क्योंकि सुनने, पूजा करने और देखने आदि की सभी क्रियाएँ भाव रहित हों तो वे फलदायक नहीं होती । इसीलिये मेरी वे सभी क्रियाएँ निष्फल रही हैं ।।38।।

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय,
दुःखाङ्कुरोद्दलन तत्परतां विधेहि ।।39।।

अर्थ

हे नाथ ! आप दुःखीजनों के प्रति वत्सल हो ! शरण में आए हुए प्राणियों के लिये हितकर्ता हो, दया के पवित्र स्थान हो, सभी जितेन्द्रियों में आप श्रेष्ठ हो ! अतः मुझ पर दया करके मेरे दुःख के अंकुरों का विनाश करने के लिये आप तत्पर बनें । ।।39।।

नि:सङ्ख्यसारशरणं शरणं शरण्य,
मासाद्य सादितरिपु प्रथितावदातम् ।
त्वत्पादपङ्कजमपि प्रणिधानवंध्यो,
वध्योऽस्मि चेद्भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥40॥

अर्थ

त्रिभुवन को पवित्र करनेवाले हे स्वामी ! आपका चरणकमल असंख्यबल का घर है, शरण करने योग्य है, रागादि शत्रु का नाश करने वाला है तथा प्रसिद्ध प्रभाववाला है । उसकी (आपके चरण युगलका) शरण लेने पर भी यदि मैं ध्यानरहित होकर रागादि शत्रु द्वारा वध करने योग्य बनूँ तो यह खेद की बात है कि मैं दुर्दैव से मारा गया हूँ । ॥40॥

देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार !
संसारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि,
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥41॥

अर्थ

हे देवेन्द्रों के लिए वंदनीय ! समग्र वस्तु के सार को जानने वाले ! संसार समुद्र से पार उतारनेवाले हे विभु ! केवलज्ञान द्वारा जगत में व्याप्त होकर रहे हुए ! त्रिभुवन के नाथ ! हे देव ! दया के सागर ! हे जिनेश्वर ! आज मुझ दु:खियारे का इस भयंकर कष्टरूपी संसारसागर से रक्षण करो और मेरे पापों का नाश करके मुझे पवित्र करो ॥41॥

यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि संतति संचिताया ।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य ! भूयाः,
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥42॥

अर्थ

हे नाथ ! यदि परम्परा का संचय करनेवाली आपके चरणकमल की

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

भक्ति का कुछ भी फल हो तो हे शरण करने योग्य प्रभु ! मात्र एक आपकी ही शरण वाले मेरे इस भव में और अन्यभवों में भी आप ही स्वामी बनें । ।।42।।

इत्थं समाहितधियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ।
त्वद्‌बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या,
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ।।43।।

जननयनकुमुदचन्द्र ! प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलितमलनिचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ।।44।।
।। युग्मम् ।।

अर्थ

हे जिनेश्वर ! हे विभु ! लोगों के नेत्ररूपी कमल को विकसित करने में चंद्र समान हे प्रभु ! समाधियुक्त बुद्धिवाले, अत्यन्त रोमांचित शरीरवाले और आपके बिम्ब के निर्मल मुखकमल के प्रति लक्ष्य रखनेवाले जो भव्य प्राणी उपरोक्त प्रकार से विधिपूर्वक आपके स्तोत्र की (कल्याण मंदिर स्तोत्र की) रचना करते हैं, वे देदीप्यमान स्वर्ग की संपत्ति का उपभोग कर शीघ्र ही समग्र कर्ममल का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं ।।43-44।।

पंच प्रतिक्रमण भाग-4

प्रवचन प्रभावक परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित 207 पुस्तकों में से
प्राप्य हिन्दी भाषा में जैन धर्म का अमूल्य खजाना

Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक क्र.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	13-14	शांत सुधारस-हिन्दी		29.	164	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-
		विवेचना-भाग-1-2	140/-	30.	165	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-
2.	34-35	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	31.	166	आओ ! भाव यात्रा करें ! भाग-2	60/-
3.	36	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	32.	167	Pearls of Preaching	60/-
4.	42	भक्ति से मुक्ति (पांचवी आवृत्ति)	40/-	33.	169	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-1	64/-
5.	53	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-	34.	170	आओ ! दुर्ध्यान छोड़े !! भाग-2	70/-
6.	61	Panch Pratikraman Sootra	60/-	35.	172	रत्न-संदेश-भाग-1	150/-
7.	84	प्रभु दर्शन सुख संपदा	60/-	36.	174	रत्न-संदेश-भाग-2	150/-
8.	97	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	100/-	37.	178	परम-तत्व की साधना भाग-2	150/-
9.	100	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	38.	179	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
10.	104	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	150/-	39.	183	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
11.	107	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	40.	186	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
12.	120	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	41.	190	संस्मरण	50/-
13.	132	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	42.	191	संबोह-सित्तरि	
14.	133	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-			(वैराग्य का अमृत कुंभ)	70/-
15.	109	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	43.	193	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
16.	122	नव तत्त्व-विवेचन	60/-	44.	194	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
17.	123	जीव विचार विवेचन	60/-	45.	102	कर्मग्रंथ (भाग-1)	100/-
18.	128	विविध-तपमाला	100/-	46.	196	कर्मग्रंथ (भाग-2)	70/-
19.	134	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-	47.	197	कर्मग्रंथ (भाग-3)	55/-
20.	136	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	90/-	48.	198	आदर्श-कहानियाँ	60/-
21.	140	वैराग्य शतक	80/-	49.	200	अमृत रस का प्याला	300/-
22.	144	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-	50.	201	महान् योगी पुरुष	85/-
23.	145	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	70/-	51.	202	बारह चक्रवर्ती	64/-
24.	146	आध्यात्मिक पत्र	60/-	52.	203	प्रेरक-प्रवचन	80/-
25.	153	ध्यान साधना	40/-	53.	204	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	100/-
26.	156	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-	54.	205	छठा-कर्मग्रन्थ	160/-
27.	161	अजातशत्रु अणगार	100/-	55.	206	Celibacy	70/-
28.	163	The way of Metaphysical Life	60/-	56.	207	मंत्राधिराज प्रवचन सार	80/-

Shubhay 98338 35899